सुनिये

सारा जगत् सचाई की चादर में लिपटा हुआ है। सचाई जगत् का जीवन है। सचाई हवा की तरह हर क्षण के लिए जरूरी है। पर जिस तरह शुद्ध हवा मिलना मुश्किल है, मुश्किल क्या, असंभव है, वैसे ही खालिस सचाई मिलना असंभव है। क्योंकि जगत् सचाई की चादर को मैला करता आया है, कर रहा है और करता रहेगा।

जगत् की मैली की हुई सचाई की चादर भी काफी सफेद है—इतनी सफेद कि उससे ज्यादा सफेद शायद कोई दूसरी चीज नहीं। यही कारण है कि उस पर पड़ा हुआ जरा-सा धब्बा भी उस आँख को चमकने लगता और खटकने लगता है, जो पक्षपात की ऐनक को उतारकर फेंक देती है।

खुले दिल और खुली आँखों से यह किताब लिखी गयी है। लेखक की इच्छा है कि लोग इसे दिल खोलकर और आँख खोलकर ही पढ़ें। तब भी कुछ खटके, तो लेखक उसे अपनी ही कमी मानेगा, पाठक की नहीं।

अब निवेदन है कि पोथी खोलिये और पढ़िये।

[signature]

राजघाट, काशी
२६ जून, १९५७
८ आषाढ़, १८७९

क्या कहाँ

सत्य की खोज

: १ :

सत्य क्या है ?

बच्चे-बूढ़े सभी जानते हैं कि "जो वात जैसी हो, उसको वैसा ही कह देना" सच है। क्या इतना भी मैं नहीं जानता ? जानते हुए भी यह मानता हूँ कि सच बोलना सत्य की परछाईं है। परछाईं की वात किसीको खटके, तो यह कह देता हूँ कि सच बोलना सत्य की एक आदमी के बराबरवाली मूरत की कानी उँगली का एक पोरा है। मैं सच बोलकर समाज को एक फी सदी फायदा पहुँचा सकता हूँ, पर सत्य को समझकर, उतना ही सच बोलकर, समाज को २० फी सदी, ३० फी सदी या और भी ज्यादा फायदा पहुँचा सकता हूँ।

हो सकता है, गाँधीजी के जीते जी, हिन्दुस्तान में, दसियों-बीसियों ऐसे रहे हों, जो गाँधीजी से कहीं ज्यादा इस बात का ध्यान रखते हों कि उनके मुंह से कोई बात ऐसी न निकले, जो

सच न हो या सच को मदद देनेवाली न हो, पर इससे क्या ? उनमें से हरएक से समाज को अलग-अलग एक फी सदी या उससे भी कम फायदा पहुँचता रहा और वह भी ऐसे बरबाद जाता रहा, जैसे नदी या सागर में डाली मिश्री की डली की मिठास। हो सकता है, मैं तो मानता हूँ और होना ही चाहिए कि गाँधीजी ने राजकाजी-जैसे गन्दे अखाड़े में उतरकर अनेक बार ऐसे वचन बोले हों, जो सच बोलने की आम आदमियों की कसौटी पर पूरे न उतरें, पर इससे क्या ? उन्होंने सत्य को हम लोगों से कहीं ज्यादा समझ लिया था, उसे अपना लिया था, तभी तो उनके सच की कसौटी पर पूरे-पूरे न उतरनेवाले सच से भी समाज को २० फी सदी ही फायदा पहुँचता था।

कोई मनचला कह सकता है कि वाह जी वाह ! गाँधीजी से यह फायदा तो इसलिए पहुँचा कि उनको उनके भक्तों ने मशहूर कर दिया था और देवता बना दिया था। सत्य के समझने की बात तो कोरी खींचतान है। इसके जवाब में सिर्फ इतना कहना पड़ेगा कि मशहूर होनेवाला वह सोना, जो नये मंदिर के नये कलश के रूप में लोगों को तमाशे के लिए इकट्ठा करता है, भीड़ में ५-१० के पाँव ही कुचल देता है, उस सोने के मुकाबले में कुछ भी नहीं, जिसने फुंककर किसी मरते-मरते एक (रोगी) में भी जान डाल दी हो। प्रसिद्धि अच्छी चीज नहीं, तो बुरी चीज भी नहीं। कलश के सोने की तरह कुश्ते के सोने को भी प्रसिद्धि मिल सकती है और फिर फायदे का फी सदी कहीं-से-कहीं पहुँच सकता है !

हाँ, तो सत्य क्या है और उसका समझना क्या है ? इसका जवाब सुनने से पहले एक आपबीती सुनिये ।

मैं रहा होगा ७ वर्ष का । इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि हर बच्चा सच बोलने में अपने माँ-बाप दोनों से बढ़-चढ़कर होता है । फिर मैं तो सच बोलने में अपने माँ-बाप से बढ़-चढ़कर था ही । अब जरा मेरी तरफ से इतना और मान लीजिये कि हर बच्चा सत्य के समझने में अपने माँ-बाप से बहुत ही पीछे होता है । मैं भी बहुत पीछे था । मैं सच बोलता था, यानी सच का नाटक करता था । माँ-बाप सच बोलते थे, तो सचमुच सच बोलते थे । मेरे सच का समाज के लिहाज से कुछ भी मोल न था, पर मेरे माँ-बाप के सच का मोल तो मैं आज भी नहीं आँक पाता ।

हाँ तो सुनिये !

'भगवानदीन, देखो इस बच्चे के लिए चौके में रखे कटोरदान से एक रोटी लाओ !'

'अम्मा, इसमें तो कोई रोटी नहीं है !'

'कोई रोटी नहीं है ? एक तो होनी चाहिए ।'

'अम्मा, एक तो है, पर वह तो पहली रोटी है भगवान् के नाम की, वह तो मालिन की है ।'

'हाँ, बेटा, वही लाओ ।'

'अम्मा, वह तुम इसको कैसे दे सकती हो ?'

'क्यों ?'

'क्योंकि तुम हमें कभी नहीं खाने देतीं !'

'तुम इतने भूखे नहीं होते, जितना यह बालक ।'

'अम्मा, हम कितने ही भूखे हों, तब भी तुम यह कहकर रोक देती हो कि 'हैं, कहीं भगवान् की रोटी खाते हैं !'

'पर तुम्हें रोटी की जगह खाने को कोई चीज तो दे देती हूँ ।'

'तो और चीज इसको क्यों नहीं दे देती ?'

'यह बीमार है, दो दिन का भूखा है, पकवान खायेगा, तो और बीमार हो जायेगा ।'

'तो भगवान् की रोटी इस बच्चे को दे दूँ ?'

'हाँ, दे दो बेटा, इस बच्चे में भी भगवान् हैं ।'

'और मुझमें भी ?'

'हाँ, तुममें भी ?'

'तो मैं भगवान् की रोटी खा सकता हूँ ?'

'क्यों नहीं ? पर अभी नहीं, जब तुम समझदार हो जाओ ।'

'अम्मा, यह बच्चा समझदार है ?'

'नहीं, इसको तो मैं दे रही हूँ । तुम्हें कोई समझदार दे दे, तो खा लेना ।'

अब एक सुनी सुनिये !

आरा के एक सज्जन थे । देवेन्द्रप्रसाद उनका नाम था । इलाहाबाद में किसी कालेज में पढ़ते थे । खाते-पीते घराने के थे, घर किराये पर लेकर रहते थे । उनकी माँ उनके साथ रहती थीं । जिन दिनों की बात है, उन दिनों उनकी माँ की उमर ४५-५० के बीच रही होगी ।

जाड़े के दिन थे । एक दिन देवेन्द्रप्रसाद ७-८ बरस के किसी

अनाथ भिखारी लड़के को सड़क पर सिकुड़ता पड़ा देख अपने साथ ले आये। घर आकर सोच में पड़ गये, क्योंकि घर में दरी तो फालतू थी, पर रजाई गिनी-गिनायी दो थीं। माँ ने ताड़ लिया, बोलीं :

'बेटा देवेन्द्र, क्या सोच रहे हो ?'

'यही कि आखिर यह बच्चा ओढ़ेगा क्या ?'

'ओढ़ेगा क्या ? मेरे साथ मेरी रजाई में सो जायगा।'

'तुम्हारे साथ ?'

'हाँ, क्यों ? तुम जब इतने बड़े थे, तो आराम से मेरे पास सो लेते थे या नहीं ?'

देवेन्द्रप्रसाद की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे !

देवेन्द्रप्रसाद सच्चे थे, सच बोलते थे, समाज-सेवा में जुटे रहते थे; पर सत्य को उतना नहीं समझ पाये थे, जितना उनकी माँ।

बस, सत्य वह प्रकाश है, जो हम सबमें है और सात परदों में छिपा है। उसके अनेक परदों में से एक-एक परदा फाड़ते चलिये, वह समझ में आता जायगा। पूरा-का-पूरा कब किसकी समझ में आयेगा, कौन जाने। अभी तक किसीकी समझ में पूरा-पूरा आया नहीं। क्योंकि अगर आ गया होता, तो उसने सबको बता-समझा दिया होता। फिर क्या दुनिया का वह हाल होता, जो अब है !

सच बोलनेवालों की तादाद दुनिया में कम नहीं। जितनी है वह बहुत काफी है। सच बोलनेवाले सत्य को समझ लें, तो

सब दुःख मिट जायँ। जब-जब अविद्या की घटाएँ घटाटोप कर देतीं और आदमी को अपना भाई ही गैर दिखाई देने लगता है—वह जानवर बनकर उसीके खून पर उतारू हो जाता है, तब-तब सत्य के समझनेवाले जुगनू की तरह चमककर, तारों की तरह दमककर कुछ रोशनी करते हैं और दो-एक की जान बचाकर ही समाज को वह फायदा पहुँचा जाते हैं, जो आगे कई गुना बढ़कर समस्त पट में छाये खोंत को रफ़ू करता रहता है।

हाँ, तो सच बोलना और बात है, सत्य का समझना और बात! सत्य कैसे समझा जाय, यह आगे देखिये।

सत्य कैसे समझें

सत्य कैसे समझें? बस, जरा डर से न डरकर! कैसे समझें? बस, जरा अविद्या से न दबकर! कैसे समझें? बस, जरा पापों, भूलों के सोच में न पड़कर!

क्या मतलब? मतलब यह कि डर तुम साथ तो लाये थे, पर इतना थोड़ा कि जिसे 'डर' नाम देना अपने को डराना है। जो डर आज अपनाये हुए हो, वह तो तुमने कमाया है और उसकी खातिर सत्यधन गँवाया है। कुछ डर तुम पर ठूँसा गया है। उन्होंने ठूँसा है, जो तुम्हारे बड़े प्यारे और बहुत भला चाहने-वाले थे। उन्होंने शायद यह समझकर ही तुम्हारे सिर मढ़ा था कि तुम उस डर की मदद से सत्य को समझोगे। पर उन्हें यह कहाँ मालूम था कि डर अपने-आप सत्य का एक परदा है। जब तुम पैदा हुए, तब मौत से डरते न थे। फिर शेर, साँप, बिल्ली, आग, पानी से डर कैसा? जब तुम पैदा हुए, तब

गरीवी से डरते न थे। फिर चोरी, झूठ, जुर्माने, घर जल जाने या ढह जाने का डर कैसा ? जव तुम पैदा हुए, तव भगवान् से डरते न थे। फिर झूठ, चोरी, हिंसा, परिग्रह, अब्रह्म से डर कैसा ? उस समय तो तुम सवके थे और सब तुम्हारे। फिर किसकी हिंसा करते, किसलिए झूठ वोलते, क्यों चोरी करते, क्यों सेंत-सेंत कर रखते और क्यों किसीको वासना की आँख से देखते ? उस समय तो डर को तुमसे डर लगता था ! जब तुम्हें अपने-पराये का ज्ञान कराया गया, तव तो हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह अपने-आप तुम्हारे मन में आ दाखिल हुए और अव उन्हीं माँ-वाप को, जिन्होंने तुम्हें अपने-पराये का ज्ञान कराया था, भगवान् से डरना, मौत से डरना और गरीवी से डरना सिखाना पड़ा। यह सिरथुपा डर फेंककर ही सत्य समझ में आयेगा और अपने-पराये का परदा हट जाने से वह चुटकी-वजाते तुम्हें छोड़कर भाग जायगा।

एक आपबीती सुनिये !

'मैं ६ वरस का था। रात को पेशाव लगी। वोला, अम्मा, पेशाव !'

'उठो और वाहर जाकर पेशाव कर आओ।'

'अम्मा, तुम साथ चलो।'

'क्यों ?'

'डर लगता है, अम्मा।'

'डर कैसा ?'

'भूतों का।'

'तुमने कभी भूत देखे ?'

'देखे नहीं, मेरे क्लास में सब लड़के कहते थे कि भूत होते हैं। उनके बड़े-बड़े दाँत होते हैं और चाहे जैसे बन जाते हैं !'

'हँसी-हँसी में कहते होंगे ! नहीं तो सपने की बात करते होंगे।'

'नहीं अम्मा, सचमुच की बात कहते थे। बड़े भैया और बड़ी जीजी भी कहती थीं कि भूत होते हैं।'

'पर तुम्हारे बड़े भैया और बड़ी जीजी तो डरती नहीं। वे तो अकेले अँधेरी रात में कहीं भी चले जाते हैं ?'

'अम्मा, वे बड़े हैं।'

'तो भूत बड़ों से डरते हैं ?'

'अम्मा चलो न, मुझे पेशाब लगी है।'

'मैं यहीं से देख रही हूँ, जाओ।'

मैं डरता, कुछ अपने को सँभालता, कुछ हिम्मत बाँधता अकेला गया और जल्दी-जल्दी पेशाब करके वापस आ गया। वापस आने पर माँ पुचकार कर बोलीं : बेटा, भूत कुछ नहीं होते और जो भूत बड़ों से डरते हैं, वे उनके बच्चों से तो और भी डरेंगे। तुमने नहीं देखा, ग्वाले का छोटा लड़का गाय-भैंस को छोटी-सी लाठी लेकर किस तरह हाँक ले जाता है, गाय-भैंस उससे कितनी डरती हैं ! भूत की बातें सब हँसने और मन बहलाने को करते हैं।'

'अच्छा बेटा, एक बात बताओ, तुम्हारे लालाजी बड़े या तुम्हारे लालाजी का घोड़ा बड़ा ?'

'अम्मा, लालाजी वड़े ।'

'क्यों ?'

'लालाजी तो उस पर सवार हो जाते हैं। उसकी लगाम पकड़कर जिधर चाहें उधर ले जाते हैं ।'

'जैसे तुम कभी-कभी मेरी गोदी में चढ़कर मुझे कहीं भी ले जाते हो ।'

'नहीं अम्मा, तुम तो प्यारी अम्मा हो ।'

'हाँ, प्यारी तो हूँ, पर वड़े तुम ही रहे। मुझे तुम वड़ी अम्मा भी नहीं, वड़ी अम्मा तो तुम्हारी वे हैं, जो तुम्हें बाजार ले जाती और मिठाइयाँ खिलवाती हैं। वड़ी अम्मा वे हैं, तो छोटी अम्मा मैं। मैं छोटी, तुम बड़े। अव तुम वड़े हो, तुमसे भी भूत डरेंगे ।'

अम्मा ने अपनी समझ में मेरा डर विलकुल दूर कर दिया, पर वह विलकुल तो नहीं, वहुत कुछ दूर हो गया। जो थोड़ा वना रहा, वह १४ वरस की उमर में निकला। कुदरती डर के अलावा सारे डर सत्य के समझने में रुकावट डालते हैं। यह तो मेरी खुशकिस्मती थी कि मुझे ऐसी माँ मिल गयी थीं, जो पढ़ी-लिखी तो नाम को थीं, पर पैदाइशी मास्टरनी थीं ।

हाँ, तो डर से डरकर सत्य समझ में न आयेगा, उसे तो जैसे वने, दूर करना ही होगा ।

जव तुम पैदा हुए थे, तो अविद्या साथ लाये थे। पर उसे 'अविद्या' कहना निरी अविद्यापन की वात समझी जायगी। तुम्हारी पैदाइशी अविद्या का अर्थ था, विद्या का न होना यानी

जानकारी का न होना। यह तो वड़े काम की चीज थी। प्रकृति ने सोच-समझकर ही तुम्हें अजानकार पैदा किया था। मान लो, अगर तुम पैदा होते वक्त पेट भरे होते तो रोते क्यों? अगर न रोते, तो माँ तुम्हें दूध देने की वात कैसे सोचती? फिर तुम्हारा क्या हाल होता, कौन जाने? तुम खाली पेट पैदा हुए, इसलिए तुममें खुराक लेने की वड़ी जोर की इच्छा थी। ठीक इसी तरह तुम्हारा दिमाग जानकारी से खाली था और तुममें ज्ञान की खुराक लेने की वड़ी जोर की ख्वाहिश थी। तो, वह पैदाइशी अविद्या वुरी कहाँ थी? वह तो वड़ी भारी देन थी। हाँ, वह अविद्या थी, सत्य का परदा था, पर चिक जैसा। उसमें होकर तुम्हारा आत्मा ज्ञान लेता था और तुम्हारा मन उस चिक की तीली तोड़ता रहता था। वुरी तो वह अविद्या थी, जो तुम्हारे माँ-वाप या तुम्हारे भला चाहनेवालों ने तुम पर लादी थी। उन्होंने वह यह समझकर लादी थी कि वह तुम्हें सत्य का रूप समझने में मददगार सावित हो। पर उन्हें यह कहाँ मालूम था कि विधान नामधारी अविद्या खुद सत्य का एक परदा है। वह चिक जैसा परदा है, जिससे होकर साफ-साफ दिखाई नहीं दे सकता। यह भी कहाँ मालूम था अविद्या का वह झीना परदा अपने-आप धीरे-धीरे इतना गाढ़ा होता रहता है कि कुछ दिनों में ही मोमजामा जैसा वन जाता है, उसमें होकर आत्मा मेहनत करने पर भी कुछ नहीं देख पाता और फिर मन उसे फाड़ने के लिए जोर लगाना भी छोड़ वैठता है।

वस, तुम्हारे वचपन की अविद्या में और वड़ेपन की अविद्या में यही अन्तर है कि वह अविद्या नहीं है, यह सचमुच अविद्या है। उस अविद्या से तुम दवते न थे, इससे तुम दवते हो और दवकर भी सत्य को समझने की जगह जो थोड़ा-वहुत ठीक से समझे हुए हो, उस पर भी हरताल फेर देते हो।

एक आपवीती सुनिये !

मैं जव छोटा था, तो वुआ से पूछ वैठा : 'वुआ, चंदा में वह काला-काला क्या है ?'

'इसमें एक वुढ़िया वैठी चरखा कात रही है।' वुआ ने वड़े प्यार से और इस खयाल से कि मेरी अविद्या कुछ कम हो, मुझे समझा दिया।

मैं समझा, मैंने कुछ जाना।

एक दिन यही वात माँ से पूछ वैठा। हो सकता है, मेरे मन के किसी कोने में माँ की परीक्षा लेने की वात रही हो, पर वैसा याद नहीं पड़ता।

'अम्मा, चंदा में यह काला-काला क्या है ?'

'वेटा, मैं तो नहीं जानती, अपने लालाजी से पूछना, वह ठीक-ठीक वतायेंगे।'

'अम्मा, वुआ तो कहती हैं, चाँद में एक वुढ़िया वैठी चरखा कात रही है। क्या यह तुम्हें नहीं मालूम ?'

'वेटा, मालूम तो है, पर वह ठीक नहीं लगता।'

'तो बुआ ने क्यों कहा ?'

'तुम्हारा दिल वहलाने को, मन खुश करने को।'

'तो वुढ़िया वहाँ नहीं है ?'

'होगी, मुझे नहीं मालूम। मैंने कहा न कि अपने लालाजी से पूछना ?'

लालाजी से डरते-डरते पूछा, तो उन्होंने न जाने क्या-क्या वताया। कहीं चन्दा की पीठ पर गौतम ऋषि की धोती के निशान और कहीं चन्दा में झील, तालाव और न जाने क्या-क्या ?

मेरी याद की पट्टी पर तो बुआ की वात लिख गयी और मेरे ध्यान की पट्टी पर अम्मा की वात उकिर गयी। वड़े होने पर अम्मा की वात में किल्ले फूटे और बुआ की वात धीरे-धीरे सूखकर मुरझा गयी। वह याद तो अव भी है, पर उसके वट तो जली रस्सी की तरह देखने भर के हैं।

मैं बुआ की सीख से अविद्या के वोझ से जितना दवा था, अम्मा की सीख से उतना ही दवने से वच गया।

इस तरह की अनेक अविद्याएँ हमारे प्यारे माँ-वाप हमारे भले के लिए हम पर लाद देते हैं। इन अविद्याओं से दवे हुए हम सच वोलते हैं, पर सत्य नहीं; क्योंकि उसे हम समझते ही नहीं। सच अगर जैसा देखना-सुनना वैसा वोलना है, तो तर्क के रास्ते जैसा समझना वैसा कहना भी है।

तर्क ने ही अविद्या को जन्म दिया और अव वही अविद्या की रथी वनाकर ज्ञान-चिता की आग में भस्म कर देगा। मानव-समाज ने अपने वचपन में जो तर्क खड़े किये, उसके जवाव भी तो

उसे उसी बचपन ने दिये। वह अविद्या से भरे नहीं तो और क्या हो सकते थे ?

एक आपबीती और सुनिये !

मैं जब छोटा था, तो मेरी माँ मेरे बीमार पड़ने पर मेरा इलाज भी करती थीं। क्योंकि वे नाड़ी देखना बहुत अच्छा जानती थीं और दवा-दारू करना कामचलाऊ। वे जादू-टोना भी करती थीं, उसमें भी उनका विश्वास था। एक तरह से वह हिन्दू-मुसलमान, जैन और बुद्धवादी सभी की खिचड़ी थीं। उनको 'समभावी' भी कह सकते हैं।

जादू-टोना यह होता था कि मेरे बीमार पड़ने पर कुछ पैसे वह मेरे ऊपर फेरकर कहीं ताक में रख देती थीं और मेरे अच्छे होने पर उन पैसों की मिठाई मँगाकर बाँट दी जाती थी। मैं जब इतना बड़ा हुआ कि ताक में पाँव रख खूँटी पकड़ ऊपर के ताक से वे पैसे ले सकूँ, तो उन्हें यह मौका ही न देता था कि उन पैसों की मिठाई बाँटी जा सके। उनकी मिठाई मैं खुद खा जाता था और अपने साथियों को भी बाँट देता था। यह जानकर माँ मुझ पर बहुत मीठी नाराजी दिखा उसे एकदम भुला देती थीं। ऐसा कभी न करतीं कि और पैसे की मिठाई मँगायी जाय और बाँटी जाय।

धीरे-धीरे यह जादू-टोना भी माँ के दिमाग से कम होता गया।

एक बार मेरे गलसुए फूल गये। जादू-टोने के रूप में माँ ने मिट्टी की पाँच गोलियाँ बनाकर और मेरी कनपटी पर

फेरकर एक ताक में रख दीं। मैं जब अच्छा हो गया, तो माँ को उनकी याद आयी। वे ताक में न मिलीं।

'बेटा भगवानदीन, वे मिट्टी की गोलियाँ ताक से कहाँ गयीं, मुझे उन्हें तालाब में डलवाने के लिए भेजना है।'

'अम्मा, वह तो मैंने ले लीं।'

'किसलिए ?'

'बन्दरों को मारकर भगाने के लिए।'

'जा, तू तो औतारी है, तेरे लिए जादू-टोना बेकार है।'

उस दिन के बाद से मैं जादू-टोने से हमेशा के लिए बच गया।

एक पन्थ दो काज इसे कहते हैं।

माँ और मेरा, दोनों का अविद्या का एक-एक परदा सत्य पर से अचानक ही हट गया। तर्क ने ही उस अविद्या के परदे को डाला था और उसीने उसे उठा लिया।

अविद्या का परदा एकदम न हटेगा, पर उसके नीचे गर्दन तो देनी चाहिए।

जब तुम पैदा हुए थे, तब तुम पाप करते थे, खूब पाप करते थे। कुछ बड़े होकर भूलें भी खूब करने लगे, पर उनका सोच नहीं करते थे, इसलिए सत्य को समझने के लिए तुम्हारा मन, मस्तक दोनों तैयार थे। यह दूसरी बात है कि तुम्हें न तो ऐसे माँ-बाप मिले थे और न गुरुजन, जो तुम्हें सत्य की सीख दे सकते या सत्य को ठीक-ठीक समझा सकते। उन दिनों पाप और भूलें न तुम्हें अखरती थीं न खटकती थीं, न सताती थीं

ग्रौर न सुस्त वनाकर सोच में डालती थीं । माँ-बाप ने पापों से डराकर, भूलों पर धमकाकर, पापों की परछाईं को देहवाला वना दिया ग्रौर भूलों की केशर को काँटे में वदल दिया । उन्होंने पाप से डराया तो भले के लिए था ग्रौर भूल पर धमकाया भी भलें के लिए, पर उन्हें क्या मालूम कि डराना-धमकाना खुद सत्य के ग्रागे परदा वनकर खड़े हो जायँगे ।

व्यास ग्रौर सूर, दोनों ने वड़ी कोशिश की कि दुनिया पाप ग्रौर भले के सोच में पड़ना छोड़ दे । इसके लिए उन्होंने कृष्ण-लीला ग्रौर कृष्णभक्ति के जरिये कृष्ण का वालपन ऐसा दिखाया कि पढ़ते ही वनता है, पर व्यास ने उसे लीला के ग्रौर सूर ने भक्ति के रस में इतना डुवाया कि दुनिया उससे उल्टी ग्रविद्या ही ले पायी, सत्य न समझ पायी ।

पाप ग्रौर भूल एक चीज है, पाप ग्रौर भूल के सोच से ग्रविद्या वढ़ेगी ; उन्हें करते रहने से ग्रविद्या ग्रौर वढ़ेगी । पाप ग्रौर भूल से सीख लेनी चाहिए, वह सत्य के समझने में मदद देगी । राई भर भूल या राई भर पाप ग्रविद्या के साथ मिलकर पहाड़ भर भूल ग्रौर पाप हो जाते हैं ।

ग्रापवीती सुनिये !

एक दिन मैंने एक लड्डू चुपके से मटके में से निकालकर खा लिया । यह वात मैंने वुग्रा को वता दी । वह वोली : भगवान-दीन, यह तो तूने चोरी की ग्रौर वड़ा भारी पाप किया । भारी पाप की वात सुनकर मैं घवरा गया । ६ वरस का मैं, भारी पाप से न दव जाता, तो क्या करता ? वोला—

'बुआ, अब ?'

'अब क्या, अब अम्मा से जाकर बताओ, वही कुछ बतायेंगी।'

× × ×

'अम्मा, एक बात बताऊँ ?'

'हाँ, बताओ।'

'आज मुझसे एक बड़ा भारी पाप हो गया है।'

'कैसा पाप ? तू पाप क्या समझे ?'

'अम्मा, मैंने मटके में से एक लड्डू चुराकर खा लिया, अम्मा कुछ कहे कि मेरी नजर एक मकड़ी पर जा पड़ी, जो जाल में फँसी मक्खी को पकड़ कर खाने को ही थी। मैं दौड़ा और मक्खी को जाले से निकाल दिया। वह अपना जोर लगाकर जाले को तोड़ उड़ गयी। मैं लौटकर अम्मा से बोला :

'अम्मा, मैंने मक्खी को छुड़ा लिया।'

'अच्छा किया।'

'अम्मा, ये मकड़ियाँ इतना पाप क्यों करती हैं कि मक्खी को खा जाती हैं ?'

'बेटा, वह पाप नहीं करतीं ?'

'क्यों अम्मा, वह मक्खी की जान ले लेती हैं और पाप नहीं करतीं ?'

'यह मक्खी की जान भी नहीं लेती।'

'यह कैसे अम्मा ?

'बेटा, मकड़ी न तो यह जानती है कि जान क्या होती है और न यह जानती है कि मक्खी में जान है। वह तो उसे अपनी खुराक समझती और खा जाती है।'

'देखा, जैसे तुम्हारा मन चला कि लड्डू खाया जाय या तुम्हें भूख लगी और तुमने मटके में से एक लड्डू निकालकर खा लिया, यह कोई चोरी नहीं है और न पाप ही है।'

'अम्मा, बुआ तो कहती हैं, बड़ा भारी पाप हुआ।'

'बुआ हँसी में कहती होंगी।'

'नहीं अम्मा, हँसी में नहीं, उन्होंने तो कहा, अम्मा से कहना। वह बतायेंगी, यह पाप कैसे दूर हो।'

'ना बेटा, यह पाप नहीं है, न चोरी। फिर जब तुमने बुआ से कह दिया और फिर मुझे बता दिया, तब तो तुम्हारे लालाजी यह भी न कहेंगे कि भगवानदीन ने लड्डू अम्मा के पूछे बिना ले लिया।'

'तो अम्मा, पाप नहीं हुआ ?'

'बिलकुल नहीं।'

'अम्मा, तू तो बड़ी अच्छी अम्मा है।'

'और तू भी तो मेरा बड़ा अच्छा बेटा है।'

बस, तो पाप और भूलों के सोच में पड़कर हम सत्य से कोसों दूर जा पड़ते हैं और हमारे माँ-बाप अपनी अजानकारी से हमें उनसे डराकर हमारे और सत्य के बीच एक मोटी दीवार खड़ी कर देते हैं।

सत्य को समझने के लिए पाप और भूलों का सोच तो मिटाना ही होगा।

○ ○ ●

: २ :

सत्य कैसे खोजा जाय

हमारे जीवन में भूलें भरी पड़ी हैं। भूलों से ही हमारा जीवन बना है।

हमारे जीवन में अन्धेरा है। हम अन्धेरे में ऐसे जी रहे हैं, मानो उजाले में हों।

इस भूलभरे और अन्धेरे में बीतनेवाले जीवन में एक ही खूबी है कि इन भूलों और अन्धेरे में जिसे ढूंढते फिरते हैं, वह बेहद चमकदार है और वही तो सत्य है। यह भी अच्छा ही है कि सत्य और हमारे बीच पड़े हुए पर्दे धीरे-धीरे उठते हैं। वे बारी-बारी से न उठते, तो हम एकदम सत्य की चमक देख अन्धे हो जाते और कुछ भी न देख पाते।

हमारे मस्तक की मालदारी इसीसे नापी जाती है कि हमारी सत्य की जानकारी कितनी है। मालदार बनना किसे नहीं सुहाता! इसलिए मालदार बनने के लिए इससे बड़ा और कौन धंधा हो सकता है कि हम सत्य की खोज में लग जायँ।

सत्य और उन्नति एक चीज

तरक्कीदेवी की हड्डियाँ सत्य की बनी हैं। उनकी मज्जा और चरबी सत्य की बनी है। उनकी माँस-पेशियाँ सत्य की बनी हैं। उनमें सत्य का ही खून बहता है। उनके कान, आँख, नाक, जीभ सब सत्य हैं और सत्य ही उनकी जान है। सत्य और उन्नति एक ही चीज है। यह सुनकर अचरज न होना चाहिए कि

हम सबको पैदा होते ही सबसे पहले सत्य की भूख लगती है और वह मरते दम तक कभी नहीं मिट पाती, बढ़ती ही रहती है। उस भूख को मिटाने के लिए जब कभी एक कण मिल जाता है, तो हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उस सत्य के एक कण से ही हम बुरे से भले बन जाते हैं, नीचे से ऊँचे उठ जाते हैं, अपवित्र से पवित्र बन जाते हैं। हमारा आदमी के रूप में पैदा होना सफल हो जाता है।

अब एक आपबीती सुनिये !

सन् १८९६ का जिक्र है। मैं था बारह बरस का। मंदिर में शास्त्र-सभा हो रही थी। उसमें मैं ही सबसे छोटा था। मुझसे बड़ा एक और लड़का था, जो सोलह बरस का होगा। भादों का आखिरी दिन था। उस दिन प्रतिज्ञा लेने का रिवाज पुराना है। रिवाज की रस्म निभाने के लिए शास्त्र-सभा के खतम होने पर प्रतिज्ञा लेने का नंबर आया। सोलह बरस के उस लड़के ने तो यह प्रतिज्ञा ली कि वह एक महीने तक दिया न जलाया करेगा। उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर उसका बाप हँस पड़ा और लोग भी हँस दिये। बाप तो यों हँसा कि दूकान का दिया जलाने का काम उस लड़के के सुपुर्द था और बस, वही एक काम उसके सुपुर्द था। उसने उस एक काम के न करने की प्रतिज्ञा लेकर उससे भी छुट्टी पा ली। इस काम की वजह से शाम को खेल में बाधा पड़ती थी, इसलिए वह इसके सिवा और क्या प्रतिज्ञा लेता ? और लोग यों हँसे कि वे यह समझ ही न पाये कि यह अनोखी प्रतिज्ञा किसलिए ली जा रही है।

अब मेरी बारी आयी। मैंने उस दिन के लिए निर्जल व्रत रखने की प्रतिज्ञा की। यह बात दिन के नौ बजे की है। शास्त्र-सभा से पहले मैंने नाश्ते के तौर पर भी कोई चीज न ली थी। उस दिन घर में मैं, मेरी माँ और मेरी बड़ी बहन थी; और कोई घर पर नहीं था। माँ और बहन पहले से ही उस दिन कुछ न खाने का व्रत लिये हुए थीं, इसलिए शास्त्र-सभा में जाने के पहले मेरे लिए हलुवा, पूड़ी और शाक बनाकर तैयार कर दिया गया था। पर अब मैं भी प्रतिज्ञा ले चुका था, इसलिए उस खाने का कोई उपयोग न रह गया।

मंदिर में जिस वक्त मैंने प्रतिज्ञा ली थी, मेरी माँ और बहन, दोनों ही वहाँ मौजूद थीं। पर उनमें से किसीने मुझे प्रतिज्ञा लेने से नहीं रोका, क्योंकि ऐसा करना समाज की नजर में बुरा समझा जाता है। घर आकर बहन ने तो कुछ समझाया-बुझाया भी, पर माँ ने एक शब्द भी नहीं कहा।

मेरे ऊपर व्रत का बड़ा गहरा रंग चढ़ा और इतना गहरा चढ़ा कि मैं अपने साथियों के साथ खेलने तक न गया। घर में बैठे ही धर्म की किताबें पढ़ता रहा। तीन बजे तक कोई तकलीफ नहीं हुई। उसके बाद से पित्त बढ़ना शुरू हुआ और पीले रंग की हल्की-सी कै हुई। बहन दौड़ी-दौड़ी आयी और उसने मुझे कुल्ला कराना चाहा। पर मैंने कुल्ला करने से इनकार कर दिया, क्योंकि मैं समझता था कि कुल्ले के बहाने पानी मुँह में जाना भी व्रत तोड़ना है। इसलिए मैंने हाथ धोकर होंठभर पोंछ लिये। एक कै से ही मेरी तबीयत निढाल हो गयी। बहन ने मेरे लिए

चारपाई विछा दी। माँ यह सब देख रही थी, पर वह कुछ न बोली। आध घंटे के वाद फिर कै हुई। फिर भी वहन ने हीं सँभाला, उस कै के वाद थोड़ा चैन मिला। घंटेभर के वाद फिर कै हुई और खूब पित्त गिरा। अब माँ पास आकर खड़ी हो गयी, पर और सब काम वहन ही करती रही। जब फिर मैं चारपाई पर लेट गया, तो माँ ने मेरी वहन को किसी काम के लिए किसीके घर भेज दिया और उसके चले जाने के वाद वह मुझे समझाने वैठ गयी।

'देखो वेटा, तुमने कल पाँच वजे खाना खाया था, उसके बाद अब तक खाना नहीं खाया। अब पाँच वजे हैं, पूरे चौवीस घंटे हो गये। चौवीस घंटे का एक दिन होता है, इसलिए तुम्हारा एक दिन का व्रत पूरा हो चुका।'

'पर अम्मा, व्रत तो मैंने नौ वजे लिया। कल नौ वजे चौवीस घंटे होंगे।'

'यह तो ठीक है, पर तुम्हारी तबीयत इतनी निढाल हो गयी है कि व्रत में चित्त में जितनी शांति रहनी चाहिए, उतनी शांति तुम अपने मन में नहीं रख सकोगे।'

'अम्मा, यह तो तुम ठीक कह रही हो। पर व्रत तो दुःख मानकर ही निभाये जाते हैं। शास्त्र में तो सारी कथाएँ ऐसे ही पढ़कर सुनायी जाती हैं।'

'वेटा, यह तो तुम ठीक कहते हो। पर व्रत का आनंद तो उस वक्त चल देता है, जब चित्त व्रत से डिगने की वात सोचने लगता है। अब तुम ही वताओ, क्या तुम्हारे मन में इस वक्त

यह बात नहीं आ रही कि अगर कोई न हो, तो तुम चुपके से और कुछ न मिले, तो पानी ही पी लो।'

'हाँ अम्मा, ऐसी बात तो मन में आ रही है। मेरा जी तो बार-बार कुछ खाने को भी मचलता है।'

'तो मैं शरवत लाऊँ!'

'ना अम्मा, शरवत पीने से तो व्रत टूट जायगा।'

'हाँ, टूट तो जायगा, पर तुम्हारे मन ने तो व्रत वहुत पहले से तोड़ रखा है। तुम्हारी चालाकी व्रत का खेल कर रही है।'

'अम्मा, मैं तुम्हारी वात तो नहीं समझा, पर इतना जरूर जानता और कह सकता हूँ कि मेरा मन खाने के लिए वहुत मचल रहा है। अम्मा, मैं सच-सच कहता हूँ कि मैं तुमसे तो विल्कुल नहीं डरता। तुम्हारे सामने तो मैं शरवत क्या, खाना भी खा सकता हूँ, पर जीजी के सामने ऐसा नहीं कर सकता। जीजी चाहे मेरी हँसी न भी उड़ाये, पर यह वात मेरे साथियों तक जरूर पहुँचा देगी। फिर मेरे साथी मुझे क्या समझेंगे? मेरी खिल्ली उड़ायेंगे। खमानी, जिसने दिया न जलाने की प्रतिज्ञा ली है, तो मुझसे कहीं आगे वढ़ जायगा और मेरी हँसी करेगा।'

'तो क्या तुम, हँसी के डर से और तारीफ के लोभ से अपने मन को विगड़ने दोगे? यह ठीक है कि अगर तुम चाहो, तो मैं तुम्हारी वात किसी तक न पहुँचनें दूँगी। पर मैं इस वात में तुम्हारा भला नहीं समझती। हाँ, यह ठीक है कि मैं जीजी की तरह तुम्हारी वात तुम्हारे साथियों से नहीं कहूँगी। मैं जिस तरह कहूँगी, उससे तुम्हारे साथियों में तुम्हारी इज्जत घटेगी

नहीं। सचाई से कहीं इज्जत घटती है, उससे तो इज्जत और वढ़ती है।'

'अम्मा, तो क्या तुम भी मेरे साथियों से मेरे खाने-पीने की वात कह दोगी ?'

'नहीं, तुम चाहोगे, तो नहीं कहूँगी। पर मैं नहीं चाहती कि तुम यह चाहो कि मैं तुम्हारे साथियों से यह वात न कहूँ।'

'अम्मा, जव तुम उनसे कहोगी, तो क्या वे मेरी हँसी नहीं उड़ायेंगे ?'

'मैं जिस तरह कहूँगी, उससे तो ऐसा मालूम होता है कि वे तुम्हारी हँसी नहीं उड़ायेंगे ! अगर वे तुम्हारी हँसी उड़ायें भी, तो क्या तुम हँसी उड़ाने से वचने के लिए झूठ बोलना पसंद करोगे ? फिर व्रत का क्या फायदा रह जायगा ?'

'अम्मा, तुम वात तो विलकुल ठीक कहती हो, पर मेरा मन झूठ वोलने से इतना नहीं डरता, जितनी अपनी हँसी उड़ती देखने से।'

'वेटा, इस बुरे धर्म का रिवाज पड़ गया है और इसी रिवाज की तुम्हें भी आदत है। इसीलिए झिझक होती है। जव सच वोलने की आदत हो जायगी और हँसी उड़ने की वरदाश्त तुममें आ जायगी, तो फिर झूठ वोलने में झिझक हुआ करेगी और हँसी उड़ने का कोई डर न रह जायगा। देखो, अव तुम सोचो नहीं, शर्वत पीकर अपना व्रत पूरा कर लो। फिर यह व्रत तोड़ना भी कहाँ है ? चौवीस घंटे तुम्हें हो ही गये। एक दिन पूरा हो गया। वस, अव तुम शर्वत पी लो। दो-एक घंटे के वाद रवड़ी जैसी चीज खा लेना।

'अम्मा, तुम तो मेरा मन ललचा रही हो।'

'ना बेटा, ऐसा नहीं। मैं तुम्हें सच का पाठ दे रही हूँ। मैं अपने बेटे का मन क्यों ललचाने लगी ?'

'अम्मा, तो जीजी नहीं हँसेगी ?'

'जरूर हँसेगी। पर जब मैं उसे समझा दूँगी, तो वह नहीं हँसेगी।'

'और मेरे दूसरे साथी न हँसेंगे ?'

'वे भी जरूर हँसेंगे। उन्हें भी समझाना पड़ेगा।'

'और तुम समझती हो कि तुम उन्हें समझा लोगी।'

'हो सकता है, वे मेरे समझाये न समझें ! पर इससे क्या ? वे समझें या न समझें, मुझे तो अपने बेटे को समझाना और उसे सच्चा और पक्का बनाना है। अब तुम बताओ कि तुम भी मेरी बात समझ गये या नहीं ?'

'अम्मा, मैं समझा तो कुछ नहीं। हाँ, मेरा मन तुम्हारे कहने से शर्बत पीने और रात को कुछ खा लेने के लिए भी तैयार है।'

'हाँ, यह तुम्हारे लिए मुश्किल है कि तुम समझने और समझ जाने पर भी यह समझ सको कि तुम समझ गये हो। यह तो और भी मुश्किल है कि तुम मुझे बता सको कि तुम समझ गये हो। पर मैंने यह समझ लिया है कि तुम्हारा मन सचाई को समझ गया और यह सचाई मन से नीचे उतरकर वहाँ जा पहुँची, जहाँ से अब वह जल्दी भागनेवाली नहीं।'

'अम्मा' न जाने तुम क्या कहती हो। मेरी समझ में नहीं

आता। मैं तो इतनी ही बात जानता हूँ कि मैं तुम्हारे कहने से खा-पी लूंगा और मेरे साथी जब मुझसे पूछेंगे, तो मैं डरे बिना उनसे सच-सच कह दूंगा। फिर भी वे मेरी हँसी उड़ायेंगे, तो मैं कह दूँगा कि मैं कुछ नहीं जानता; बस, अम्मा का कहना मानना जानता हूँ। अम्मा ने कहा और मैंने खा लिया।'

'अपने साथियों के साथ तुम्हारा यह तर्क तो ठीक रहेगा ही, पर क्या तुम्हारे मन में ऐसी बात नहीं उठती कि तुम झूठ न बोलकर अब निडर होकर सच बोल सकोगे।'

'अम्मा, यह तुम कह रही हो, इसलिए मान लेता हूँ। मेरे मन पर तो अभी व्रत न तोड़ने का *धर्म* ही सवार है।'

'बेटा, यों नहीं, यों कहो कि मेरे मन पर तो अभी व्रत न तोड़ने का '*भूत*' ही सवार है।'

अम्मा की यह बात सुनकर मैं एकदम खिल उठा। पर उस वक्त यह नहीं समझ पाया कि मैं क्यों खिल उठा। मैं अम्मा के उस उपदेश का पूरा-पूरा तत्त्व तब समझ पाया, जब मैंने धर्म के एक बड़े ऊँचे ग्रन्थ में यह लिखा देखा कि—*'जोश में आकर बालबुद्धि से या कम जानकार गुरुओं के उपदेश से या गुस्से में आकर जो प्रतिज्ञाएँ कर ली जायँ, उन्हें तोड़ते हुए अगर डर लगे, तो यही समझना चाहिए कि धर्म का सच्चा श्रद्धान तुममें नहीं है।'*

तर्क से सत्य की खोज

मैं नहीं जानता, मेरी अनपढ़ माता में इतना ऊँचा तर्क कहाँ से और कैसे आ गया। मैं इसके सिवा क्या कह सकता हूँ कि

उनमें सत्य के समझने की सहज बुद्धि थी। एक नहीं, अनेक बार उन्होंने मुझे ऐसी सीख दी, जिनको मैं उस वक्त तो माँ के नाते ही मान लेता था। पर बड़े होकर ही मैं समझ पाया कि मेरी माँ की सीख हर तरह से इस योग्य थी कि उनका गुरु की सीख के समान आदर किया जाय और वैसा आदर मैंने किया भी। उन्हीं सीखों के बल पर आज मैं बिना किसी झिझक के यह कह सकता हूँ कि अपने-आप अपने अन्दर तर्क करने से सत्य जरूर खोजा जा सकता है। हमारे तजुर्बे सत्य की खोज में बड़े मददगार साबित होते हैं। सत्य खोज की चीज है और वह खोजने से ही मिलती है।

सत्य के खोजने में किसी योग्यता की शर्त लगाना, खोजी को खोज से रोकना है। हर आदमी को अपनी योग्यता के अनुसार सत्य की खोज में लगने देना चाहिए। जब तक इस रास्ते में समाज व्यक्ति को पूरी आजादी नहीं देगा, तब तक व्यवहारी सचाई का कुछ हिस्सा भले ही आदमी के हाथ लग जाय, पर पारमार्थिक सत्य का एक अंश भी उसके हाथ न लग पायेगा।

जिस आदमी को किसी तरह की रोक नहीं है, जिसके लिए कोई बात छिपी नहीं है, जिसे कुछ भी करने की मनाही नहीं है, वह पारमार्थिक सत्य को जितनी जल्दी पा सकता है, उतनी जल्दी कोई नहीं पा सकता। पुराण हमें चिल्ला-चिल्लाकर यही इशारा कर रहे हैं कि *पुण्य के कमल पाप की कीचड़ से ही खिलते हैं।* अन्धेरे से घबराकर ही हम प्रकाश की ओर भागते हैं। अन्धेरा हममें प्रकाश की चाह पैदा करता है।

जो सत्य ऐसा है, जिसके समझने की किसीके लिए भी मनाही है, वह सत्य ही नहीं हो सकता। जिस देवता के पास किसी एक को भी जाना मना है, वह देवता नहीं, बनावटी देवता है।

मन-मस्तक के साथ हाथ-पैर भी साधन

बस, सत्य की खोज में लगनेवाले को यह समझ ही लेना चाहिए कि वह खोज के रास्ते में इस लोक और परलोक के दण्ड से कभी न घबरायेगा। इतना उसे और समझ लेना चाहिए कि पारमार्थिक सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है, जो एकान्त में बैठकर, पहाड़ों की गुफा में आसन लगाकर, बे-मतलब सर्दी, गर्मी, बरसात के दुःख सहकर सिर्फ मनन-चिंतन से हाथ आ जाय। उसके लिए तो उसे मस्तक-मन के साथ-साथ तन से जुड़े हाथ और पैरों से ऐसा ही काम लेना पड़ेगा, जैसे मजदूर अपने पेट के लिए, रोटी जुटाने के लिए, उनसे काम लेता है। मजदूर जिन हाथों से रोटी जुटाता है, सत्य का खोजी मस्तक और मन की मदद से उन्हीं हाथों से सत्य को खोज निकालेगा।

यह ठीक है, सभी संत- महन्तों ने और सभी महापुरुषों ने सत्य खोजने के लिए हजारों वर्ष से चले आये रिवाज के अनुसार पहाड़ों की गुफाओं में आसन जमाकर, शिलाओं से अपना माथा टकराया है। पर अन्त में वे इसी नतीजे पर पहुँचे हैं कि उनका वह चिंतन समय का बर्बाद करना ही रहा। सत्य तो उन्हें समाज के भीतर प्रवेश करके ही हाथ आया। एक ऋषि ने क्या ही अच्छा कहा है कि इच्छाओं पर काबू पाना ही तपस्या है, देह की तपस्या तो देह को बेकार कष्ट देना है।

इच्छाएँ काबू में आयीं नहीं कि मस्तक खिला, मन में विशालता आयी, उदारता ने जगह पायी और हाथ और पाँव में सरसराहट आयी और फिर वह इस ढंग से बढ़े कि सत्य का कोई-न-कोई हिस्सा उनके हाथ लगा ।

● ● ●

: ३ :

सत्य का सिंगार क्यों ?

सत्य को सजाने की जरूरत नहीं। सजाने से सत्य की सुन्दरता कम हो जाती है। सत्य से सुन्दर जगत् में दूसरी चीज नहीं। 'सत्यम्, शिवम् सुन्दरम्' का यह अर्थ नहीं कि ये तीन अलग-अलग चीजें हैं। इसका अर्थ है, सत्य शिव और सुन्दर है। सत्य को ईश्वर कहा जाता है, तब वह शिव सुन्दर नहीं होगा, तो और क्या होगा ?

झूठ न सुन्दर होता है, न हो सकता है। जिन किताबों में काम की चीज कम रहती है, उनकी दूकानदार बड़ी खूबसूरत जिल्द बनाते हैं, उस पर सोने से बेलबूटे निकालते हैं। झूठ बाजार में सजधज के बिना नहीं आ सकता।

झूठ को यश की चाह होती है। उसे वर्दी पहनकर, पगड़ी बाँधकर सामने आना पड़ता है। झूठ ऐसा न करे, तो वह दुनिया में जगह नहीं बना सकता। झूठ के सजधजकर आने की वजह कुछ लोग सत्य को सजाने लगे हैं। इससे सत्य को, फायदा न होकर, नुकसान हुआ है। सजधज की वजह सत्य को अब कोई यों ही सत्य नहीं मान लेता, कसौटी पर कसकर देखता है। इसका मतलब है, सत्य सजावट की वजह आदमी की पहली निगाह में झूठ जँचता है। सजने की झूठ को जरूरत है। सजे

हुए सत्य को परीक्षा की आग में होकर निकलना ही पड़ेगा। यह ठीक है, सत्य परीक्षा में खरा उतरता है, पर उसे परीक्षा की जरूरत पड़े, यह शोभा नहीं देता।

सजावट ने, जिसकी झूठ के लिए जरूरत थी, सत्य की कम-कदरी कर दी ; उसे झूठ की पंगत में बिठा दिया।

दुनिया में ईमानदार, विचारवान् कम हैं और बुद्धिमान् भी कम पाये जाते हैं। आज दुनिया का काम बहुमत से चल रहा है। तब सत्य को जगह कहाँ ? यों सत्य को सजाकर लाने का रिवाज चल पड़ा। इस रिवाज से सत्य की भलाई नहीं हुई। हाँ, झूठ की भलाई जरूर हुई। सत्य दब गया और झूठ सारी दुनिया में फैल गया। इस झूठ से भरी दुनिया में अगर बहुमत की पर्वाह की जाय, तो सत्य कभी हाथ नहीं लग सकता। इसलिए ईमान-दार, समझदार, बुद्धिमान् सत्य के मामले में बहुमत की पर्वाह नहीं करते। वे सत्य को कहे जाते हैं, दुनिया के सामने बराबर रखते हैं, भले ही सत्य बोलने, सत्य विचार फैलाने या सत्य समझाने से उन पर कितनी ही आफत क्यों न आये ?

कुछ माँ बाप, सत्य की कदर करने पर भी, अपने छोटे बच्चे से सत्य को न जाने क्यों छिपाये रखना चाहते हैं या छिपाये रखते हैं। उनका छोटा बच्चा झूठ-विचारों में फँस रहा होता है, फँसने को होता है या फँसने की संभावना में होता है और वे देखते रहते हैं। इसे आप मेरा सौभाग्य समझिये कि मुझे ऐसी माँ मिली थी, जो सत्य को मुझसे उस वक्त भी छिपाकर न रखना चाहती थी, जब मैं बारह बरस का था। वह सत्य बात क्या थी, उसे सुनिये।

मन्दिर का पट बन्द क्यों ?

भादों के महीनों में पर्व शुरू होने से पहले एक-दो दिन ऐसे होते थे, जब दोपहर के वक्त छोटे बच्चों को मंदिर में नहीं आने दिया जाता था। दो-चार अधेड़ और बड़े-बूढ़े मंदिर के अंदर रहते थे। वे अन्दर से दरवाजा बन्द कर लेते थे। तीन-चार घंटे बराबर बच्चों के लिए अंदर आने की मनाही रहती थी। मैं बारह बरस का था, पर उमर के लिहाज से काफी समझदार था। मुझे भी अन्दर नहीं आने दिया जाता था। यह रोक-टोक मुझे बहुत अखरती थी।

इस रोक-टोक के बारे में मैं अपने और साथियों से पूछता, लेकिन वे कुछ न बता पाते। सोलह-सतरह बरस के लड़के भी कुछ न बताते। या तो वे जानते न हों या जानबूझकर बात छिपाते हों। बड़े-बूढ़ों से जब यह बात पूछी गयी, तब फटकार हाथ आयी। वे लोग, जो मन्दिर में बंद होकर काम करते थे, मेरे करीबी रिश्तेदार होते थे। मुझे प्यार करते थे, मुझे अच्छा लड़का समझते थे, पर वे भी यह न बताते थे कि किसलिए मंदिर में बंद रहते हैं। नहीं बताते थे, इतना ही नहीं, नाराज होकर कह बैठते "क्या पूछते हो ?" यह सुनकर मैं अपना-सा मुंह लेकर रह जाता।

मैं था तो बारह बरस का, पर भूत-प्रेत में बिलकुल विश्वास न करता था। मेरे माँ-बाप को छोड़कर सारा मुहल्ला भूत-प्रेत का विश्वासी था। मुहल्ले के दो खाते-पीते घराने भूत-प्रेत बुलाने का काम करते थे। उनमें से किसी एक घर में होली-दिवाली को

जरूर भूत बुलाये जाते थे। इस काम के लिए जो सभा लगती थी, उसे '*अखाड़ा*' कहा जाता था। ऐसे अखाड़ों में, जहाँ तक बने, बच्चों को नहीं आने दिया जाता था। लेकिन अगर कोई बच्चा आ ही जाय, तो उसे निकाला नहीं जाता था। उसे उस मिठाई से भी वंचित नहीं रखा जाता था, जो अखाड़े में भूतों के आने पर सभा को बाँटी जाती थी। मुझे इस मिठाई का बड़ा लालच रहता और किसी-न-किसी तरह वहाँ पहुँच जाता।

एक बार एक लड़के से भूत के बारे में बहस हो जाने पर मैं यह कह बैठा, "आज तुम्हारे बाप के सिर पर कोई भूत न आने दूँगा।" उस लड़के का बाप अखाड़े में भूत बुलाने का काम करता था। उस लड़के से शर्त हो गयी। दिवाली का दिन था। रात काफी ठंडी हो चुकी थी। मैं एक कपड़ा ओढ़कर और बाँस की एक खपच्ची में एक सूई बाँधकर अपने कपड़े में छिपाकर उस लड़के के साथ, जिसे मैंने चुनौती दी थी, उसके घर पहुँचा। अखाड़े में ठीक उसके बाप के पीछे बैठ गया। वह लड़का मेरे बराबर बैठ गया। अखाड़े में लालटेन न थी। कोठरी के एक कोने में एक दिया जल रहा था। वह ऐसी जगह था, जहाँ से वह मेरे ऊपर लड़के के बाप की परछाई डाल रहा था, यानी मैं कुछ अँधेरे में था। अखाड़े के और लोग मुझे ठीक-ठीक न देख सकते थे।

मेरे पहुँचने के दो मिनट बाद लड़के के बाप ने एक भूत बुलाया। जैसे ही लड़के के बाप ने सिर हिलाना शुरू किया, मैंने चुपके से खपच्ची में बँधी सूई पीछे से लड़के के बाप के बदन

में चुभा दी। खपच्ची चट नीचे छिपा ली। सिर हिलना वंद हो गया। लड़के के वाप ने दाँयें-वाँयें गुस्सा होकर देखा, पर कुछ न समझा, फिर भूत वुलाया गया। वह आया, मैंने फिर सूई चुभायी, वह फिर भाग गया। फिर उसी तरह दाँयें-वाँयें निगाह डाली गयी, फिर भी कोई कुछ न समझा। आध घंटे की कोशिश के वाद लड़के के वाप को यह कहना पड़ा कि आज भूत सिर न आयेगा।

दूसरे दिन सारा भेद खुल गया। उस दिन के वाद से मुझे कभी अखाड़े में शामिल नहीं होने दिया गया। शायद यह भी एक कारण हो कि मुझे मंदिर में उस वक्त न आने देते हों, जव किसी और लड़के को वहाँ आने की इजाजत न थी।

जव मैं सब जगह से निराश हो गया, तव अपनी माँ से पूछ वैठा, 'माँ, हम वच्चों को मंदिर में ये लोग क्यों नहीं आने देते ?' माँ वोलीं, 'मंदिर तो तुम रोज जाते हो, कोई रोकता नहीं। कव किसने तुम्हें रोका ?' मैं वोला, 'हर साल भादों की पूजा शुरू होने से पहले दो-तीन दिन दोपहर को कुछ लोग मंदिर में दरवाजा वंद करके वैठ जाते हैं, हम लड़कों को अन्दर नहीं आने देते। दो-एक दिन की वात होने से मैं हर साल तुमसे पूछना भूल जाता था, इस साल भी कल ऐसा ही हुआ। आज भी अभी मैं मंदिर से आ रहा हूँ, कोई दरवाजा नहीं खोलता, कोई कुछ वताता भी नहीं। अम्मा, यह वात क्या है ?'

अम्मा हँस पड़ीं, वोलीं, 'अच्छा यह वात है ? वेटा, वात कुछ नहीं, लोग दरवाजा वंद करके पूजा के लिए मंदिर की सफाई करते हैं, इसलिए वच्चों को नहीं आने देते।'

मैं वोला, 'और वच्चे न सही, मैं तो सफाई के काम में पूरा हाथ वँटा सकता था। जव वे वेदी सजाते हैं, तो मुझसे काम लेते हैं, औरों से भी लेते हैं।'

अम्मा वोलीं, 'पर इस वक्त वे वेदी नहीं सजा रहे हैं। भगवान् की मूर्तियाँ साफ कर रहे हैं।'

मैं वोला, 'यह काम भी मैं अच्छा कर सकता था।'

अम्मा वोलीं, 'तुम अच्छा तो कर सकते थे, पर कहीं से कोई मूरत टूट-फूट जाती तो क्या होता?'

मैं वोला, 'और उनसे टूट-फूट जाय तो?'

अम्मा वोलीं, 'वे वहुत होशियारी से काम करते हैं। इतनी वड़ी जिम्मेदारी का काम तुम्हें नहीं सौंप सकते।'

मैं वोला, 'यह ठीक, वे मुझे काम न दें, पर अन्दर क्यों नहीं आने देते? देखने क्यों नहीं देते? और सफाई की तरह वह भी एक सफाई है। औरों में आने देते हैं, तो इसमें क्यों रोकते हैं?'

अम्मा वोलीं, 'वजह यह है कि धातु की मूर्तियों की सफाई करते वक्त उनको टेढ़ा-सीधा कर माँजना पड़ता है। कभी जरूरत पड़ जाय, तो पाँव का जोर भी लगाना पड़ता है। इसलिए वहाँ वच्चों को नहीं रहने देते।'

मैं वोला, 'इसमें न रहने देने की क्या वात है?'

अम्मा वोलीं, 'वच्चे मूर्तियों का इस तरह माँजना देखकर मूर्तियों को खिलौना समझने लगेंगे और सारा आदरभाव खो वैठेंगे। भगवान् मानना छोड़ देंगे और कभी अकेले में छोटी-छोटी मूर्तियों के साथ ऐसे ही खेलने लगेंगे, जैसे और खिलौनों के साथ।'

मैं बोला, 'तो वह भगवान् नहीं हैं ?'

अम्मा बोलीं, 'भगवान् नहीं, भगवान् की मूरत हैं ।'

मैं बोला, 'भगवान् की मूरत जैसे लालाजी की तसवीर ।'

अम्मा बोलीं, 'तसवीर नहीं, जैसे लालाजी की मूरत । लालाजी की मूरत को, अगर वैसी कोई मूरत तुम्हारे घर में होती, तो तुम अच्छी तरह सँभालकर रखते या नहीं ?'

मैं बोला, 'सँभालकर तो रखता, पर धोक (साष्टांग नमस्कार) न देता ।'

अम्मा बोलीं, 'धोक तो तुम लालाजी को भी नहीं देते । पर भगवान् अगर तुम्हारे लालाजी की तरह जीते-जागते तुम्हारे सामने आ जाते, तो तुम धोक देते या नहीं ?'

मैं बोला, 'हाँ, तब तो धोक देता ।'

अम्मा बोलीं, 'बस, यही बात भगवान् की मूरत की है । उन्हें रगड़ते-माँजते देख बच्चों में मूर्तियों का आदर कम हो सकता है। अपने लालाजी को तुम रोज देखते हो । उनसे थोड़ा-बहुत डरते भी हो। पर भगवान् को तुमने कभी नहीं देखा, उनका नाम सुना है, उनकी कथा सुनी है । अपने लालाजी से और मुझसे तुमने भजन सीखे हैं, प्रार्थना सीखी है । भगवान् की मूर्तियों को धोक देना सीखा है, पर सब सुना सीखा है। यह सुनी-सीखी बातें तुम्हारे दिल से निकल सकती हैं, अगर तुम किसीको मूर्ति से पांव लगाते या बुरी तरह उलटते-पुलटते देख लो ।'

मैं बोला, 'अम्मा, मंदिर के भगवान् हमें इम्तिहान में पास नहीं करा सकते ?'

अम्मा बोलीं, 'नहीं, कभी नहीं करा सकते, इम्तिहान में पास तो तुम मन लगाकर पढ़ने से होगे, तुम्हारे लालाजी तुम्हें पढ़ाकर पास करा सकते हैं। उनकी तसवीर या मूरत तुम्हें पास नहीं करा सकती, क्योंकि वह तुम्हें पढ़ा नहीं सकती। तुम अपने लालाजी की तसवीर को नमस्कार करके खुद खुश हो सकते हो, मुझे खुश कर सकते हो, अच्छे लड़के समझे जा सकते हो। पर उस तसवीर से पैसे माँगकर, पैसे नहीं पा सकते। इस तसवीर से कुछ पूछो, तो जवाब नहीं पा सकते।'

'अम्मा, तो भगवान् से हमें कुछ नहीं मिलेगा?'

अम्मा बोलीं, 'कुछ क्यों नहीं मिलेगा? उनकी कथा सुनने से तुम्हारे अंदर तुम्हारा मन भलाई करने के लिए जोर मारेगा। इतना मिलना क्या कम है? देखो, मुहल्ले के सब लड़के गाली देते हैं, तुम कभी गाली नहीं देते, क्योंकि तुम्हारे पिताजी कभी गाली नहीं देते, मैं गाली नहीं देती। देखो, तुम्हारे स्कूल के लड़के गिलोल रखते हैं, बेमतलब चिड़ियाँ-कौए मार डालते हैं। गिलोल तुम्हारे पास भी है, पर तुम वैसा नहीं करते; क्योंकि तुम्हारे लालाजी वैसा नहीं करते, मैं वैसा नहीं करती। तुम अपने घर के नौकर को वैसा नहीं करने देते, हम सब ऐसा इस वास्ते नहीं करते कि हमारे भगवान् ऐसा नहीं करते थे। हमने यह बात उनकी कथा सुनकर सीखी, तुम्हें सिखायी। उन्हीं भगवान् की मूरत मंदिर में है। हम सब उनको धोक देते हैं, ठीक करते हैं। उनसे और क्या चाहिए?'

मैं बोला, 'हम सब तो यह समझते थे कि मंदिर के भगवान्

सब-कुछ कर सकते हैं। अम्मा, जब भूल से मैं उनकी तरफ पीठ कर देता था, तो रात को बड़े-बड़े डरावने सपने आते थे। ऐसा क्यों होता था ?'

अम्मा बोलीं, 'डरोगे तो डरावने सपने आयेंगे, किसीको डरायेंगे तो डरावने सपने आयेंगे। किसीको डराने की सोचोगे तो डरावने सपने आयेंगे। जो सपने डरावने तुम्हें आये, वे डरने से आये।'

मैं बोला, 'तो अम्मा, हमें भगवान् से नहीं डरना चाहिए ?'

अम्मा बड़े प्यार से बोलीं, 'भगवान् से डरने का क्या काम ? वे हमारा डर दूर करने के लिए पैदा हुए हैं। उनकी कथा सुन-सुनकर हमारे कितने ही डर भाग गये। भगवान् से डरा नहीं करते। डरना चाहिए किसीको दुःख पहुँचाने से, किसीका जी दुखाने से किसीकी चीज छीन लेने से और इसी तरह के और काम करने से।'

अम्मा की इन बातों का असर उस उमर में तो कुछ मालूम न हुआ। इन बातों के बाद भी सब काम वैसे ही चलते रहे, जैसे हमेशा चलते थे। हाँ, उमर पाकर उस बात में अंकुर फूटे और सत्य के समझने में खूब मदद मिली।

सत्य छिपाना भी असत्य

सत्य छिपाना असत्य है। पर अगर किसीका कोई भेद तुम्हारे पास है, और अगर उसे न छिपाकर किसी दूसरे से कह दो, तो यह न छिपाना असत्य होगा। व्यवहार में जो सत्य आ रहा है, इस किताब में हमने उसे 'सच' नाम दिया है। पर जो गहरी

असलियत है, उसे हम 'सत्य' कहकर लिखते हैं। वही असलियत-वाला सत्य छिपाने की चीज नहीं। सबको बताने की चीज है। मेरी माँ ने अपनी बुद्धि के अनुसार, जितना सत्य वह जानती थीं, सब-का-सब बड़े मीठे और सीधे ढंग से मुझे समझा दिया। मैं सत्य समझ गया और कोई ऐसी बुराई मुझमें न आ पायी, जो दूसरी तरह समझाने से आ जाती।

सत्य के मामले में किसीका खयाल रखने से या बहुमत की पर्वाह करने से, या सिद्धान्तों पर अड़ जाने से काम नहीं चलता। सत्य हमारी बुद्धि के अनुकूल जँचना चाहिए।

जब सत्य खोजने के लिए निकले, तो उसे हर जगह खोजना चाहिए। जहाँ वह मिले, वहीं चले जाना चाहिए। उसके लेने में सुख मानना चाहिए। ईमानदारों का यही रास्ता है। ईमानदारी इसी राह गयी है। बुद्धिमानी इसी राह चलकर कुछ पा सकी।

दुनिया में आदमी ने हर जगह सत्य की खोज की। इतिहास इन खोजियों की कथा से भरा पड़ा है। सत्य की खोज की खातिर आदमी ग्रन्थ पढ़ता है, उसकी हर बात में फँसकर नहीं रह जाता। सोने का खोजी जमीन खोदता-खोदता सोने के पास रुकेगा। बीच की चीजें छोड़ता चला जायगा। सत्य का खोजी इसी तरह आगे बढ़ता चला जायगा। पर रास्ते में आये असत्य को सत्य समझकर अपनी खोज छोड़ न बैठेगा।

सत्य को सजाना : उसे लजाना

तरह-तरह के विज्ञानवेत्ता अपनी-अपनी खोज में लगे हैं। एक सत्य के बाद दूसरे सत्य पर जाते उन्हें जरा झिझक नहीं

होती । वे सब तरफ से सत्य का संग्रह करते हैं और जो मार्के की बात उनके हाथ लगती है, उसे दुनिया को दे डालते हैं । ऐसा करने से उनका साहस और बढ़ जाता है ।

'जो अब इस दुनिया में नहीं हैं, वे क्या कह गये हैं ? जो आज हैं, उनके क्या विश्वास हैं ?' सत्य के खोजी इन सबको ज्यों-का-त्यों नहीं मान लेते । उन सब बातों को अपनी कसौटी पर कसते हैं । ईमानदारी से उन बातों के बारे में अपने विचार सबके सामने रख देते हैं । जो सत्य के मित्र हैं, ध्यान से वह उनकी सुनते हैं । जो सत्य के शत्रु हैं, वे उनकी बात न खुद सुनते हैं, न औरों को सुनने देते हैं । जो ऐसा करते हैं, उन्हें स्वार्थी समझना चाहिए । यह समझना चाहिए कि वे बेहयाई की पगड़ी बाँधकर दुनिया को धोखे में रखना चाहते हैं ।

यह कहना कि मेरा सोना ऐसा है कि मैं इसे कभी आग में नहीं रखने दूँगा, यह बताता है कि सोना खरा नहीं । वैसे ही किसीका यह कहना कि मेरे सिद्धान्त और मेरे ग्रन्थ इतने पवित्र हैं और ऐसे आदमी के कहे हुए हैं, जो सब-कुछ जानते थे, इसलिए मैं किसीको उन सिद्धांतों के विषय में कुछ न कहने दूँगा, इस बात का सबूत है कि वे सिद्धान्त खोटे हैं । इसीसे परीक्षा के बिना उन्हें खरे और पवित्र कहलवाना उन ग्रन्थों की इज्जत बढ़ाना नहीं, उनके बारे में संदेह पैदा करना है ।

सोना सजाता है, सजता नहीं । सत्य सजाता है, सजता नहीं । सत्य को सजाना सत्य को लजाना है ।

● ○ ○

: ४ :

सत्य की वफादारी

अपने सिवा और की वफादारी में दासता न रहे, ऐसा हो नहीं सकता। दासता के दाग से आत्मा को बचाने के लिए हर आदमी को अपने लिए वफादार होना पड़ेगा। जो आदमी अपने लिए वफादार यानी ईमानदार नहीं है, वह अपनी आत्मा यानी अपने भीतर जगमगाते प्रकाश के लिए कैसे ईमानदार हो सकता है ? उसी प्रकाश का दूसरा नाम है, सत्य। उसी सत्य को कुछ लोग 'परमेश्वर' कहकर पुकारते हैं।

सत्य की वफादारी का अर्थ

अब सत्य के लिए कौन ईमानदार होना पसंद न करेगा ? जो सत्य के लिए ईमानदार है, वह दुनियाभर के धर्मों को, उनके सिद्धान्तों को अपनी मस्तक की परीक्षा-शाला में जाँच किये बगैर न मानेगा। कोई असलियत उसके लिए असलियत ही नहीं, जब तक उसकी कसौटी पर ठीक न उतरे। जो सचाई उसे तर्क से ठीक नहीं जँचती, उसे चाहे वह असत्य न भी कहे, पर सत्य कहकर कभी मान नहीं सकता। तर्क की कसौटी पर कसे सत्य को ही मानना, उसीसे प्यार करना सत्य के प्रति वफादार रहना है। यही वफादारी बुद्धि की पवित्रता कहलाती है, आदमियत नाम पाती है, स्वतंत्रता का पद पाती है। असल में स्वाधीन मनुष्य का मानसिक गुण यही है।

किसी वालक ने आग को तव तक गरम नहीं माना, जव तक उसने अपनी उँगली उसमें नहीं जलायी। तव कोई वात सिर्फ इसलिए क्यों ठीक मान ली जाय कि उसे कोई धर्म-संस्था ठीक मानती है या पुरोहितों, मौलवियों और मुल्लाओं का दल उसे ठीक समझता है या राजाज्ञा भी उसे ठीक समझती है। देवताओं के नाम पर लिखी किताबें, इलहामी या अपौरुषेय माने जानेवाले ग्रंथ कव किसकी तसल्ली कर पाये हैं? किसीने उनमें अपनी तसल्ली मान ली, तो सिवा धक्के खाने के उसके हाथ आया भी क्या है?

एक दिन मैं अपनी माँ से पूछ वैठा कि 'अम्मा, गुरुजी की वात सच्ची होती है या अम्मा की?' अम्मा वोलीं, 'सच तो दोनों ही होती हैं, पर मानने और अमल करने के लिए सच वही है, जो तुम्हें भी सच जँचे और सच सावित हुई हो।' मैंने कहा, 'अम्मा, तुमने तो मुझे चक्कर में डाल दिया!' मैं उन दिनों था १२ वरस का। इस सवाल की तह में थी एक वात!

स्कूल के रास्ते में एक पेड़ था। मास्टरजी ब्राह्मण थे, भूत-प्रेतों में विश्वास करते थे। एक दिन क्लास के सव लड़कों से वोले कि 'सड़क के किनारेवाले पीपल पर भूत रहता है, उसे आते-जाते हाथ जोड़ लिया करो।' अम्मा से जव मैंने यही वात पूछी, तो वह वोलीं, 'हुश, पेड़ों पर कहीं भूत रहते हैं?' वात आयी-गयी हो गयी। अम्मा की कहानियों के वल पर मैं ढीठ वन गया और यह समझ वैठा था कि देवी-देवता होते तो हैं, पर उनसे डरना नहीं चाहिए। डरने से वे उल्टे सताते हैं, न डरो

तो काबू में हो जाते हैं। इसी विश्वास पर मैं यह प्रण ले बैठा कि रोज उस पीपल के पेड़ में दो ईंट मारूँगा। पर प्रण इस बात का सबूत तो है ही कि डर मन में था और उसे छिपाने का ईंट फेंककर पेड़ पर मारना अच्छा बहाना रहा। एक दिन रात के नौ बजे अकेले उस पेड़ के पास से गुजरना पड़ा। दबा हुआ डर अब ऊपर आ गया। कहानी के जरिये पायी सीख के बल पर दो ढेले उठाये। आँखें बन्द कीं और दौड़ते-दौड़ते निशाना जमाया। एक ढेला खाली गया, दूसरा पत्तों के झुरमुट पर लगा। लगते ही फड़-फड़ आवाज आयी, रोंगटे खड़े हो गये। तुरंत ही पता लग गया गिद्ध उड़ा, जो उस पर बैठा आराम कर रहा था। स्कूल के पास बोर्डिंग पर जाकर दम लिया। बात मास्टरजी तक पहुँची। कुछ उल्टी-सीधी बातें सुनने को मिलीं। इसीलिए यह सवाल अम्मा से पूछा गया था। अब अम्मा के जवाब से तसल्ली क्या होती? आखिर सवाल साफ-साफ अम्मा के सामने रखना पड़ा।

'अम्मा, मास्टरजी कहते हैं कि स्कूल के पास के पेड़ पर भूत रहता है, तुम कहती हो वहाँ भूत नहीं रहता। अब बताओ, कौन ठीक कहता है?'

अम्मा बोलीं, 'मास्टरजी ने देखा होगा, यों वह ठीक कहते होंगे। मैंने कभी नहीं देखा, यों मैं ठीक कहती हूँ।'

'तो मैं क्या मानूँ?'—मैं बोला।

'क्या तुमने कभी पेड़ पर भूत देखा?'—अम्मा ने पूछा।

'मैंने तो कभी नहीं देखा!'—मैंने जवाब दिया।

'तव तुम यह मानो कि उस पर भूत नहीं रहता और जिस दिन देख लो, उस दिन मेरे पास आना। फिर मैं समझूँगी, कैसा भूत देखा और मैं भी देखने चलूँगी।'–माँ ने समझा दिया।

'अम्मा, मैं हूँ तो पक्का, पर थोड़ा-थोड़ा डर तो लगता ही है।'–मैंने अपने मन की वात साफ-साफ कह डाली।

'भूत को जव देखा ही नहीं, तव डर कैसा और जव देख भी लोगे, तो डर कैसा? वह जव तुम्हें कुछ मारे-पीटे, तव डर की वात आयेगी।'—अम्मा ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए और डर को भगाते हुए कहा।

'अम्मा, तो फिर मैं मास्टरजी की वात न मानूँ?'—मैं पूछ वैठा।

'हाँ, विल्कुल मत मानो, जव तुम अपनी आँखों कुछ न देख लो। आँखों ही नहीं, समझ की आँखों, आँखें तो कुछ-न-कुछ देखती ही हैं।'—अम्मा ने मेरी तसल्ली करते हुए कहा।

'अम्मा, मास्टरजी हमें डराते क्यों हैं?'—मैं वोला।

'मास्टरजी का डराना ठीक तो नहीं है, पर शायद वह तुम्हें डर दिखाकर यह चाहते होंगे कि तुम अपनी शरारत से उसके पत्ते वेमतलव न तोड़ो। पीपल के नये पत्ते वालकों को वड़े प्यारे लगते हैं। जव तुम उनकी कोपलें तोड़ना चाहते हो, तो गरमी में वह लुड़-मुड़ रह जायगा और फिर तुम उसकी छाया भी न पा सकोगे।'–माँ ने समझाया।

'यह वात है, तो फिर मास्टरजी साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'—मैं ऐंठकर वोल पड़ा।

'साफ-साफ कह देते, तो तुम मुझसे इतनी वात क्यों पूछते ?'—वह पुचकारकर वोली ।

'अम्मा, तो फिर हम किसीकी वात न मानें ?'—मैंने कहा ।

'यह मैं कहाँ कहती हूँ, मैं तो यह कहती हूँ, जिन्हें तुम अपनी १२ वरस की वुद्धि पर कस सकते हो, उन्हें उस पर कसकर मानो । मुझे ही देखो, मैं करवा-चौथ का व्रत तुम्हारे लालाजी की खातिर ही तो रहती हूँ; पर वे भी जव आकर यह कह देते हैं कि चाँद निकल आया, तो मैं उतावली वनकर खाना नहीं खा लेती । छत पर जाकर अपनी आँखों चाँद देखती हूँ, अपनी मन की करती हूँ । जव इतनी छोटी-छोटी वात हम सोच-समझकर करते हैं, तव और वातें भी सोच-समझकर क्यों न करें ?'—माँ वड़े प्यार से सव मुझको समझा गयीं ।

'अम्मा, यह करवा-चौथ की कहानी क्या है ?'—मैं पूछ वैठा ।

'अरे, वह तो तुम जानते हो, कई वार सुन चुके हो कि एक भाई ने मोह में आकर अपनी वहन के लिए नकली चाँद वनाकर पेड़ की डालियों में से दिखा दिया था और उसे चाँद निकलने से पहले खाना खिलवा दिया था । उसकी वजह से उस वहन का पति मर गया । पर कहानी की सीख इतनी है कि हर काम समझ की आँख से देखकर करना चाहिए ।'

ठीक यही है कि हर आदमी अपने-आप सोचे, अपनी आत्मा की आवाज सुने और उसीकी सुनकर खोज में लगे । यही है सत्य के प्रति वफादारी । अव अगर कोई उसे डरा-धमकाकर खोज करने से रोकता है, तो वह मनुष्य-समाज को नीचे गिराने का काम करता है ।

पक्षपात से बचें

सत्य की वफादारी सबसे कीमती हीरा है। हमें कबीर के शब्दों में गठ-गठियाकर रखना चाहिए और किसीकी बातों में आकर उसे फेंकना नहीं चाहिए। लगाव-दुराव से अलग रहकर ही किसी नये सवाल पर विचार करना चाहिए, नहीं तो बुद्धि सत्य तक कभी पहुँच न सकेगी। बुद्धि बदनाम भले ही हो, पर उसे सत्य से कभी धोखा नहीं हुआ है। असत्य से जिस बुद्धि को जब भी धोखा होता है, वह उस समय राग-द्वेष से दबी होती है। धोखा पक्षपात से होता है, बुद्धि से नहीं। तर्क का भी यही मत है। वह उधर को ही चल देता है, जिधर तर्क से काम लेनेवाले की तबीयत होती है। पक्षपात में यह बड़ा ऐब है कि वह तर्क की तराजू को उस ओर झुका देता है, जिस ओर कोई बड़ा आदमी, नामी ग्रन्थ, जोरदार रीति-रिवाज या कोई पुराना सिद्धान्त होता है। पक्षपात-रहित बुद्धि ऐसी किसी चीज की परवाह नहीं करती। वह सीधी सत्य तक पहुँचती है और उसीकी वफादार रहती है।

सचाई और वफादारी की राह में पक्षपात की तरह अभिमान और द्वेष कुछ कम नहीं हैं, उनसे बचना बहुत जरूरी है।

नये-पुराने, दोनों में से किसीका भी अगर खोजी को अभिमान है, तो सचाई हरगिज याद न आयेगी। हर मरे हुए आदमी को सिद्ध पुरुष समझ बैठना या हर जीवित आदमी को मूरख मान लेना सत्य के प्रति ना-वफादार होना है। सत्य की बेइज्जती इससे ज्यादा क्या हो सकती है कि किसी बात को सिर्फ इसलिए सत्य मान लेना कि वह एक राजा के मुँह से निकली है या इसलिए सत्य

मान लेना कि वह किसी पुरानी या ऐसी किताव में है, जिसे सैकड़ों-लाखों पूजते हैं। जो सत्य-बुद्धि की कसौटी पर अपने-आपको नहीं घिसवाना चाहता और सिर्फ वूतों पर सत्य बना रहना चाहता है कि वह किसी अवतार या बड़े पैगम्बर, सन्त के मुँह से निकला है, तो मूर्खों में ही उसकी गिनती होगी। सोने को घिसे जाने, छेदे जाने, तपाये जाने और पीटे जाने से कभी इनकार नहीं होता, जिस तरह आदमी को यह बताने में कि वह क्या पढ़ा-लिखा है, क्या-क्या बात जानता है, किस गुरु से क्या पढ़ा है, बताने में कोई एतराज नहीं होता। सत्य, जो आदमी के मुँह से निकला होता है, उसकी परीक्षा से इनकार क्यों ? सत्य के प्रति वफादार आदमी हर बात को बुद्धि की कसौटी पर कसता है, अपनी समझ की आँख से देखता है।

बहुमत की कसौटी धोखे की

'बहुत आदमी क्या कहते हैं', इस कसौटी पर कसा हुआ सत्य बड़े धोखे की चीज है। बहुत आदमियों की बातें ही अगर सत्य की कसौटी मानी जाती रही, तो आज हम अविद्या के गड्ढे में ऐसे ही पड़े होते, जैसे हमारे देश में ही हमारे भाई गोंड, भील, संथाल और नागा लोग पड़े हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि सत्य का पता अभी तक न किसीको लगा है और न यह उम्मीद है कि वह जल्दी ही किसीको लग जायगा। जो सत्य हम जानते हैं, उसे सत्य कहना अपने-आपको धोखे में डालना है। इस धोखे से बचने के लिए हमने 'सत्य' और 'सच', दो शब्द अपनाये हैं। सत्य हम उसे

कहते हैं, जिसका अभी तक किसीको पता नहीं लगा है और जिसकी खोज में हमसे पहले हमारे बाप-दादे अनगिनत निकल चुके हैं और आज भी अनेक उसी सत्य की खोज में घर छोड़कर जंगलों की खाक छानते फिरते हैं। आगे भी न जाने कितने युगों तक हमारी अगली सन्तानें इसी सत्य की खोज के लिए निकलेंगी और न जाने क्या लेकर लौटेंगी। यही वह सत्य है, जिसके लिए हम आज की सन्तान पर जोर दे रहे हैं और यह कह रहे हैं कि वह उसकी खोज में निकले।

'सच' हमने उसे नाम दिया है, जिसे आज हम अपने ज्ञान की खोज से पा चुके हैं। हमने आज जो कुछ जाना है, उसे हम 'सच' की कोटि में ही डालते हैं, 'सत्य' की कोटि में नहीं। असली सत्य हमारा आदर्श है, रहा है और आगे भी बना रहेगा। उसे आदर्श बनाये रखने में हमारा यही फायदा है कि हम अविद्या के भँवर से अपनी बुद्धि की नाव को खे ले जाते और इस तरह असत्य से बच जाते हैं। फिर जो कुछ हमारे हाथ लगता है, वह पूरा सत्य न भी हो, पर असत्य नहीं होता। बस, इस अधूरे असत्य का नाम ही हमने 'सच' रख छोड़ा है। सच का मतलब है, सापेक्ष सत्य यानी कामचलाऊ सत्य। इसी कामचलाऊ सत्य का नाम हमने सुभीते के लिए 'सच' रख लिया है।

यह सुभीतेवाला सच भी अगर बहुमत की कसौटी पर कसकर अपनाया जाने लगे, तो फिर हम कहीं के न रह जायँ। यह किसे नहीं मालूम कि आज की जनता ईश्वर के बारे में न जाने क्या-क्या विचार बनाये बैठी है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक,

अपढ़ से लेकर पढे-लिखे तक और नासमझ से लेकर समझदार तक, सभी अपने-अपने ढंग से और अपने-अपने मतलब के ईश्वर बना बैठे हैं। ऐसी जनता के बहुमत से क्या कोई भी बात तय की जा सकती है ? इसीलिए हमें सत्य की जाँच करने के लिए बहुमत की कसौटी को कहीं न अपनाना चाहिए।

धर्मग्रन्थ भी सच की कसौटी नहीं

कोई किताब न इलहामी हो सकती है और न सर्वज्ञ की रची, क्योंकि जो-जो धर्म इस बात का दावा करते हैं कि उनके धर्म-ग्रन्थ ईश्वर या सर्वज्ञ के कहे हैं, वे जब भी किसीको अपने धर्म में लाने की कोशिश करते हैं, तब उसके सामने यह दलील नहीं रखते कि वह उनके ग्रन्थों की सचाई सिर्फ इस वजह से स्वीकार कर ले कि वह सर्वज्ञ के कहे हैं या किसी ईश्वर के मुँह से निकले हैं। वह तो उस आदमी से यही कहते हैं कि भाई, तुम हमारे ग्रन्थों की सचाई को अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो और अगर वह ठीक उतरे, तो तुम उसे अपना लो और हमारे धर्म में शामिल होकर हमारे रीति-रिवाज मानो। वे दूसरे धर्म-वालों से श्रद्धा से नहीं, बुद्धि से अपील करते हैं। सब धर्मवालों का यही हाल है, फिर चाहे वह हिन्दू-धर्म हो, बौद्ध-धर्म हो, जैन-धर्म हो, ईसाई-धर्म हो, इसलाम-धर्म हो या नये धर्मों में से कोई हो।

अगर धर्म पर ईमान लाने के लिए सर्वज्ञ, ईश्वर या पैगम्बर के शब्द काफी हुआ करते, तो फिर संसार में न नये-नये धर्म जन्म लेते और न शास्त्रार्थ जैसी चीज कहीं देखने को मिलती।

शायद फिर विज्ञान की यह तरक्की भी हमारी आँखों के सामने न आ पाती, जिसका आज हमारी सारी इन्द्रियाँ अपने-अपने ढंग से उपयोग कर रही हैं। इसलिए अपौरुषेय, इलहामी और सर्वज्ञों के कहे हुए पुकारे जानेवाले ग्रन्थ ऐसे नहीं हो सकते, जिन्हें अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसे विना माना जा सके।

पोथी की नहीं, हृदय-मस्तिष्क की चीज

थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि कोई आदमी सर्वज्ञ हो सकता है और कि ईश्वर खुद या किसी ऋषि, संत, पीर-पैगम्वर के लिए वोल सकता है, तव भी यह नहीं कहा जा सकता कि वैसे ग्रन्थ भी ज्यों-के-त्यों मान लिये जायँ, क्योंकि भाषा और लिखने की कला इतनी अधूरी है कि वह कभी उस सत्य को ज्यों-का-त्यों प्रकट नहीं कर सकती, जो अनगिनत पहलुओं-वाला है। यह अपनी आँखों कौन नहीं देखता कि एक वेद में, एक ऋचा में और एक ही मन्त्र में दो पण्डित अलग-अलग अर्थ करते हैं और अलग-अलग भी ऐसे कि एक-दूसरे-से विलकुल मेल नहीं खाते। यही हाल 'वाइविल' के भजनों का है और 'कुरान' की आयतों का भी।

किसे नहीं मालूम कि भगवान् कृष्ण की कही गीता को लेकर गाँधीजी ने सत्याग्रह नाम की वेदी पर अनेकों की वलि दे दी, उसी गीता को वगल में दवाकर हिंदुस्तान ही नहीं, सारी दुनिया में अहिंसा का डंका वजा दिया और उसी गीता को लेकर मनचले नौजवान ने गाँधीजी को गोली का निशाना वना दिया। क्या यह इस वात का सवूत नहीं कि भाषा और लिखने की

कला इतनी निकम्मी और अधूरी है कि इनमें बैठकर कोई सर्वज्ञ सर्वज्ञ नहीं हो सकता और कोई ईश्वर ईश्वर नहीं रह सकता। सत्य ऐसी अनोखी चीज है कि वह मनुष्य के हृदय और मस्तक में ही जगह पा सकती है, पोथियों और बोलियों में नहीं। बोली और अक्षरों में अगर इतनी योग्यता होती कि वे सापेक्ष सत्य को भी यानी सच को भी ठीक-ठीक दरशा सकें, तो दुनिया के सारे वकील और बड़े-बड़े भाष्यकार व्यर्थ हो जाते। पर आज की कानून की एक धारा के दो पण्डित दो अर्थ लगाते हैं और इसी बूते पर हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट से बड़े-बड़े मुकदमे जीतते हैं, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। कानून की एक ही धारा का एक जज कुछ अर्थ करता है, तो दूसरा कुछ।

यह सब कहकर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि हम सत्य की खोज में लगने पर किसी बात को सिर्फ इसलिए सत्य नहीं मान लेंगे कि उसका वर्णन किसी ऐसे ग्रन्थ में मिलता है, जिसे लोगों ने ईश्वर या सर्वज्ञ का कहा हुआ मान रखा है।

स्वाधीन मनुष्य के लिए बुद्धि भी स्वाधीन रहे

फिर यह सवाल उठ सकता है कि जब हमें अपनी बुद्धि पर ही छोड़ा जा रहा है, तो क्या वह इतनी मँझी, पैनी और चमकदार है कि खूब गहरी जा सके और सत्य को ढूंढ़ ले ?

बेशक यह सवाल ठीक है, पर ऐसा हम सोचें भी क्यों ? हमारी बुद्धि मँझी, पैनी और चमकदार न हो, तब भी तो हमें उसी पर उस सत्य को जगह देनी है, जिसे सर्वज्ञ या ईश्वर का कहा हुआ बतलाया जाता है। तब फिर हम उस बुद्धि

के वल पर ही सत्य की खोज क्यों न करें? यह ठीक है कि सत्य हमारे हाथ न लगेगा, पर हमारी वुद्धि सत्य की खोज में कुछ दूर आगे तो जरूर वढ़ गयी होगी। यह भी कोई कम फायदे की वात है !
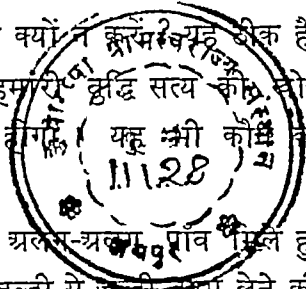
हर आदमी को जैसे अलग-अलग पाँव मिले हुए हैं और उनसे वह पैदा होने के वाद जल्दी-से-जल्दी काम लेने की कोशिश करता है—चलना और आगे वढ़ना सीख जाता है—और जिस तरह हर आदमी को दो हाथ मिले हुए हैं और उनसे वह जल्दी-से-जल्दी काम लेने लगता है, वैसे ही उसे वुद्धि भी मिली है, उससे वह जल्दी काम लेना क्यों न सीखे। जव वह औरों के पैरों के वल एक जगह से दूसरी जगह नहीं पहुँच सकता और औरों के हाथों के वल पर अपनी जरूरतें पूरी नहीं कर सकता, तव औरों की वुद्धि के वल पर सत्य को कैसे पा सकता और असलियत कैसे जान सकता है ? जिस तरह उसे अपना शारीरिक अस्तित्व वनाये रखने के लिए हाथ-पाँव मिले हैं, वैसे ही उसे अपना मानसिक अस्तित्व वनाये रखने के लिए वुद्धि मिली है। जैसे दूसरे के कन्धों पर चढ़कर और दूसरे की कमायी हुई रोजी खाकर आदमी शारीरिक अस्तित्व खो वैठता है, वैसे ही दूसरे की सोची वात को अपनाकर, दूसरे के खोजे सत्य पर विश्वास करके अपनी वुद्धि के अस्तित्व को भी खो वैठेगा। ग्रन्थ मील के पत्थर का काम करते हैं। ग्रन्थ आदमी की वुद्धि की इस तरह की सिल्ली वन सकती है—ज्यादा-से-ज्यादा ग्रन्थ वुद्धि के लिए सत्य के महल तक पहुँचाने के वाहन हो सकते हैं, पर वे कभी इस योग्य नहीं हो

सकते कि उन्हें ज्यों-का-त्यों अपना लिया जाय और बुद्धि को जंग लगकर सड़ने-गलने के लिए छोड़ दिया जाय।

पराधीन मनुष्य की पराधीन बुद्धि इस तरह की बेइज्जती बरदाश्त कर सकती है, पर स्वाधीन मनुष्य की स्वाधीन बुद्धि वैसी बेइज्जती बरदाश्त करने के लिए कभी तैयार नहीं हो सकती। जब कोई बालक ठोकरें खाकर और गिरकर न चलना छोड़ता है और न माँ की गोदी में चढ़कर अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है, तब कोई बुद्धिमान् मनुष्य ठोकरें खाने से क्यों डरेगा? सत्य तक पहुँचने में ग्रन्थों का सहारा क्यों लेगा?

सत्य की खोज से बुद्धि मँझती है

बुद्धि का स्वभाव ही यह है कि सत्य की खोज में चलने से मँझती है, अड़चनों से टकराकर पैनी होती है, गुत्थियों को सुलझा-कर चमकती है और फिर उसे आगे से और आगे बढ़ने में आनंद आने लगता है। ठीक इसी तरह बुद्धि जब ग्रन्थों में घुसकर उसमें लिखी बातों को ज्यों-की-त्यों मान लेती है, तो उसपर मैल और काई चढ़ने लगती है। जब वह अड़चनों में पड़ने से भागती है, तो अपना पैनापन खो बैठती है और मोथरी हो जाती है। उलझी गुत्थियों से बचकर भागने से वह आदमी की गाँठ की चमक भी खो बैठती है। तब उसके हाथ ग्रन्थ में लिखी जो सचाई भी आती है, वह सचाई न रहकर असत्य का काम करने लगती है; क्योंकि उसका आगे बढ़ना रुक जाता है। बस, उस आदमी का वही हाल हो जाता है, जो मील के पत्थर को पकड़कर बैठ जाय और यह समझने लगे कि यही वह स्थान है, जहाँ मुझे पहुँचना है।

इसीलिए इस तरह की शंका हमें अपने मन में खड़ी नहीं करनी चाहिए कि हमारी वुद्धि इस योग्य नहीं है कि वह सत्य को खोज सके। हमें सोचना यह चाहिए कि अगर हमारी तरह ही हमारे वाप-दादे अपने वाप-दादों की खोज से चिपक जाते, तो क्या हम कभी इतने भी आगे वढ़ सकते, जितने अव हैं ?

विज्ञान की तेज दौड़ का यही रहस्य

सत्य तक हम पहुँचे नहीं हैं। पहुँचे नहीं, इतना ही नहीं, हमें यह तक नहीं मालूम कि अभी हमें कितने पड़ाव पार करने हैं। ऐसी हालत में हमें यह शोभा नहीं देता कि किसी चीज से चिपककर वैठ जायँ। विज्ञान की एक-एक शाखा हमें पुकार-पुकारकर कह रही है—चले आओ, चले आओ, दिल्ली अभी दूर है !

यह 'सत्य' नहीं था कि जमीन थाली की तरह गोल है, उसके वीच सुमेरु पर्वत है और एक से ज्यादा सूरज और चन्द्रमा इस सुमेरु पर्वत का चक्कर काट रहे हैं। पर 'सच' जरूर था, नहीं तो उस समय के पंडित कैसे यह वता सकते कि कव ग्रहण पड़ेगा और कव कोई ग्रह डूवेगा ?

इसके वाद यह भी 'सत्य' नहीं था कि हमारी यह छोटी-सी पृथ्वी केन्द्र है और सारे ग्रह, यहाँ तक कि सूर्य भी उसीका चक्कर काट रहे हैं। पर यह 'सच' जरूर था, क्योंकि हम सत्य के रास्ते में कुछ आगे वढ़े थे। यह वात तो थी ही कि उन दिनों के पंडित भी सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण का ठीक-ठीक वक्त वता सकते थे और ग्रहों के डूवने और आगे-पीछे होने के लिए ऐसी दलीलें पेश कर सकते थे, जो उन दिनों के लोगों को मनलगती मालूम होती थीं।

पूरा-पूरा 'सत्य' यह भी नहीं है कि सूरज वीच में है ग्रौर सारे ग्रह ग्रौर पृथ्वी उस सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। पर यह भी 'सच' जरूर है, क्योंकि हम सत्य की राह से पहले ही वहुत ग्रागे वढ़ ग्राये हैं। यह यों भी सच है कि ग्राज के ज्योतिषी पहले के मुकावले वड़ी ग्रासानी से यह वात वता देते हैं कि कव सूर्य ग्रौर चन्द्र-ग्रहण होगा ग्रौर कव कौन-सा ग्रह ग्रागे-पीछे होगा। ज्योतिष का हिसाव लगाने में ग्राज जितनी ग्रासानी हो गयी है, उतनी पहले कभी न थी। ज्योतिष की शुरू की जटिलता तो इतनी कम हो गयी है कि ग्राज के १०-१०, १२-१२ वरस के वच्चे भी वड़ी ग्रासानी से यह वात समझ लेते हैं, जो पहले वड़े-वड़े पंडितों को वड़ी मुश्किल मालूम होती थी।

ज्योतिष की तरह विज्ञान की हरएक शाखा का यही हाल है। हर शाखा तेजी से वढ़ती चली जा रही है ग्रौर यह नहीं कहा जा सकता कि वह कव किस तरफ को मुड़ जायगी।

दर्शनशास्त्र, ग्राचार-शास्त्र, नीतिशास्त्र, कथाशास्त्र ग्रौर धर्मशास्त्र, सव-के-सव नये-नये रूप लेते रहे हैं, ले रहे हैं ग्रौर लेते रहेंगे। इन शास्त्रों ग्रौर विज्ञान के शास्त्रों में कोई खास ग्रंतर नहीं है। पर इन दोनों की उस चाल में वड़ा भारी ग्रंतर है, जिस चाल से ये दो तरह के शास्त्र सत्य की तरफ दौड़े चले जा रहे हैं। 'विज्ञान' नाम के शास्त्र दो-ढाई सौ वर्ष में इतने तेज दौड़ गये हैं, जितने 'धर्म' नाम से पुकारे जानेवाले शास्त्र कई हजार वर्षों में भी नहीं वढ़ पाये।

इस वढ़वारी में जो ग्रन्तर है, उसका एक ही कारण है,

ग्रौर वह यह कि विज्ञान के रास्ते में हर ग्रादमी सोचने के लिए पूरा स्वाधीन तो नहीं, पर इतना स्वाधीन जरूर है कि ग्रगर वह जरा भी कोशिश करे, तो ग्रागे की राह निकल ग्राती है। धर्म की राह में वह बहुत कम स्वाधीन है। हिम्मत करनेवाले हजारों में से कोई एक ही स्वाधीन इतना मजबूत साबित होता है कि वह ग्रपनी जान पर खेलकर ऐसी राह सुभा जाता है, जिससे दो-एक कदम ग्रागे बढ़ा जा सके। बस यही कारण है कि धर्म की राह में हम लोग इतना ग्रागे नहीं बढ़ पाये, जितना विज्ञान के पथ पर।

इस बेढंगी तरक्की का यह नतीजा हो सकता है कि विज्ञान हमें ऐसी जगह ले जा पटके, जहाँ पहुँचकर हम ग्रपनी उस सब तरक्की से हाथ धो बैठें, जो हम ग्रब तक कर पाये हैं। इसलिए यह बिलकुल जरूरी है कि हम सत्य के लिए इतने वफादार बनें, जितने दुनियादारी के लिए वफादार हैं।

• • •

: ५ :

सत्य की वरदाश्त

सत्य से वढ़कर मीठी चीज कोई नहीं। मीठी चीज खाते वच्चे नहीं घवराते। सव धर्म सत्य को भला कहते हैं। सत्य न कभी वदनाम हुआ, न है, न होगा। सत्य को सभी चाहते हैं। सत्य में ऐसे अनेक गुण हैं कि उसकी तरफ सवको खिचना पड़ता है। उसे वरदाश्त करने और न सह सकने की जितनी कथायें सुनने को मिलीं, वे इतनी भयानक हैं कि उन पर विश्वास करना मुश्किल है।

समझ में नहीं आता कि वे कैसे लोग होंगे, जिन्होंने 'सुकरात' जैसे सच्चे आदमी को जहर देने की वात सोची और फिर जहर पिला दिया। वे लोग भी कैसे होंगे, जिन्होंने उस 'गेलेलियो' को दुःख देने की वात सोची, जिसकी सचाई आज ज्योतिषियों का सहारा है। वे लोग सच न सुन सकते, तो न सही, पर सच वोलनेवालों की जान के गाहक क्यों वन गये? सत्य जैसी प्यारी चीज की वरदाश्त कैसे खो बैठे?

एक आप-वीती सुनिये! मेरी माँ कई काम जानती थीं। नाड़ी देखना उन्हें अच्छा आता था। मोच ठीक करना, उतरी हड्डी चढ़ाना वे खासा जानती थीं। चरखे का तकुवा सीधा करने का काम उन्हें इतना अच्छा आता था कि दिन के तीन घण्टे में दो-एक आदमी तकुवा सीधा कराने आ ही जाते थे। यह सव

काम वह सेवा समझकर करती थीं, इसलिए कभी-कभी रात-विरात में भी उठना पड़ता था। छोटी-मोटी दवाएँ भी तैयार कर लेती थीं और बाँटने का काम खुद ही करती थीं। इससे अन्दाजा लगा सकते हैं कि वे मुहल्लेवालों की कितनी प्यारी रही होंगी और लोग उनका कितना आदर करते होंगे!

जाड़ों के दिन थे, वे आँगन में बैठी मेरे छोटे भाई को तेल लगा रही थीं। इतने में मुहल्ले का एक समझदार तीस-पैंतीस बरस का अधेड़ आया और बड़ी बुरी तरह माँ को फटकारने लगा।

'कुछ आता-जाता है नहीं, बन बैठी हैं हकीमनी।'

अभी वह आगे कुछ न बोल पाया था कि मैं बुरी तरह बिगड़ खड़ा हुआ। बोल पड़ा, 'चले जाओ यहाँ से।'

मैं आगे न जाने क्या-क्या कहनेवाला था कि माँ ने मुझे फौरन डाँटकर कहा, 'सच सुनना सीखना चाहिए।'

माँ की बात खतम होते ही आये हुए आदमी का गुस्सा जरा ढील पड़ा, पर आवाज उतनी ही जोर की थी, और शब्द वैसे ही गुस्ताखी भरे थे। पहले जैसे वह बकने लगा।

'हकीमनीजी! आपको कुछ पता है, आप मेरे बच्चे को क्या दवा दे आयी हैं? उसके दस्त ही नहीं रुकते, अगर उसे कुछ ऐसा-वैसा हो गया, तो मैं जब तुम पर दावा कर दूँगा, तब सब अकल ठीक हो जायगी। चलो, अब उसे देखो और सँभालो।'

माँ बोलीं, 'मैं अभी हाथ धोकर, कपड़े बदलकर आती हूँ। आप चलिये।'

उस आदमी के चले जाने के बाद माँ मुझसे बोलीं, 'तुम जब सच बात सुन भी नहीं सकते, तब सच बोल कैसे सकोगे? बेटा, सच बोलना तुम्हारे कुछ काम नहीं आयेगा, अगर तुम सच सुनना नहीं सीखोगे। सच कभी-कभी बहुत कड़ुवा लगता है। वह कड़ुवा होता तो नहीं, पर वैसा ही कड़ुवा लगता है, जैसे उस रोज तुम्हें बुखार में बर्फी कड़ुवी लगी और तुमने थूक दी थी।'

'अम्मा, वह आदमी सच कहाँ बोलता था? तुम क्या उसके बच्चे को बुरी दवा दे सकती थीं?'

'यह सच नहीं है तो क्या है? उसके बच्चे को दस्त हो रहे हैं, यह देखकर उसे घबराहट हो रही है, और उस घबराहट से उसका मन बिगड़ बैठा है। वही मन मुझ पर बिगड़ रहा है। अगर वह तुम्हारी समझ में सच नहीं बोल रहा था, झूठ बोल रहा था, तो सच्चे आदमी को झूठ सुनने की भी बरदाश्त होनी चाहिए। हो सकता है, शुरू में जो झूठ है, वह पूरा होकर सच निकले। देखो, आज यही हुआ या नहीं? उसकी बात सच निकली या नहीं?'

'अम्मा, तो क्या तुम्हें कोई गाली देता रहे और हम सुनते रहें? हमसे ऐसा नहीं होगा।'

'मैं यह नहीं कह रही हूँ कि तुम मुझ पर क्या, किसी पर भी अन्याय होते देखो और टुकुर-टुकुर देखते रहो। पर अन्याय की बात और दुःख की बात में तुम भेद नहीं कर सकोगे, अगर

तुममें सुनने की बरदाश्त न हो। मैं एकदम जल्दी बोल उठने को रोक रही हूँ, सोच-समझकर बोल उठने को कहाँ रोकती हूँ ?'

'अम्मा, तुम्हारी बात समझ में तो नहीं आयी, पर अम्मा हो, इसलिए मान लेता हूँ।'

यह उस वक्त की बात है, जब मैं ग्यारह-बारह बरस का था।

अम्मा जब उस बच्चे को देखने चलीं, मैं उनके साथ हो लिया। जब हम दोनों उस आदमी के घर पहुँचे, तो एक वैद्यजी उस बच्चे की नाड़ी देख रहे थे। वह माँ को खूब जानते थे और उन्हें 'भाभी' कहकर बोलते थे।

वैद्यजी अम्मा को देखकर नाड़ी छोड़ खड़े हो गये, और बोले, 'भाभीजी, आप अच्छे वक्त से आ गयीं, नाड़ी देखिये और बताइये क्या दवा दूँ ?'

'अब आप देख रहे हैं, देखिये। मैं अन्दर बैठती हूँ, चाहे जब देख लूँगी।'

'भाभीजी, आप रहते मैं यह ढीठता नहीं कर सकता, इस शहर में कौन ऐसा हकीम-वैद्य है, जो यह नहीं जानता कि आप सबसे अच्छा नाड़ी देखना जानती हैं। यह ज्ञान तो मैंने आपसे ही सीखा है।'

'मुझसे ही सीखा सही, पर चेले तो गुरु से बड़े हो जाते हैं ?'

'हो जाते हैं सही, पर मैं अभी नहीं हुआ।'

'देखो देखो, तुम्हीं देखो', यह कहती हुई अम्मा अन्दर चलकर बैठ गयीं और मैं उनके पास बैठ गया।

मैं नहीं जानता कि वैद्यजी ग्रौर ग्रम्मा की इन वातों का उस ग्रादमी पर क्या ग्रसर हुग्रा, पर थोड़ी देर में वैद्य ने वच्चे की नाड़ी देखकर जीभ ग्रौर पेट की जाँच करने के वाद उस ग्रादमी से यह कहा कि ग्रव डरने की कोई वात नहीं, प्रकृति ने खुद ही इसका पेट साफ कर दिया, दो चार दस्त होकर ग्रपने-ग्राप रुक जायँगे ग्रौर वच्चे को नींद ग्रा जायगी। दवा देने की जरूरत नहीं। कल सुवह तक वालक ग्रपने-ग्राप खेलने लगेगा। फिर भाभीजी यहाँ मौजूद हैं, ग्रगर वह दवा की वात कहें, तो मेरे पास चले ग्राना, मैं दवा दे दूँगा।' वैद्य यह कहकर चल दिया, उस ग्रादमी ने चुपके से दो रुपये वैद्य के हाथ में थमा दिये ग्रौर वह उन्होंने ले लिये।

माँ उठीं, वच्चे को देखा, उसके माँ-वाप को तसल्ली दी ग्रौर घर के लिए चल दीं। चलते वक्त पहले वच्चे की माँ ने मेरी माँ के पाँव लागे ग्रौर फिर वच्चे के वाप ने पाँव छूये ग्रौर वोला, 'माफ करना, हम घवरा गये थे, सो कुछ-का-कुछ कह गये।'

माँ वोलीं, 'ऐसे मौके पर ऐसा हो ही जाता है, मैं बुरा थोड़े मानती हूँ। तुम भी मेरे वच्चे का वुरा न मानना।' मुझसे वोलीं, 'इन्हें हाथ जोड़कर 'जोहार' करो, ग्रव ऐसा न करना।'

वरदाश्त एक वरदान

शाम को उन्होंने यह ग्रच्छी तरह समझा दिया कि सच को सुनने की वरदाश्त जरूरी है ही, झूठ सुनने ग्रौर ग्रन्याय देखने की वरदाश्त भी वहुत जरूरी है। उसके विना कोई ग्रादमी उन्नति नहीं कर सकता।

उस उमर में वह वात पूरी-पूरी तो समझ में नहीं आयी, पर वीजरूप से हृदय में जम गयी, जड़ पकड़ गयी। वड़े होने पर उसमें से अंकुर निकले। अव तो वह पेड़ वन गयी है, तभी तो आज याद है।

अगर आदमी के लिए सच अच्छी चीज है और ईमानदारी से विचार करना और दिल खोलकर लोगों से वरताव करना भली वात है, तो दूसरों के लिए भी यह भली वात है, कि वे उसके साथ भला वरताव करें, ईमानदारी से रहें और सच्चे रहें। जैसे ही सुनने की वरदाश्त वढ़ेगी, वैसे ही सत्य कहने की लोगों को आदत होगी। फिर झगड़े अपने-आप कम हो जायेंगे। आज आदमी में जो यह हिम्मत नहीं रह गयी कि वह ईमानदारी से अपने विचार लोगों के सामने रख सकें, इसकी वजह यही है कि जनता से वरदाश्त की ताकत चली गयी, इसलिए कोई इक्का-दुक्का ही सर में कफन वाँधकर सच कहने के लिए तैयार होता है। नतीजा यह हुआ कि जनता का जितना भला होना चाहिए था, उतना न हो सका।

जिस तरह मेरी माँ ने मुझमें वरदाश्त के वीज वो दिये, वैसे ही अगर आज के माँ-वाप अपने वच्चों का खयाल रखें और उन्हें वरदाश्त करने दें, तो दस-वीस वरसों में ही दुनिया कहीं-की-कहीं पहुँच जाय।

झूठ वोलने से सच दवाना वुरा

झूठ वोलने से दुनिया का वुरा होता है सही, पर इतना वुरा नहीं होता, जितना सत्य विचारों को दवा देने से; क्योंकि सत्य के दव जाने से ईमानदारी उठ जाती है, ईमानदारी

न रहने से झूठ अपनी जड़ जमा लेगा। सत्य विचारों को दवाने-वाला समाज से अपने लिए तो आजादी चाहता है, पर दूसरों को आजादी देना नहीं चाहता। यह उसका स्वार्थ नहीं तो क्या है? स्वार्थी में दया, शरम नाम को नहीं रह जाती। ऐसे आदमी से समाज का जो नुकसान हो, वह थोड़ा। स्वार्थी आदमी वरदाश्त की ताकत खो वैठता है और उसकी वजह से समाज के मामूली आदमियों में वरदाश्त कम होने लगती है।

सत्य-विचारक को अपने विचार ईमानदारी से प्रकट करने का हक है, पर उन विचारों को किसी पर ठूँसने का हक नहीं। यह ऐसी ही जवरदस्ती है, जैसी उस आदमी की, जो सत्य-विचारों को दवाने का काम करता है।

कभी-कभी समाज में झूठ इतना आदर पा जाता है कि उसकी पूजा होने लगती है। पूजा के कारण समाज को झूठ-विचार से ममता हो जाती है। फिर समाज उसे इतना पवित्र मानने लगता है कि किसी आदमी को वह उस विचार के वारे में वोलने देना नहीं चाहता। यह ऐसी वुरी वात है, जिससे समाज की वढ़वारी एकदम रुक जाती है। यह तो ऐसी वात हुई कि कोई पीतल को सोना कहे और दूसरा कोई मोल ले ले, तो कसौटी पर भी न कसने दे। जव उसे इतना भी सहन नहीं होता, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे पवित्रता से प्रेम है। सत्य पवित्र है और सत्य विचार वह सुनना नहीं चाहता। सत्य-क्रिया वह करने देना नहीं चाहता। फिर यह कैसे कहा जाय कि वह पवित्रता का प्रेमी है? फिर यह भी कैसे मान लिया जाय कि

उसके पास जो विचार हैं, वह पवित्र है। जिस विचार को कोई आदमी यह भी न जान सके कि वह सत्य है या नहीं, उसे कोई पवित्र कैसे मान ले ?

कुछ लोगों का कहना है कि स्वतंत्र विचार से धर्म का अपमान होता है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि स्वतंत्र विचारों को कितनी ही ईमानदारी से क्यों न प्रकट किया जाय, उसमें खोट रहती ही है, क्योंकि वे विचार आदमी के होते हैं और इनका धर्म ईश्वर के मुँह से निकला हुआ है। इसलिए स्वतंत्र विचार करनेवाला नास्तिक ही हो सकता है। ऐसा सोचनेवालों की वजह से जब-जब किसीने सत्य का दीपक जलाना चाहा, तब-तब वह नाबरदाश्त की हवा से बुझा दिया गया।

सत्य का दूसरा पहलू बोलने की स्वतंत्रता है। क्योंकि बोलकर ही वह दूसरों तक पहुँचता है और तभी लोग उसे कसौटी पर कसकर और उसकी चमक देखकर अपनाते हैं। सत्य हमेशा यही चाहता है कि लोग उसे पहले परखें, पीछे अपनायें। सत्य की दोस्ती स्वतंत्रता, ईमानदारी, हिम्मत, परख से है, उसे खुली हवा पसन्द है, इसलिए लोगों के मन पर यह जल्दी चढ़ जाता है। पर कुछ लोग जबरदस्ती उसे लोगों के मन तक नहीं पहुँचने देते। जहाँ वह एक बार पहुँचा कि विचार एकदम चारों-खाने चित गिर पड़ते हैं। बेमतलब के उत्पात खतम हो जाते हैं और आदमियों की बुद्धि एकदम चमक उठती है।

सत्य अपने ढंग का अलग देवता है। यह अपनी तारीफ के

गीत नहीं सुनना चाहता, यह अपनी मूरत बनवाकर मंदिर में बैठना नहीं चाहता कि कोई उसके सामने लेटकर दंडवत करे और मरे साँप का नाटक खेले। यह इन सब बातों को ढोंग मानता है। वह समझता है कि जो भी ऐसा करता है, वह सत्य का निरादर करता है, सत्य के खिलाफ बगावत या विद्रोह करता है। इसका कहना है कि आदमी के अंदर जो देवता बैठा है, वह इतना बड़ा और ऊँचा है कि सब तरह के पत्थरों को उसके आसन बनने में अभिमान होता है। फिर वे पत्थर कितने भी क्यों न हों और किसी भी शकल के क्यों न रहें।

सत्य आदमी को देवता बनाना चाहता है, देवता जैसी स्वतंत्रता देना चाहता है। सत्य के सामने सृष्टि में अकेला आदमी ही ऐसा प्राणी है, जो देवता बन सकता है। बन्दर हाथी, शेर, सुअर, गाय जैसे पशु; चील, कौवा, हंस, नीलकंठ, गरुड़ जैसे पक्षी; मगर, व्हेल, कछुवा, मछली जैसे पानी के प्राणी; बेल, पीपल, पाकर, गूलर, नीम, आम जैसे पेड़ और हीरा, सोना, चाँदी, पीतल, पत्थर जैसी जमीन से मिलनेवाली चीजें, सब इस योग्य हैं कि आदमी नामी देवता के आगे नाचें, उसकी सवारी बनें, उसकी हर तरह सेवा करें; तरह-तरह की आवाजें निकालकर उसका मन प्रसन्न करें, उसके बनाये चिड़िया-घर में रहकर उसका मन बहलायें और जिनसे हो सके, वह उसका अङ्ग बनकर अपना धन्य भाग समझें, उसे फल दें, उसके आसन बनें उसके आराम की चीज बनें, उसके ईंधन के काम आयें, उसके जेवर बनें, उसके औजारों में खपें, उसके मकान बनें और हो

सके, तो उस आदमी नामी देवता के चरणों की धूल बनकर अपना जन्म सुधारें।

सत्य को यह पसन्द नहीं कि आदमी नामी देवता की सवारियाँ और आसन खुद देवता बनकर उसे धोखा दें और उसका सिर झुकाये।

आदमी की भलाई इसीमें है कि वह किसीकी न सुनकर सत्य की सुने, क्योंकि सत्य उसे सही सुना देगा, और ठीक-ठीक सुना देगा।

आदमी की भलाई इसीमें है कि वह किसीसे न डरकर सत्य को निकाले, क्योंकि सत्य उसके लिए सब कुछ निकालेगा।

आदमी की भलाई इसीमें है कि वह 'क्यों, किसलिए, कैसे, कहाँ' कहना सीखे। क्योंकि यही वह जगह है, जहाँ सत्य छिपा रहता है।

आदमी की भलाई इसीमें है कि वह अपने मन को ईमानदार और उदार बनाये, क्योंकि सत्य को ईमानदारी और उदारता का आसन पसन्द है। वह और आसनों पर नहीं बैठता।

आदमी की भलाई इसीमें है कि वह स्वाधीन होकर ईमानदारी के साथ अपने विचारों को जाहिर करना सीखे, क्योंकि सत्य बन्द कोठरी में जरा देर में घुटकर मर जाता है। उसे आदमी का फूटा सिर भाता है, पर वह सिर उसे पसन्द नहीं, जिसमें अच्छे-अच्छे विचार दम घुट-घुटकर जान तोड़ रहे हों।

अब क्या आदमी अपना भला नहीं चाहता? अगर हाँ, तो सत्य की इस अच्छी सलाह से बढ़कर और कौन सलाह हो सकती है?

आँखवाली श्रद्धा और अन्धी श्रद्धा

आदमी को मस्तक इसलिए मिला है कि उसका विकास हो। वह आजाद होकर सोचे और अपने और जग के भले की हर बात सीखे। आदमी को बोली इसलिए मिली है कि वह आदमी के विचारों को अपने पंख पर बिठाकर सारी दुनिया की सैर कराये। आदमी को प्रतीति, श्रद्धा इसलिए मिली है कि उसे अगर अपनी खोज में आगे की गली न मिलती हो, तो जिस तरफ उस खोज का बहाव हो, उस तरफ एक गली मान ले और आगे बढ़ने की कोशिश करे। आदमी को श्रद्धा इसलिए नहीं मिली कि जिधर कोई उसे गली बता दे, उधर दौड़ने लगे। श्रद्धा में अपनी दोनों आँखें हैं, पर आम तौर से वह उन्हें तभी खोलती है, जब कोई खोजी आगे की राह नहीं पाता। श्रद्धा उस वक्त अपनी आँखें बिलकुल बन्द रखती है, जब कोई किसी दूसरे की बतायी गली में चलने को तैयार हो जाता है। जो बालक आगे नदी में जाने से डरता है कि आगे पानी डुबान है और वह डूब जायगा, तब अगर वह उस भाई की बात पर श्रद्धा करके, उसके कहने पर कुछ आगे बढ़े, तो बालक की श्रद्धा आँखें खोल देगी और आगे बढ़ाने में उसकी खुद भी मदद करेगी। लेकिन अगर किनारे पर बैठा तैरना न जाननेवाला, पानी में पाँव रखते डरने-वाला, महान् ज्ञानी संत उसी बच्चे से यह कह दे कि बेटा, डरने की कोई बात नहीं, अगर राम ने तुम्हारे भाग्य में इस समय डूबना नहीं लिख रखा, तो तुम न डूबोगे। तो यह सुनकर बालक दोनों आँखें मूँद लेगा, साहस फूल उठेगा, अन्धी श्रद्धा सिकुड़कर

दुबली हो जायगी और एक-न-एक दिन वह बालक अनुचित साहस के नशे में अपनी जान दे बैठेगा। सत्य श्रद्धा को अन्धी नहीं देख सकता, वह साहस के घोड़े को बगटुट नहीं दौड़ने देता, वह साहस के जहाज को बेमल्लाह नहीं हिलने देता, सत्य श्रद्धा की आँखें खोलकर साहस के घोड़े की वाग श्रद्धा के हाथ थमा देता है।

अन्धश्रद्धा और आँखवाली श्रद्धा में इतना ही अन्तर है—सत्य श्रद्धा की आँखें खोलकर आदमी के रास्ते में आयी बाधाओं को जीतना सिखा देता है। अन्धी श्रद्धा अगर भूले-भटके एकआध बार किसी रोग को अच्छा कर लेती है, तो आँख-खुली श्रद्धा अनेक रोगों को बहुत कम भूलकर अच्छा कर सकती है। अन्ध-श्रद्धा दुःख पाकर, औरों को सताकर, या दुःख देकर अगर कभी एक रोग ठीक कर लेगी, तो आँख-खुली श्रद्धा अनेक रोगों को बिलकुल दुःख न होने देकर अच्छा कर लेगी। आँख-खुली श्रद्धा जीवन को मजेदार बना देगी, हरा-भरा कर देगी, और उमर बढ़ेगी, यह नफे में।

कहाँ आँखवाली श्रद्धा और कहाँ अन्धश्रद्धा !

● ● ●

: ६ :

सत्य और गुलामी

आदमी जब पैदा हुआ, तब सच के सिवा कुछ न जानता था। जब उसमें कल्पना-शक्ति पैदा हुई, तो उसकी मदद से उसने जो सोचा, उसमें चाहे सत्य की झलक सबसे कम रही हो, सचाई सौ फी सदी थी। आदमी की बुद्धि ने जब सरकना सीखा, तो उसने सत्य की खोज शुरू की। चारों तरफ नजर डालकर कुछ नतीजे निकाले। उन नतीजों से अनुमान की सीढ़ी तैयार की। अनुमान की सीढ़ियों के सहारे उसने सत्य के महल पर चढ़ने की कोशिश की। यह कोशिश आज तक जारी है।

सत्य की खोज से बढ़िया बात आदमी के लिए और क्या हो सकती है, पर ऐसी बढ़िया बात बुराई में बदल गयी, जब आदमी में मामूल से ज्यादा स्वार्थ पैदा हो गया। सत्य की खोज के साथ-साथ स्वार्थ बढ़ता रहा, बढ़ रहा है और बढ़ता रहेगा, अगर उसे घटाने की कोशिश न की जाय।

जीवन के बढ़ते काँटे

इसमें शक नहीं कि आदमी में क्रोध, मान, माया, लोभ हमेशा से हैं। यही हाल हास्य, अरति, रति, शोक, भय, नफरत, कामवासना, डाह आदि का है। गुलाब के पौदे में काँटे की तरह आदमी में क्रोध, मान आदि रहने जरूरी हैं। लेकिन अगर गुलाब

के पौदे के काँटे इतनी जगह घेर लें कि न पत्तों को जगह रहे, न फूल को, तो वह पौदा या तो उखाड़ फेंका जायगा या उसके बढ़े काँटे मुनासिब हद तक पहुँचा दिये जायँगे। आदमी के क्रोध, मान, माया, लोभ इतने बढ़ गये हैं कि उन्होंने आदमी की सारी समाजी और राजकाजी दुनिया को घेर लिया। जो थोड़ी-बहुत धार्मिक दुनिया बची थी, उस पर भी वह छाये जा रहे हैं। आज आदमी इस काबिल नहीं रह गया कि समाजरूप से इतने हेलमेल के साथ रह सके, जितना पहले रहता था। अब या तो आदमी दुनिया के पर्दे से नष्ट हो जायगा या उसे अपने क्रोध-मान के काँटों को अपनी पैदाइशी हद तक लाना होगा।

सचाई इससे ज्यादा क्या हो सकती है कि हम इन क्रोध-मान-माया-लोभ को पहचान लें और समझ ले कि ये हमारे साथ रहकर किस हद तक बढ़ सकते हैं। लोग अपना वक्त परमेश्वर की खोज में देने के लिए तो तैयार हो जाते हैं, लेकिन अपने इन काँटों की बढ़वारी की तरफ से बेफिकर रहते हैं। अगर उन्होंने परमेश्वर की बजाय इस तरफ ध्यान दिया होता, तो हो सकता है, परमेश्वर हाथ लग गया होता। सत्य या परमेश्वर कभी हाथ न लगेगा, अगर इन काँटों को इसी तरह बढ़ने दिया जाय, जिस तरह कि वे बढ़ रहे हैं।

'मान' से सर्वनाश

हमारा मान यानी घमण्ड यह चाहता है कि दुनिया हमें बड़ा माने, पर हमारे मान को यह क्यों नहीं दीख पाता कि जब सारे आदमी हम जैसे हैं, तो उनके अन्दर भी मान रहता होगा

ग्रौर वे भी चाहते होंगे कि सारी दुनिया उन्हें बड़ा समझे। ग्रब ग्रगर दो मान टकरा गये, तो मान-भंग के सिवा क्या रह जायगा? मान की टक्करें जितनी ग्राज हैं, उतनी उस समय न थीं, जब मानव-समाज बच्चा था। क्यों?

सोचने पर हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि उन दिनों ग्रादमी के मान की सेवा करने के लिए पशु-पक्षी इतने ज्यादा थे कि उसे ग्रादमी की जरूरत न थी। उन दिनों ग्रादमी के मान को ग्राये दिन ऐसे-ऐसे दैत्य, दानवों ग्रौर जंगली पशुग्रों से टक्कर लेनी पड़ती थी, जो उससे मुठभेड़ करके यह साबित करते रहते थे कि ग्रादमी उनके खाने की चीज है। ऐसी हालत में ग्रादमी के पास सिवा इसके क्या चारा था कि वह ग्रपने भाइयों के साथ प्रेम करता ग्रौर हिल-मिलकर रहता। यह दूसरी बात है कि उन दिनों ग्रादमियों के ग्रलग-ग्रलग झुण्ड थे ग्रौर उनकी ग्रापस में टक्कर हो जाया करती थी, पर जल्दी ही वे दोनों झुण्ड मिल-मिलाकर एक हो जाते ग्रौर दोनों ग्रपने मान की पूजा ग्रासपास के दैत्यों, दानवों ग्रौर जंगली पशुग्रों से लेने लगते थे।

ग्राज ग्रादमी का यह हाल है कि उसके घर में न गाय-भैंस मिलेगी, न ग्रौर कोई जानवर। कुछ दिनों पहले फौज में घोड़े रखने का रिवाज था। ग्रादमी उन पर चढ़कर ग्रपने घमंड को कुछ खिला-पिला लेता था। ग्रब वह घोड़े खतम हो गये, उनकी जगह ले ली लोहे के घोड़ों ने। इन लोहे के घोड़ों पर चढ़कर मान को साँस लेने के लिए हवा मिल जाती है, पीने को पानी मिल जाता है, पर खुराक बिलकुल नहीं मिलती। जो हवा-पानी

मिलता है, वह रोज-रोज कहाँ ? शुरू के दो-चार-दस दिन। आज का सिपाही मोटर-साइकिल पर बैठकर दो-चार दिन यह समझता है कि उसने किसी चीज को कावू में कर रखा है, उसके वाद उसे मालूम हो जाता है कि यह कोरी मशीन है ! इस पर क्या कावू पाना, और क्या न पाना ! घोड़ा सँभालने में यह वात न थी। उसे कदम-कदम पर घोड़ेरूपी एक ऐसी मशीन को सँभालना पड़ता था, जो उसीकी तरह नित-नये तरीकों से उसे अपनी पीठ से फेंककर उससे अपने मान की पूजा कराने की कोशिश में लगी रहती थी। अव सिपाही के मान के लिए न दैत्य रह गये, न जंगली जानवर, न पालतू पशु। फिर वह आदमी पर सवारी न लाये, तो क्या करे ? उस आदमी पर, जो उसीकी तरह बुद्धि रखता है और उसीकी तरह अपना घमंड रखता और उसीकी तरह सोचता है। इसका नतीजा मानव-समाज का सर्वनाश नहीं, तो क्या होगा ?

परमात्मा की गुलामी भी एक शस्त्र

वच्चा-वच्चा समझता है कि गुलामी वुरी चीज है। गुलामी एक भावना है, जो संसार से मिटाये नहीं मिट सकती। अव यह गुलामी किसके सिर पर चढ़कर रहे ? उस गुलामी को किसीके सिर पर चढ़े रखने के लिए उन समझदार आदमियों ने, जो वेहद घमंडी हो गये थे, एक तरकीव निकाली। वह तरकीव थी, परमात्मा की गुलामी। उन घमंडियों ने खुद जो परमात्मा की गुलामी की, उनका कोई नुकसान न हुआ। क्योंकि असल में उन्होंने परमात्मा की गुलामी की ही नहीं,

उन्होंने उस विचार की गुलामी की, जिसने उनके लिए परमात्मा गढ़कर दिया था। हाँ, उन लोगों ने जरूर गुलामी की, जिन्होंने उन लोगों के कहने से परमात्मा की गुलामी शुरू कर दी। जानते हैं, इसका नतीजा क्या हुआ ? जिन्होंने परमात्मा की गुलामी इने-गिने बुद्धिमानों के कहने से शुरू की, वे परमात्मा की जगह हर वात में उन बुद्धिमानों के गुलाम वन वैठे। यही बुद्धिमान् चाहते थे। उन्हें गुलामों की जरूरत थी और गुलामी की भावना को आदमियों के सिरों की। दोनों काम हो गये। जिन्होंने परमात्मा की गुलामी दूसरे के कहने से अपनायी, वे उन्हीं आदमियों के पास पहुँचे और वात-वात में उनसे सलाह लेने लगे।

धीरे-धीरे घमण्ड के उन पुजारी बुद्धिमानों ने यह कहना शुरू कर दिया कि परमात्मा उनसे वातें करता है और उन वातों को उन्होंने शब्दों में गूँथ डाला। वे ही शब्द सीधे-सादे आदमियों के लिए अपौरुषेय या इलहामी नाम पा गये। अब एक ऐसा तरीका निकल आया, जिसके आधार पर वाकायदा दूकानदारी चल सकती थी और वह चल भी रही है। अब आदमी के मान को, जितनी पूजा धर्म के क्षेत्र में मिल सकती है, दूसरे क्षेत्र में नहीं। अपौरुषेयवाद और इलहामवाद यानी धर्म का यह तत्त्व कि 'यह वात परमात्मा की या ऐसे आदमी की कही हुई है, जिसके भीतर वैठा परमात्मा दूध से धुलकर इतना पवित्र हो गया था कि वह सब कुछ जान गया था', गुलामी की जड़ है। आदमी किसी-न-किसी रूप में इस जड़ को पानी देता रहता है।

विचारों की गुलामी का समान वितरण

गुलामी को मिटाने की कोशिश उसी दिन से जारी है, जिस दिन अपौरुषेयवाद, इलहामवाद या सर्वज्ञवाद ने इसे जन्म दिया, पर होता यह रहा कि इस पेड़ के पत्ते कटते रहे, जड़ को पानी दिया जाता रहा। गुलामी अमिट है, उसे मिटाने की कोशिश बेकार है। इंसान की कोशिश यह होनी चाहिए कि इस गुलामी को समान रूप से सारी दुनिया में बाँट दे। अकेले धन-धरती के बँटवारे से काम न चलेगा। जब तक विचारों की गुलामी बनी रहेगी, वह दुःख देती रहेगी। गुलामी अपने-आप दुखदायी नहीं, समान रूप में बँटी भी दुखदायी नहीं। वह दुखदायी तभी होती है, जब समाज में कहीं गुलामी के टीले खड़े हो जाते हैं और कहीं गुलामी की खाइयाँ खुद जाती हैं।

अमेरिका आज दुनिया में मशहूर है कि उसने गुलामी मिटा दी, गुलामी मिटाने के नाम पर लड़ाई लड़ी; पर विचारों की सबसे ज्यादा गुलामी अमेरिका में मौजूद है और वह बराबर बनी रहेगी। काले-गोरों का भेद जितना वहाँ है, उतना और कहीं नहीं। वह बना रहेगा, उसीके साथ गुलामी बनी रहेगी।

राजकाजी गुलामी मिटाने से गुलामी-पेड़ के पत्ते और डालें कटती हैं, जड़ को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। जड़ को और पानी ही मिलता है। बाइबिल, कुरान, वेद या और कोई सर्वज्ञ के कहे ग्रंथ बगल में दबाकर अगर गुलामी मिटाने की कोशिश की जायगी, तो गुलामी मिटने पर भी गुलामी की जड़ हरी रहेगी। गुलामी की जड़ इसमें है कि आदमी अपने-आप न सोचकर अपने

सोचने का काम वेद, कुरान, वाइविल, जेंदावेस्ता ग्रादि को सौंप दे। ग्रादमी गुलामी की जड़ से तव तक छुटकारा न पा सकेगा, जव तक उसे इस योग्य न वना दिया जाय ग्रौर यह न समझा दिया जाय कि दुनिया के सारे धर्म-ग्रंथ उसी जैसे ग्रादमी के कहे ग्रौर लिखे हैं। जैसा उनमें लिखा है, वैसा वह खुद भी सोच ग्रौर लिख सकता है।

जिस ग्रादमी में ग्रपना वेद, ग्रपना कुरान, ग्रपनी वाइबिल, ग्रपनी जेंदावेस्ता या ग्रपना धर्मग्रंथ लिखने की कावलियत नहीं, दुनिया की कोई ताकत उसके दिल से गुलामी नहीं निकाल सकती। वह किसीका गुलाम रहने में ही सुख मानेगा। वह किसी वेवकूफी की खातिर जान देने में ग्रपनी मुक्ति समझेगा. ग्रौर इस तरह जान देने पर उसे एक छोटा-मोटा दल ऐसा मिल जायगा, जो मरने के वाद उसे पुजवा दे। जव इस तरह वेवकूफी की पूजा होती रहेगी, तो गुलामी मरेगी या पनपेगी?

यह किसे नहीं मालूम कि हर धर्म का माननेवाला ग्रपने धर्मग्रन्थ के वारे में किसी तरह का तर्क वरदाश्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह उसे परमात्मा का कहा समझता है। उसकी इस धार्मिक गुलामी ने उसे यह सोचने के काविल नहीं रखा कि जैसे उसे यह हक हासिल है कि वह ग्रपने धर्मग्रन्थ को तर्क से परे समझे, वैसे ही दूसरे को भी यह हक हासिल है कि वह ग्रपने धर्मग्रन्थ को तर्क से परे समझे। जिस दिन वह यह सोचने लगेगा, उसी दिन उसकी समझ में ग्रा जायगा कि कोई धर्मग्रन्थ परमात्मा का कहा हुग्रा नहीं है।

दुनिया में ऐसा एक भी ग्रादमी न मिलेगा, जो परमात्मा के

कहे धर्मग्रन्थों पर तर्क न करता हो, जो उनको गलत न मानता हो। बस, बात इतनी मिलेगी कि हिन्दू कुरान पर तर्क करता मिलेगा, उसे गलत मानता होगा, और मुसलमान वेद पर तर्क करता होगा और उसे गलत मानता होगा। फिर परमात्मा के कहे ग्रन्थों पर तर्क करने से बचा कौन ? दूसरे धर्मों के ग्रन्थों पर तर्क करने की आजादी के साथ-साथ अपने धर्मग्रन्थों की गुलामी जरूरी है। अपने धर्मग्रन्थों की गुलामी गयी कि विचारों की आजादी आयी। विचारों की आजादी आयी कि गुलामी का सारी दुनिया में समान रूप से बँटवारा हुआ। दुनिया में समान रूप से गुलामी का बँटवारा हुआ कि हर आदमी में यह ताकत आयी कि वह अपने-अपने वेद, बाइबिल, कुरान लिख सके। अपने-अपने धर्मग्रन्थ लिखने की काबलियत आयी कि पूंजीवाद, लड़ाईवाद, गुरुडमवाद, अदृश्यवाद आदि खतम।

सेवारूपी गुलामी

दुनिया में ऐसी हालत लाने के लिए आदमी को एड़ी-चोटी का जोर सबसे पहले विचार की गुलामी हटाने में लगाना होगा। यही वह कोशिश है, जिससे गुलामी की जड़ अपनी मुनासिब मुटाई पर आ जायगी। पहले कह चुके हैं कि हम गुलामी का नाश नहीं करना चाहते। हम मानते हैं कि गुलामी के बगैर समाज जिन्दा नहीं रह सकता, पर जिस गुलामी की समाज को जीते रहने के लिए जरूरत है, वह दूसरे किस्म की गुलामी है। आदमी ने उसका नाम अलग रख छोड़ा है। उसका नाम है, *खिदमत*; उसका नाम है, *सेवा*। यह सेवा माँ-बाप अपने

बेटे की करते हैं, गुरु अपने चेलों की करते हैं, नेता अपने अनुयायियों की करते हैं, दोस्त दोस्तों की करते हैं। इस सेवा या गुलामी के वगैर समाज कहीं आगे बढ़ सकता है ? जैसे-जैसे सेवा-नामी गुलामी की समझ आती जायगी, वैसे-वैसे गुलामी या दासता-नामी सेवा का अन्त होता जायगा। यह सब उस वक्त तक किसी तरह न हो सकेगा, जब तक आदमी परमात्मा की गुलामी न छोड़े।

गुलामी के मानी हैं, हर बात के लिए मालिक पर निर्भर रहना। सेवा के मानी हैं, अपनी मेहनत की किसी पर भेट चढ़ाना। ईश्वर से प्रार्थना करके रोटी माँगना या दुनिया का कोई सुख माँगना गुलामी है और यह बहुत बुरी चीज है। ईश्वर को मानकर या यह समझकर कि ईश्वर आदमी के अन्दर है, खूब मेहनत में लगना, खेती करना, फल उगाना, कपड़े बुनना, मकान बनाना और उस मेहनत के फल को दूसरों को बाँट देना सेवा है, बहुत अच्छी चीज है। पर यह सेवा उन्हें नहीं सूझ सकती, जिन्होंने अपनी सोचने की ताकत के बारे में यह सोच रखा है कि वह उन्हें ईश्वर या धर्मग्रन्थों से मिलेगी।

गुलामी पशु से भी नीचे गिरा देती है

गुलामी में क्या बुराई है और सेवा में क्या अच्छाई ? गुलामी हमें कहाँ जा पटकेगी और सेवा कहाँ पहुँचा देगी, यह समझ लेना जरूरी है।

किसने नहीं देखा, कौन नहीं जानता कि जो जिसका नौकर है, वह हमेशा यह सोचता रहता है कि अगर मैंने भूल की,

तो मेरा मालिक मुझे सजा देगा या किसीसे सजा दिलवायेगा। अगर मैंने अच्छा काम किया, तो मालिक मुझे इनाम देगा या किसीसे इनाम दिलवायेगा। इस सोच-विचार में नौकर वहुत कोशिश करने पर भी भूलें कर जाता है। असल में होता यह है कि मालिक की निगाह में कोई काम ऐसा हो ही नहीं सकता, जो भूल से खाली हो। इस बात में सचाई है, पर गुलामी गुलाम को इस सचाई तक नहीं पहुँचने देती। अगर उसे इस सचाई का पता लग जाय, तो फिर यह बात बिलकुल साफ हो जाय कि वह गुलाम रहते कभी अच्छा काम कर ही नहीं सकता, कभी इनाम पा ही नहीं सकता। वह जब कभी अच्छे काम के लिए इनाम पाता है, तो वह काम उतना ही भूलों से भरा होता है, जितना उसका वह काम, जिसे उसके लिए सजा मिली थी। उसे यह पता नहीं कि मालिक इनाम देता है अपनी खुशी पर। मालिक के बेटे के जन्म पर नौकरों को इनाम मिलता है। वहाँ अच्छे काम का सवाल कहाँ है? वादशाह के यहाँ पुत्र जनमने पर कैदी छोड़ दिये जाते हैं, कैदियों के काम से कोई सरोकार नहीं।

ऊपर की वात से यह नतीजा निकलता है कि गुलामों यानी दासों के सोचने का तरीका ऐसा है कि जब वे मालिकों की दुनिया से धर्म की दुनिया में प्रवेश करते हैं, तो ईश्वर को मालिक समझकर अपने पाप की सजा की आशा करने लगते हैं और पुण्य के इनाम की। फिर उनके लिए यह जरूरी हो जाता है कि आँख वन्द कर नरक और स्वर्ग मान लें।

गुलामी में एक सबसे बड़ी बुराई यह है कि वह हमारे अन्दर की खुशी खो देती है। हमारे विचारों का पतन कर देती है, हमें यह भुला देती है कि हमारा परमात्मा हमारे अन्दर है। इस तरह गुलामी हमें आदमी नहीं रहने देती, पशु से नीचे गिरा देती है।

सेवक अपनी खुशी में मस्त

अब सेवा को लीजिये। सेवा करते वक्त आदमी के दिमाग में यह रहता ही नहीं कि वह किसीको खुश करने का काम कर रहा है। सेवा होती ही तब है, जब आदमी का मन और बुद्धि एक सुर हो जाते हैं। मन में भावना उठी कि बुद्धि ने उसकी पूर्ति करने के औजार दिये कि देह उन्हें लेकर काम में लगी। आदमी का आत्मा खुश होना शुरू हुआ। अब वह किसी दूसरे से क्या खुशी माँगेगा? सेवक तो अपनी खुशी में इतना मस्त होता है कि जिसकी वह सेवा कर रहा होता है, अगर वह उस सेवा के बदले उसे गाली दे बैठे या मार बैठे, तब भी उसकी खुशी को बहुत कम धक्का पहुँचता है। ऐसा न होता, तो क्या कोई माँ अपने मांस के लूथड़े जैसे बच्चे को इस योग्य बना सकती कि वह एक दिन महापुरुष कहलाने लगता। सेवा में सेवक को यह पता लग जाता है कि परमात्मा मेरे अन्दर मौजूद है, मौजूद क्या, मैं ही परमात्मा हूँ। अब बताओ अपने को परमात्मा माननेवाला सेवक कैसे यह सोचेगा कि उसे कोई भूल की सजा देगा या कैसे यह सोचेगा कि उसके अच्छे काम का कोई इनाम देगा। यह बात किसी तरह सच नहीं हो सकती कि परमात्मा को सजा और

इनाम की जरूरत है। सेवक नरक-स्वर्ग की बात कैसे सोच सकता है ?

अब यह किसकी समझ में नहीं आ सकता कि सेवक और गुलाम के धर्म कभी एक न होंगे। स्वर्ग और नरक की बात उसीको सूझ सकती है, जो घमण्ड के नशे में चूर है और दुनिया के आदमियों से अपना काम लेना चाहता है, अपने पाँव पुजवाना चाहता है। उसीको यह सूझ सकता है कि वह अपने कुछ साथी भाइयों से कहे कि "तुम्हारा काम मेरी सेवा करना है, अगर तुम धर्मग्रन्थों को पढ़ने की बात सोचोगे या पढ़ने लगोगे, तो तुमसे ईश्वर नाराज होगा और तुम नरक भेज दिये जाओगे। अगर तुम पढ़ने के योग्य होते, तो ईश्वर तुमसे ही आकर बात न करता ? उसने हमें ही योग्य समझा है, इसलिए धर्म की बात तुम हमसे पूछो और जानो।"

धर्म के चक्कर में !

ऊपर के उपदेश का नतीजा यह हुआ कि गुलामी की बड़ी मजेदार सीढ़ियाँ बनती चली गयीं। जिसने यह सुना कि ईश्वर कान में आकर बात कह जाता है, एक दिन उसके जी में आ गया, उसने कह डाला कि ईश्वर उसके कान में आकर कुछ कह गया। अब उसके कुछ भक्त बन गये, नया धर्म खड़ा हो गया।

धर्मों का यह सिलसिला जारी है और जारी रहेगा। हर धर्म अपने अनुयायियों को समझाता रहता है कि उसके धर्म में हर तरह की आजादी है, हर तरह का बुद्धिवाद है, विचारों की पूरी आजादी है। पर जब उपदेश देने बैठता है, तब ऐसा कहता

मालूम होता है कि बुद्धि ऐसी चीज है, इसे हरगिज मन में जगह न देना। आजादी बला है, इसे परमात्मा की गुलामी करते हुए कभी अपने पास न फटकने देना। इन्हीं बातों को कहा जाता है: 'सदाचार, सम्यक्चरित्र, सच्ची जानकारी, सम्यक्ज्ञान, सच्ची श्रद्धा, सम्यक्दर्शन।'

भ्रमवाद और ईश्वरवाद

धर्मों के चक्कर में पड़कर और पीढ़ियों से उनमें फँसे रहने से आदमी की बुद्धि चकरा गयी है। उसका नाम है, भ्रम। यह भ्रमवाद ईश्वरवाद से बढ़कर है। इस भ्रम से आदमी बेहद फायदा उठाने लगा है। वह कभी-कभी ऐसी बातें सोच जाता है, जो जरा गहरे सोचने पर कुछ-की-कुछ मालूम होंगी। आम आदमी बहुत कम अन्दर पैठने की सोचते हैं। इने-गिने, जो अन्दर जाने की सोचते हैं, बहुत गहरे न जाकर थोड़ा गोता लगा पाते हैं। उनके हाथ जो बात आती है, वह दुनिया में फैले मामूली सत्य से कई गुना अच्छी और चमकदार होती है। पर असली सत्य के मुकाबले में वह एकदम मिथ्या होती है। उससे गहरे सत्य के मुकाबले में उसकी चमक फीकी पड़ जाती है।

मूर्ति-पूजा से घमंड टूटा या बढ़ा?

उदाहरण के लिए मूर्ति-पूजा ले लीजिये। पत्थर को पूजकर आदमी अपने मन को और अपने आसपास के लोगों को यह समझाना चाहता है कि देखो, वह कितना भला आदमी है कि उसने अपने घमण्ड को, मान-अपमान को यहाँ तक कम कर दिया

है कि वह पत्थर को सिर झुका देता है। पर उसे यह पता नहीं कि जब वह अपना घमण्ड तोड़ने की बात कहता है, तो वह घमण्ड का महल बनाता रहता है। उसे यह पता ही नहीं कि वह दूसरों को सिर झुकाने से बचने के लिए अपने विचार को सिर झुकाने की एक तरकीब निकाल बैठा है। जिस मूर्ति को वह नमस्कार कर रहा है, वह उसने अपने विचार की बनायी है। इसलिए वह अपने विचार को नमस्कार करता है यानी अपने को झुकता है और औरों को झुकने से बचता है। इसमें घमंड का महल गिरा या ऊँचा गया ?

शिव का भक्त राम की मूर्ति नहीं पूजेगा, कोई जैन हिन्दुओं के राम-मंदिर में नहीं जायगा, जब कि हरएक जैन यह मानता है कि राम की मुक्ति हुई और राम सिद्धि की हैसियत से उसके पूज्य देवता हैं। पर चूंकि राम को उसके मंदिर में किसी वजह जगह नहीं, इसलिए वह उसे नहीं पूज सकता। अब घमण्ड कहाँ टूटा ? दिल्ली के किसी मशहूर कवि के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि वे अकबर बादशाह को नमस्कार करना शान के खिलाफ समझते थे। यही नहीं, वे सिवा पत्थर की मूर्ति के किसीको नमस्कार न करते थे। यह भी सुना गया है कि एक बार जब वे मजबूर किये गये कि अकबर से मिलने आयें, तो सुनते हैं कि वे एक अँगूठी में अपने भगवान् की मूरत बनाकर अपनी उँगली में पहन गये और अकबर को सलाम करते वक्त उन्होंने यह समझकर अपना जी खुश कर लिया कि वे अकबर को नहीं, भगवान् को सिर झुका रहे हैं। इस जोश में उन्हें यह पता ही

न चल पाया कि वे अपने मान और माया यानी घमंड और फरेब, दोनों को घी पिला-पिलाकर मोटा कर रहे हैं।

इसी तरह कुछ आदमी समझ लेते हैं, ईश्वर के दास बनने से अभिमान कम होता है। पर वे यह क्यों नहीं सोचते कि डिप्टी कलेक्टर का चपरासी बनकर जो यह कहे कि वह अपना अभिमान खोने के लिए चपरासी बना है, और उसकी बात को दो-एक सच मान लें, तो उस चपरासी के गांववाले या और जान-पहचानवाले कैसे सच मान लें कि वह अभिमान छोड़ने के लिए चपरासी बना है? क्योंकि वे तो रोज उसे देखते हैं कि वह उन्हें धक्का देकर कचहरी से निकाल देता है और रोज उन्हें बताता रहता है कि वह उनसे बहुत बड़ा है।

गीता के ईश्वर-समर्पण का रहस्य

एक दूसरे किस्म के आदमी हैं, जिन्हें गीता ने यह सिखा दिया है कि जो काम करो, उसे भगवान् के चरणों में अर्पण कर दो। इसलिए तुम कर्तापने के अभिमान से बच जाओगे। ईश्वर के दास बन जाओ, जिस तरह अर्जुन कृष्ण भगवान् का दास बन गया था। इसमें शक नहीं कि ज्ञान-सागर में काफी गहरी डुबकी लगाकर यह तत्त्व हाथ आया है, और दूसरे तत्त्वों की अपेक्षा खूब चमकदार है, पर इससे गहरे तत्त्व के आगे इसकी चमक फीकी पड़ जाती है और पूर्ण सत्य के सामने यह कुछ नहीं रह जाता।

जिस गीता से यह तत्त्व लोगों तक पहुंचा, वह गीता व्यास की लिखी महाभारत का एक अध्याय है। इस महाभारत के विषय

में लोगों की अजीव-अजीव राय हैं। समझदारों की राय है कि 'महाभारत' नाम का युद्ध हुआ हो या न हुआ हो, लेखक ने यह ग्रन्थ अध्यात्म पर लिखा है। इसमें उसी युद्ध का वर्णन है, जो आदमी के अन्दर नित्य होता रहता है। अव गीता के कृष्ण अलग कोई परमेश्वर नहीं रह जाते। हमारे अन्दर वैठा आत्मा ही कृष्ण है। हमारा मन अर्जुन है आदि। अव अपने किये कर्मों को अपने लिए समर्पण करने का क्या अर्थ रह जाता है? इस तत्त्व से किसी एक-दो को लाभ पहुँचा हो, तो पहुँचा हो आम जनता ने इससे या तो लट्ठवाजी करने का पाठ लिया या वड़ों का सिर काट लेने का सवक सीखा। जव हमारे अन्दर वैठा परमात्मा सव कुछ है, तव हम किसी दूसरी तरफ क्यों आँख उठाकर देखें?

मुक्ति भावात्मक नहीं

आदमी सवसे ज्यादा मुक्ति का इच्छुक है। मुक्ति गुलामी से उल्टा भाव है। हम यह कह चुके हैं कि गुलामी न कभी संसार से हटेगी, न कभी व्यक्ति के दिल से। लेकिन समझने की खातिर हम यह माने लेते हैं कि मुक्ति मिलती है, पर वह तो किसी दूसरे से नहीं मिलेगी। जरा गौर से समझने पर पता लग जाता है कि मुक्ति ऐसी चीज है, जो कुछ है ही नहीं, गुलामी का अभाव है। एक गाय रस्सी से वँधी है, वह वंधन में है, रस्सी खोल दीजिये मुक्त हो गयी। इसमें मुक्ति क्या मिली? जव मुक्ति ऐसी चीज है कि जो मिल नहीं सकती, तो फिर माँगी कैसे जा सकती है? फिर मुक्ति के लिए प्रार्थना करने का क्या अर्थ रह जाता है? जव लोग ईश्वर से यह नहीं पा सकते, तव और कुछ माँगने का अर्थ ही नहीं रह जाता। • • •

: ७ :

मानसिक गुलामी

आदमी में जिस दिन से सोचने की ताकत आयी, उसी दिन से उसकी विचार-शक्ति ने दो राहें पकड़ीं : एक सत्य और दूसरी मिथ्या। आगे चलकर सत्य राह फिर दो राहों में बँट गयी : एक दर्शन, दूसरी विज्ञान। राहें आगे चलकर और फटीं, पर उन्हें छोड़ हमारे काम की इस वक्त दो राहें हैं—सत्य और मिथ्या।

सत्य की राह

सत्य की राह से मतलब है, आदमी का प्रकृति की किसी खास घटना को देखना और ठीक कारण जानने की कोशिश करना। यह राह अपनाकर उसने दो चीजों को जन्म दिया—एक विज्ञान, दूसरा दर्शन। उसने अनुमान लड़ाने में कल्पना से इतनी ज्यादा मदद ली, जितनी उसे नहीं लेनी चाहिए थी। नतीजा यह हुआ कि दर्शन ने उसके सामने एक ऐसी चीज खड़ी कर दी, जिसका वह खुद गुलाम बन गया। विज्ञान की राह में यह बात नहीं हुई। उस राह में हर घटना के कारण सोचने में कल्पना की मदद तो उसने ली, पर कल्पना उसकी बनकर रही और जरूरत से ज्यादा आगे न बढ़ पायी। यह न हो पाया कि कल्पना उस पर सवार हो जाती। वह विज्ञान से इतना फायदा उठा सका कि उसकी मदद से उसने ऐसी चीजें तैयार कर लीं, जिनसे वह वैसे

ही अपने दास-दासियों का काम ले सके, जैसे अपने भाइयों से लेता था। एक तरफ विज्ञान ने मानव-समाज की गुलामी की जड़ पर जोर का कुठाराघात किया। आज देखने में ऐसा मालूम होता है कि विज्ञान लोगों को गुलाम बनाने की ओर बढ़ता चला जा रहा है, पर इसमें विज्ञान का जरा कसूर नहीं, किसी दूसरी चीज का कसूर है, जिसका जिक्र फिर कभी करेंगे। हाँ, दर्शन ने किसी अंश तक आदमी में मानसिक दासता पैदा की, पर वह इतनी नहीं, जिससे आदमी छुटकारा न पा सके। हाँ, जो दासता उसे मिथ्या राह चलने से हाथ आयी, वह इतनी गहरी घर कर गयी कि उसका मिटाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव हो गया है।

मिथ्या राह

मिथ्या राह से हमारा मतलब है, वह राह चलना, जिसमें या तो कार्य-कारण ठीक-ठीक नहीं मिलाये जाते या अगर वे ठीक रहे हों, तो यह जानने की कोशिश नहीं की जाती कि वे किसी एक वक्त के लिए ठीक हैं, हमेशा के लिए नहीं। इस तरह कार्य-कारण से पैदा हुए अंध-विश्वास जब आदमी के मन में जगह बना लेते हैं, तब आदमी उनका दास बन जाता है। फिर उसकी यह हिम्मत नहीं होती कि उन विश्वासों की दासता छोड़ सके। दर्शन की राह पर चलकर अपनी कल्पना की दासता जो उसने सीखी, उसने इस मिथ्या राह पर चलने में बड़ी मदद की। दर्शन की दासता में छुटकारा था, इस मिथ्या दासता में वह न रहा। दर्शन की दासता की तह में कहीं ठीक-ठीक कार्य-कारण का

मिलान था, पर मिथ्या राह की दासता में कहीं कोई मिलान नहीं। इस मिथ्या राह में सबसे बड़ी खराबी यह आ गयी कि आदमी दुःख की सम्भावना का एक जेलखाना खड़ा कर लेता है। दुनिया इतनी दुःखमय है कि कहीं-न-कहीं दुःख उससे आ टकराता है। वह यह नहीं समझ पाता कि यह दुःख उस कार्य का कारण नहीं, जिसे उसने समझ रखा है। बल्कि उस कार्य का कारण है, जो उसने दुःख का जेलखाना बनाकर मान रखा है।

सिगरेट का अंध-विश्वास

ऊपर की बात साफ करने के लिए हम एक बिलकुल ताजा उदाहरण देंगे। दुनिया की दूसरी बड़ी लड़ाई के बाद, जो अभी सन् '४५ में खतम हुई, इंग्लैंड में यह अन्ध-विश्वास चल पड़ा है कि एक दियासलाई से तीन सिगरेट नहीं जलानी चाहिए। अगर ऐसा किया जायगा, तो तीन आदमियों में से कोई एक मर जायगा। यह अंध-विश्वास इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि कितनों को उसने मानसिक गुलामी में फँसा दिया है। उसी मानसिक गुलामी के बल पर किसीके मर जाने का कारण यह बता दिया जाता है कि कभी उसने अपनी सिगरेट उस दियासलाई से जलायी थी, जिसमें दो और सिगरेट जली थीं। इस मानसिक गुलामी को जितनी घटाने की कोशिश की जाती है, उतनी ही और बढ़ती है। इसके बढ़ने का जबरदस्त कारण यह है कि आदमी इस बुराई को छिपाने की इसी तरह कोशिश करता है, जिस तरह गर्मी, सुजाक, प्रमेह, सफेदे की बीमारी को। मानसिक गुलामी को हर आदमी मानता है और गुलामी बुरी चीज होती है, फिर वह

सबके सामने कैसे कबूल कर दे कि वह मानसिक गुलाम है। बड़ी उम्र के आदमी की शान के खिलाफ है कि वह यह कहे कि वह भूत से डरता है। सारी मानसिक गुलामियों का यही हाल है। वे घटाने पर घटी नहीं, बढ़ी हैं। वे उस वक्त तक न घट सकेंगी, जब तक दर्शन की गुलामी और दर्शन के खड़े किये देवताओं की गुलामी का अन्त न होगा।

तीन सिगरेट एक दियासलाई से जलाने से बुरा होता है, इसकी तह में क्या बात है या क्या सचाई है ? उस ओर न कोई जाता है, और न कोई जाने की सोचता है; क्योंकि वह सैकड़ों अन्धविश्वासों को जानता है और उनमें पहले से फँसा हुआ है। उसने देख और समझ लिया है कि इन अन्धविश्वासों के न इतिहास मिलते हैं, न कारण, न उनकी सचाइयों का किसीको पता है। उसने यह सोचने की कभी कोशिश नहीं की कि *हर अन्धविश्वास अपने पीछे एक सचाई रखता है।* अगर नहीं रखता, तो उस अन्धविश्वास को खतम करने के लिए किसी सचाई की कल्पना की जा सकती है। हमारा यह विश्वास है कि वह सचाई की कल्पना ९९ फी सदी अन्धविश्वासों में ठीक निकलेगी। सिगरेट जलाने का अन्धविश्वास अभी ताजा है। उसका इतिहास है। उसे जान लेना चाहिए और उस ज्ञान से उसे खतम कर देना चाहिए, पर यह सब करे कौन ? क्या वे पंडित, मौलवी और पादरी करें, जो इन अन्धविश्वासों के पेड़ को पानी देकर नित-नये फल हासिल करते रहते हैं ? या वह सरकार, जो अन्धविश्वासों से फायदा उठाकर फौज के सिपाहियों को बेवकूफ बने रहना

पसन्द करती है, जो यह जानती है कि अंधविश्वासी प्रजा पर शासन करना कहीं आसान है, वनिस्वत उस प्रजा के, जो अंध-विश्वासों से वहुत ज्यादा वची हुई है। एक दियासलाई से तीन सिगरेट जलाना बुरा होता है, यह चला लड़ाई के मैदान से। फौजी दफ्तर से एक वार हुक्म जारी हुआ कि कोई आदमी एक दियासलाई से तीन सिगरेट न जलाने पाये। फौजी हुक्म था। उस पर तुरन्त अमल होने लगा। अव इस हुक्म के ऊपर अन्ध-विश्वास का हाशिया चढ़ा और वह यह हो गया कि ऐसा करने से तीन में से कोई एक मर जायगा या दो और तीनों भी मर सकते हैं। जव यह वात अफसरों तक पहुँची, उन्होंने इस अन्धविश्वास में कुछ भलाई समझी। उसकी तह में जो सचाई थी, उसे न वताने में ही भला समझा। सचाई इतनी थी कि जव रात में फौजें कहीं छावनी डाले पड़ी होतीं और उस वक्त यदि कोई आदमी एक दियासलाई से तीन सिगरेट जलाता, तो दियासलाई देर तक जलाये रखनी पड़ती, जिसकी वजह से दुश्मन के सिपाही को निशाना जमाने के लिए काफी समय मिल जाता और वह उन सिपाहियों पर अचूक वार कर सकता। एकआध को मार गिराता। ऐसी सचाई उन अंधविश्वासों में न ढूँढ़ी जा सके, जो वहुत पुराने हैं, तो न सही, पर ऐसी सचाई की कल्पना तो की जा सकती है। हम आगे कोशिश करेंगे कि कुछ सचाइयाँ पढ़नेवालों के सामने रखें। अगर न कहीं पा सके, तो नयी तैयार करके दे दें। नयी तैयार करने की वात हम इसलिए हिम्मत के साथ कह रहे हैं कि हमने ऐसा करके अपने मित्रों, भाईवन्दों

ग्रौर रिश्तेदारों को वहुत-से ग्रंधविश्वासों से छुट्टी दिलवायी है ग्रौर उनकी मानसिक गुलामी को किसी हद तक दूर किया है ।

कुछ उदाहरण

सीढ़ी के नीचे निकलना बुरा समझा जाता है । सीढ़ी के नीचे न निकलना समझ का काम है, ग्रगर यह काम उस वक्त किया जाय, जव सीढ़ी पर चढ़कर कोई ग्रादमी पुताई का काम कर रहा हो या ऐसी कोई चीज लेकर चढ़ रहा हो, जो ग्रगर निकलनेवाले पर गिर पड़े, तो चोट लगने या मरने का खतरा हो । लेकिन ग्रगर कोई खाली सीढ़ी के नीचे निकल जाय ग्रौर फिर यह वहम पैदा कर ले कि वस, ग्रव कोई ग्राफत उसके सिर ग्रानेवाली है, तो इससे वड़ी बेवकूफी क्या हो सकती है ? यह होगी मानसिक दासता । इसका यह नतीजा होगा कि ग्रगर उस सीढ़ी के नीचे निकलनेवाले ग्रादमी को कहीं मामूली ठोकर भी लग जाय, तो वह उस ठोकर के कारण को ठीक-ठीक न ढूँढ़कर सीढ़ी के नीचे निकलना समझेगा ग्रौर ठोकर खाने की ग्रादत वढ़ा लेगा, क्योंकि ठोकर खाने के ग्रानन्द को उसने कभी जानना नहीं चाहा । ग्रादमी के जीवन में ऐसा दिन शायद ही कोई हो, जिस दिन उसे छोटी-मोटी ग्राफत से मुकावला न करना पड़े । ग्रव से सौ-सवा सौ वरस पहले ग्रादमी की जान रोज खतरे में रहती थी । ग्रव भी शेरनी को वहुत कम ग्राशा रहती है कि उसका शेर शाम को जीता-जागता वापस ग्रा जायगा । कोई वकरी ग्रपने वच्चे के वारे में यह नहीं सोच सकती कि एक घंटे वाद वह उसे देख सकेगी । इस तरह दुःखों से भरी दुनिया में

यह साबित कर देना कहाँ मुश्किल है कि जो तकलीफ आयी, वह सीढ़ी के नीचे निकलने से आयी। किसी समझदार ने सीढ़ी से नीचे निकलना उन बच्चों को बुरा बताया होगा, जिन्हें ऐसी शरारत अक्सर सूझ बैठती है कि वे उसी वक्त सीढ़ी के नीचे निकलते हैं, जब कोई उस पर चढ़कर पुताई का काम कर रहा हो।

आदमी कितना वहम-पुजारी हो गया है, इस विषय में हम अपने जीवन की एक घटना देते हैं। एक बार सोचा गया कि विवाह कराने में पुरोहितों से मदद न ली जाय। चट एक नयी विवाह-पद्धति कर ली गयी। विवाह कराने का काम हमें खुद अपने हाथ लेना पड़ा। एक जगह विवाह के लिए पहुँचे। उसके यहाँ जब विवाह के काम के लिए चौकी माँगी, तो घर में न मिली। हमने कहा, 'चौकी नहीं, एक छोटा-मोटा बकस ले आओ।' वह बकस ले आया। हमने उससे चौकी का काम ले लिया। विवाह की रस्म पूरी कर दी गयी। इस विवाह के कुछ दिनों बाद हम एक दूसरा विवाह कराने पहुँचे। वहाँ जब चौकी माँगी, उसने चौकी लाकर हमारे सामने रख दी। उसके घर में एक छोड़ कई चौकियाँ थीं। थोड़ी देर में विवाह का काम खतम हो गया। उसके बाद उस घर का मालिक यानी लड़की का बाप बहुत दुःखी चेहरा बनाकर हमारे सामने आ बैठा, बोला, 'कसूर माफ हो, तो मैं एक बात पूछूं?' हम उसका चेहरा देख बड़े घबराये। बोले 'हाँ, जरूर पूछिये।' वह बोला, 'आपने हमारी लड़की का विवाह इतनी अच्छी रीति से नहीं किया, जितनी अच्छी तरह से वह विवाह किया था, जिसमें मैं शामिल हुआ

था।' हम कुछ न समझ पाये। हमने कहा, 'इससे आपका क्या मतलब ?'

वह उसी तरह दुःखी चेहरा बनाये बोला, 'महाराज, उस विवाह में आपने बकस मँगवाया था और बकस पर रखकर सारी विधि की थी। हमारी बेटी के विवाह में आपने बकस नहीं मँगवाया। हमने उसे पहले से बनाकर तैयार कर रखा था। मैंने अपनी बेटी का विवाह तो ज्यों-त्यों देख लिया, पर जब भी मेरी नजर उस बकस पर जाती है, तब मेरा जी काँप उठता है कि न जाने मेरी लड़की पर कब क्या आफत आ जाय ?'

हम उसकी यह बात सुनकर हँस दिये। हमारी हँसी ने उसकी आँख में आँसू पैदा कर दिये और वह कह बैठा, 'महाराज, आप मेरे मन की तकलीफ को नहीं जानते, नहीं तो इस तरह न हँसते।'

हमने उसे समझाया, 'भाई, जिस विवाह को तुमने पहले देखा, उस घर में कोई चौकी न थी और सामग्री का सामान ऊँचा रखने के लिए किसी चीज की जरूरत थी। इसलिए हमने उससे बकस माँग लिया और सामग्री का ऊँचा रखने का काम पूरा हो गया। तुम्हारे घर में एक छोड़ कई चौकियाँ हैं, फिर हम बकस का क्या करते ?'

वह यह सुनकर चुप हो गया, पर हमें विश्वास है, हम उसका वहम दूर न कर पाये।

इस दुनिया को इतना वहम-पुजारी बनाया किसने ? उसी दर्शन ने, जिसने कल्पना के बल पर अनेक ऐसे देवता खड़े कर

लिये हैं, जो आये दिन आदमी के सिर पर सवार रहते हैं। उसी दर्शन की कुछ झलक पाकर आदमी ने उससे भी ज्यादा मजबूत अन्धविश्वास गढ़कर अपने आपको मानसिक गुलामी में फँसा लिया है और दिन-ब-दिन उस गुलामी को बढ़ाता चला जा रहा है।

यह गुलामी किस तरह बढ़ रही है? और यह अन्धविश्वास किस तरह एक से दस, दस से सौ और सौ से हजार होते चले जा रहे हैं, इस बारे में हम अपने जीवन की एक घटना और सुनाते हैं।

जब हम इम्तहान देकर लौटे, यह इम्तहान शायद तीसरी-चौथी क्लास का था, जिसका नतीजा दूसरे दिन सुनाये जाने को था, अठारह-बीस घंटे कैसे सन्तोष करते? घर आकर खाना खाने के बाद गेंद हाथ में ली और खेलने लगे। गेंद खेलते-खेलते इम्तहान की याद आ गयी। घर की एक दीवार में सूराख था, जिसमें चिड़ियाँ कभी-कभी घोंसला रख लेती थीं। उस दिन उसमें घोंसला न था। इधर चिड़ियों के बारे में माँ ने बड़ी श्रद्धा बिठा रखी थी। उस श्रद्धा ने चिड़िया के घोंसले के सूराख को मंदिर का रूप दे दिया। और हम बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उस सूराख में अपनी गेंद फेंकने लगे। हमने अपने मन में यह सोच लिया कि पाँच बार फेंकने में अगर गेंद उस सूराख में चली गयी, तो हम जरूर पास हो जायँगे। वह तीसरी बार ही चली गयी। दूसरे दिन हमें मालूम हुआ, हम पास हो गये। हमने अपने पास होने की बात के साथ-साथ अपने दोस्तों को गेंद फेंकने की बात बतायी। उसके बाद यह हाल हुआ कि वह

चिड़िया का सूराख हमारे सब दोस्तों के लिए गुन की चीज बन गयी। कई बरस यह हाल रहा कि हमारे दोस्त जैसे ही इम्तहान देकर आते, सबसे पहले अपनी-अपनी गेंद लेकर हमारे घर पहुँचते और अपनी किस्मत आजमाते। यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि अपनी-अपनी गेंद लाने का रिवाज यों चला कि एक मर्तबा एक लड़के ने दूसरे की गेंद से शगुन देखा और वह झूठा साबित हुआ। इन सब वहमों की जड़ में वही दर्शन-शास्त्र की कल्पना है, वही मिथ्या राह चलने की आदत है। हमें अच्छी तरह याद है कि हमारे गेंद फेंककर इम्तहान का नतीजा जानने की जड़ में वह पाँसा फेंककर किसी किताब में से किसी होनेवाली बात का नतीजा निकालना था, जिसे हमारे माँ-बाप अक्सर किया करते थे। अपनी-अपनी धर्म-किताबों से शगुन या फल निकालने की बात कौन नहीं जानता? अब कहिये, अगर इस तरह के वहमों को न रोका गया, तो हमारी मानसिक गुलामी हमें कहाँ ले जाकर पटकेगी, इसका कोई अन्दाज लगाया जा सकता है?

कार्यकारण भाव में, जो ज्ञान की शाखा तर्क से सम्बन्ध रखते हैं, किसी हद तक यह बल है कि इन पर सवार होकर आदमी की बुद्धि भूत-भविष्य की सैर कर सकती है। जरा-सी इस ताकत ने आदमी के अन्दर तरह-तरह की आशाएँ उत्पन्न कर दी हैं। इसी क़ार्यकारण ने फलित ज्योतिष को जन्म दिया, शगुन देखने की नींव डाली, हरएक आदमी में भविष्य-वक्ता बनने की इच्छा पैदा की, यहाँ तक की इसके बल-बूते तर्क ने

आदमी को जीते-जी सर्वज्ञ वना दिया। सर्वज्ञ वन जाने की वात कहे तर्क-शास्त्र को हजारों वरस हो गये, पर वह आज तक ऐसा आदमी पैदा न कर पाया, जो ठीक-ठीक यह वता दे कि कल क्या होगा ? फिर भी तर्क का सर्वज्ञ है, और हर जगह है।

तर्कवुद्धि ने कार्यकारण की तरफ आदमी का ध्यान खींचा। आदमी की इस इच्छा ने कि मैं मरने से पहले क्या था और मरने के वाद क्या होऊँगा, तर्कवुद्धि में जान डाली। कार्यकारण के आधार पर आदमी ने कोशिश शुरू कर दी कि वह गलत या सही ऐसी सीढ़ी तैयार करने लगा, जिसके डंडों पर पाँव रखकर वह आसानी से जव चाहे तव भविष्य के देश में जा पहुँचे या भूत के देश में जा धमके। भूत के देश में पहुँचकर उसने अपने अनेक जन्म का हाल लिख डाला। जन्मों के हाल लिखने में पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने वड़ी मदद की। जिसे आज का ज्ञानी विकास नाम देता है, उसे पुराना दार्शनिक पुनर्जन्म कहकर पुकारता है। पुनर्जन्म जव अपने पुराने जन्मों की वात कहता है, तो जहाँ-जहाँ वह विकास-सिद्धान्त से मेल नहीं खाती, वहाँ-वहाँ वह ह्रास-सिद्धांत से अपनी वात पूरी कर लेता है।

इसी कार्यकारण की वनायी सीमा से जव वह भविष्य में जाता है, तव स्वर्ग, नरक और मोक्ष तैयार कर लेता है। नरक में वह इस दुनिया की तकलीफों को कई गुना वढ़ाकर अपना मन समझा लेता है और स्वर्ग में सुखों को कई गुना वढ़ाकर अपनी तसल्ली कर लेता है। नरक में जव वह नारकीयों को वड़ी-वड़ी तकलीफें देने लगा, तो उसे मौत का ध्यान आ गया और मौत के

साथ-साथ आदमी के उमर की बात याद आयी। इन दोनों ने मिलकर कोशिश की कि आदमी के सोचे हुए इस सिद्धान्त को ढा दे कि नरक में हजारों तकलीफें उठानी पड़ती हैं, तो वह मर क्यों नहीं जाते? हजारों वर्ष तकलीफ देने के लिए नारकीयों की देह इस किस्म की बना ली गयी कि अगर वे कोल्हू में पेले जायँ, तो मरने न पायें। ऐसी देह बनाने के जोश में इस बात का ध्यान न रहा कि दुनिया में मौत उस वक्त आ जाती है, जब दुःख सहा नहीं जाता। फिर नरक में दुःख देने पर अगर मौत नहीं होती, तो वह दुःख दुनिया के दुःखों से बढ़कर कैसे हो सकता है? इसी तरह जो स्वर्ग गढ़े, उनका तर्क इसी तरह पोच है, जिस तरह नरकों का। यह बात किसीसे छिपी नहीं कि आदमी खाना खाता है, तो कुछ निकालता भी है, पानी पीता है, तो उसका भी कुछ हिस्सा बाहर फेंकता है। पसीना, कान का मैल, आँख की कीचड़, नाक की सिनक, मुंह का थूक, स्तनों का दूध, टट्टी, पेशाब, यहाँ तक कि माहवारी लाल पानी आदमी के जिस्म से निकलता रहता है। इन सबके विकास में आदमी हल्के-हल्के सुख का अनुभव करता है। सबसे ज्यादा सुख आदमी वीर्य के निकालने में मानता है और इसी तरह का सुख स्त्री उन ग्रन्थियों से रस बहाने में मानती है, जो उसके गर्भाशय के आसपास हैं। इन सबसे यह नतीजा निकला कि आदमी खाना खाने में आनन्द मानता है और वह भी इसलिए कि खाना खाते वक्त उसकी जीभ और मुंह की ग्रन्थियां कुछ रस निकालती हैं यानी आनन्द ग्रहण करने और निकालने में है। इस ग्रहण और निकास की

क्रिया का नाम ही आनन्द है और इसमें जितनी तेजी आयेगी, उतना ही ज्यादा आनन्द मिलेगा। कोकीन और मदक के नशे में यही होता है। बच्चे को गुदगुदाने से ग्रन्थियों की क्रिया शुरू हो जाती है, इसलिए वह हँसता है। अब आदमी ने स्वर्ग के देवताओं को खड़ा करते वक्त विज्ञान की इस मामूली बात को एकदम भुला दिया। वह करता भी क्या? उस समय का आदमी इतना विज्ञानी नहीं बन पाया था, जितना आज का। अगर आज का आदमी नरक और स्वर्ग का नक्शा बनाने बैठे, तो पुरानेनरक और स्वर्ग से अपने ढंग का बिलकुल अलग होगा।उसमें कोई ऐसी बात न होगी, जो आज के विज्ञान पर कसी न जा सके।

मोक्ष की कल्पना

आदमी ने मोक्ष बनाकर तो अपनी कल्पना को ऐसी जगह पहुँचा दिया, जिससे आगे उसके लिए कोई रास्ता न रह गया। मोक्ष भी आदमी ने तरह-तरह का बनाया। एक आदमी ने मोक्ष बनाने में उस समय के सारे विज्ञान से मदद ली। विज्ञान ही अकेला ऐसा सच्चा ज्ञान है, जिसके सिद्धान्त उन कार्यकारण पर निर्भर हैं, जो आदमी की इन्द्रियों और बुद्धि की हर तरह पहुँच के अन्दर हैं। इसलिए वह अटल है, उनमें कभी कोई अन्तर नहीं आता। वे जो हजारों वर्ष पहले थे, आज भी ज्यों-के-त्यों हैं। पानी पहले भी नीचे की तरफ बहता था, आज भी वैसे ही बहता है। आग हमेशा ऊपर को उठती रही है और अब भी वैसा ही करती है। पानी से हलकी चीज पानी पर तैरती

है, पानी से भारी चीज पानी में डूब जाती है। इसलिए मोक्ष की जो-जो बातें विज्ञान के आधार पर खड़ी थीं, वे ज्यों-की-त्यों हैं और जो कल्पना के आधार पर थीं, वे ऐसी बेतुकी हैं कि आज उन पर बच्चे को भी हँसी आ सकती है। लोक की जानकारी जितनी आज है, पहले उतनी नहीं थी। पर 'अनन्त' शब्द आदमी की ऐसी अनोखी ईजाद है, जो हमेशा से है और हमेशा तक रहेगा। जिस अनन्त को कभी कोई न नाप पायेगा, उस अनन्त के मामले में पुराने-नये विज्ञानी सब एक हैं, पर जितने हिस्से में लोक को सान्त माना, उतने हिस्से में आज का विज्ञान उससे बिलकुल मेल नहीं खाता। आज लोक का सारा नक्शा इसी तरह अजायबघर की चीज बन गया है, जिस तरह पाँच सौ बरस पहले का दुनिया का नक्शा। पहले आदमियों का लोक आदमी की तरह लम्बा खड़ा था, आज का लोक गोल है और चारों तरफ फैला हुआ है और अ-लोक जैसी कोई चीज नहीं रह गयी है। पहले की दुनिया चपटी थी और वह अचला थी। पृथ्वी का 'अचला' नाम अब अजायबघर की चीज है या अलंकार-शास्त्र का विषय है। अब पृथ्वी घूमती है और हजारों मील फी घंटे की चाल से घूमती है। वह अपनी कीली पर भी घूमती है और सूरज के चारों तरफ भी घूमती है।

आज की आग की लपट पहले की आग की लपट की तरह सीधी मोक्ष की तरफ नहीं, नरक की तरफ भी जाती है। इसी तरह आज के पानी का स्वभाव बिगड़ गया है, वह सिर्फ नरक की तरफ नहीं, स्वर्ग और मोक्ष की तरफ भी जाता है।

कोई यह न समझे कि हम उस आग और पानी का जिक्र कर रहे हैं, जो सुनार अपनी फुंकनी से आग की लौ नीचे की तरफ कर देता है या जिसे पानी के कारखानेवाले फुहारे के जरिये पानी को ऊपर फेंककर दिखा देते हैं। हम उस आग और पानी का जिक्र कर रहे हैं, जो एक ही वक्त में हिन्दुस्तान और अमरीका में विपरीत स्वभाव से काम करते हैं। अब कीचड़ से लिपटी तुम्बी हर जगह पानी में पड़कर कीचड़ धुल जाने पर स्वर्ग या मोक्ष की तरफ दौड़ेगी, कहीं वह नरक की तरफ और कहीं स्वर्ग की तरफ, क्योंकि अब तो हमारी पृथ्वी के चारों तरफ आकाश है, उसके चारों तरफ ज्योतिपी देव हैं। आज के ज्योतिपी देव तरक्की कर गये हैं। अब वे सुमेरु पर्वत का चक्कर नहीं काटते, नरक के नीचे होकर और स्वर्ग और मुक्ति-शिला के ऊपर होकर आते हैं, इसलिए आज की सिद्ध-शिला, जहाँ मुक्तजीव रहते हैं, पहली सिद्ध-शिला से करोड़ों-अरबों गुनी बड़ी होनी चाहिए। अगर यह मान लिया जाय कि सारे जीव भारतवर्ष से ही मोक्ष जाते हैं, तो भी उन्हें मुक्ति-शिला तक पहुँचने में दिक्कत होगी, क्योंकि आज का भारतवर्ष, जो रात के वक्त सूरज से उल्टी दिशा में होता है और आज की पानी की तह की तूंबी सूरज से विपरीत दिशा में जाती है, इसलिए आज का मुक्त आत्मा सिद्ध-शिला से विपरीत दिशा में चला जायगा। पर आज के आदमी को इन सब बातों से क्या लेना-देना? आज वह अनेक ऐसी कल्पनाएँ कर रहा है, जो आज के विज्ञान की कसौटी पर बहुत हद तक ठीक

उतरती हैं, पर उससे परे जाकर वह भी अपना रास्ता भूल जाती हैं। हमें यहाँ सिर्फ इतना कहना है कि आदमी की इस इच्छा ने कि वह पैदा होने से पहले क्या था और मरने के बाद क्या हो जायगा, अनेक वहमों को जन्म दे दिया है। उन्हें सत्य मानकर आदमी सचाई के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ सकता। जब वह वहमों को वहम मान लेगा, तो इनकी तह में रहनेवाली सचाई उसके हाथ लग जायगी और कल्पना के हाथ की चढ़ायी कलई या मुलम्मा दूर हो जायगा।

फलित ज्योतिष बड़ी बला है

फलित ज्योतिष सबसे बड़ी बला है। इसने पढ़े-लिखे और अपढ़, सभीका दिमाग खराब कर रखा है। हमने पूर्वी और पश्चिमी, दोनों तरह के ज्योतिष-ग्रन्थों को कई बरस बहुत ध्यान से पढ़ा। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि दोनों में से कोई ५०-१०० बरस आगे-पीछे की बात बताना तो एक ओर, कल की नहीं बता सकता, पाँच मिनट बाद की नहीं बता सकता, पाँच मिनट पहले की नहीं बता सकता। हाँ, जो घटनाएँ कार्य-कारण के आधार पर बतायी जाती हैं, उनके बारे में ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है। पर उन अनुमानों के लिए फलित ज्योतिष के ग्रन्थ बिलकुल बेकार रहेंगे। जैसे, कढ़ाई में राँगा डालकर आग पर चढ़ा दिया जाय और यह पूछा जाय कि क्या होगा, तो एक रसायनशास्त्री जितना ठीक बता सकेगा, उतना एक फलितज्योतिषी नहीं। ठीक इसी तरह

एक फलितज्योतिषी ग्रहण के वक्त को इतना अच्छा नहीं बता सकता, जितना एक गणितज्योतिषी ।

फलित ज्योतिष में जो सिद्धांत माने गये हैं, उनके पीछे सचाई नहीं । यह कह देना कि शनि और सोमवार को पूर्व की तरफ दिशाशूल रहता है, अपने पीछे कोई सचाई नहीं रखता। क्योंकि इसके साथ-साथ उसी फलित ज्योतिष में यह बात मिलेगी कि पड़वा और नौमी को पूर्व में दिशाशूल होता है । अब जिस दिन शुक्र है, उस दिन दिन के खयाल से पूर्व में दिशाशूल नहीं है और आदमी पूर्व की तरफ जा सकता है, पर अगर उस दिन पड़वा या नौमी में से कोई है, तो आदमी पूर्व में नहीं जा सकता। अब आदमी पड़वा या नौमीवाले ज्योतिषी को माने या शनि और सोमवारवाले को ? फलित ज्योतिष का यह खुल्लमखुल्ला धोखा न जाने क्यों पढ़े-लिखों के गले नहीं उतरता ? सारा फलित ज्योतिष इसी तरह की उल्टी बातों से भरा पड़ा है । तिथि का नतीजा कुछ है, उसी दिन के नक्षत्र का नतीजा कुछ है, उसी दिन के योग का नतीजा कुछ है, उसी दिन के वार का नतीजा कुछ है, उसी दिन की उदय राशियों का नतीजा कुछ है । दुनिया में कोई ज्योतिषी ऐसा नहीं और न हो सकता है, जो उन सबका ठीक-ठीक मेल बिठा दे । दुनिया के कोई दो ज्योतिषी किसी एक बात पर कभी एकमत नहीं हो सकते । अब रही यह बात कि ज्योतिषियों की कोई-कोई बात सच क्यों निकल आती है ? यह ज्योतिषियों की ही क्यों, पागलों की भी सच निकल आती है । हर आदमी की एक-दो नहीं, सौ में से पचास बातें सच

निकल सकती हैं और हर रोज निकलती हैं। उदाहरण के लिए आसमान पर घटा छाने दीजिये और सौ आदमियों से पूछिये कि यह बरसेगी या नहीं और लोगों को अपनी मर्जी से जवाब देने दीजिये, तो सौ में से पचास आदमियों की बात जरूर ठीक निकलेगी। अब एक ही आदमी से सौ बार घटाएँ छाने पर बरसने-न बरसने की बात पूछिये, तो उस एक आदमी की बात भी पचास बार ठीक निकलेगी। इसलिए हरएक आदमी इतना फलित-ज्योतिषी है, जितना वह आदमी, जो फलितज्योतिषी का बाना पहने हुए है।

घटा छोड़ आप पाँसे को ले लीजिये, जिसमें एक-दो-तीन-चार अंक पड़े हैं और किसी आदमी को अपने सामने बिठा लीजिये। पाँसा फेंकने से पहले यह पूछिये कि एक-दो-तीन-चार में से कौन सा नम्बर आयेगा ? सौ बार पाँसे डालिये, वह आदमी सौ में से पचीस बार या एक दो कम-ज्यादा बिलकुल ठीक बता देगा। अब आप सौ आदमी इकट्ठे कर लीजिये और एक बार ही पाँसा डालिये और उन सबसे पूछिये कि एक-दो-तीन-चार में से क्या नम्बर आया है, तो उनमें से पचीस आदमियों की बात ठीक निकलेगी। थोड़ी बहुत कमी-बेशी भी हो सकती है। अब एक ऐसा दाना लीजिये, जिसके छह पहलू हैं और उनमें १-२-३-४-५-६ तक नम्बर पड़े हैं। अब उस पाँसे को डालिये और किसी एक आदमी से सौ बार पूछिये, तो वह १६-१७ बार जरूर ठीक बता देगा। अब सौ आदमी इकट्ठे कर लीजिये और उनसे पूछिये और एक ही बार पाँसा डालिये, तो सौ में से

१६-१७ आदमी बिलकुल ठीक बता देंगे कि कौन-सा नम्बर आया है। सट्टे का जुआ इसी अनुपात के बल पर खड़ा है। सट्टा बुरा समझा जाता है। सरकारों की कोशिश रहती है कि सट्टा बन्द किया जाय। पर फलित ज्योतिष, जिसमें सौ में से क्या, हजार में से एक का भी अनुपात नहीं आ सकता यानी हजार बातों में से एक बात भी सच नहीं निकल सकती, यह सट्टा और जुआ नहीं तो क्या है ? सट्टे और जुए से बढ़कर इस धोखेबाजी को सरकार क्यों नहीं रोकती ? उन सरकारों ने कहीं-कहीं फलित ज्योतिष के स्कूल खोल रखे हैं और वह दोषी कहाँ है ? जैसी रूह वैसे फरिश्ते ! जैसी जनता वैसी सरकार !

हस्तरेखा-शास्त्र भी झूठ

फलित ज्योतिष की तरह रमल बिलकुल झूठ होता है। वह फलित ज्योतिष का हिस्सा है। यही हाल हस्तविद्या यानी हाथ देखने का है। वह फलित ज्योतिष की एक शाखा है। उसमें उन्हीं ग्रह-नक्षत्रों से काम लिया जाता है, जिनसे ज्योतिषी ज्योतिष में बिना किसी सच्ची दलील के किसी ग्रह को बुरा और किसीको भला मान बैठे हैं। हमारे पढ़नेवाले अगर किसी ज्योतिष की किताब को जरा उठाकर देखें, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि सारे ग्रह बुरे ही बुरे हैं, भला कोई रह ही नहीं जाता। सूरज जैसा ग्रह, जो इतने काम का है, जिसके बगैर दुनिया एक दिन जिन्दा नहीं रह सकती, उस तक को फलित ज्योतिष ने बुरा मान रखा है। हो सकता है, फलित ज्योतिष का जन्म ऐसे महीने और ऐसे देश में हुआ हो, जहाँ खूब गर्मी

पड़ती हो और जेठ-वैसाख की लू चल रही हो। अब इस तरह के मनमाने सिद्धान्तों के बल पर कोई आदमी कैसे रमल के जरिये या हाथ देखकर यह बता सकता है कि कल क्या होगा? रही यह बात कि इन रम्मालों और हाथ देखनेवालों की कोई-कोई बात सच क्यों निकल आती है? हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस तरह के रम्माल और हाथ देखनेवाले हम सब भी हैं। हममें से कोई अगर किसीका हाथ देखकर कुछ बताने बैठ जाय, तो उसकी दो-चार बातें सच निकल आयेंगी। लेकिन हम पढ़नेवालों की और भी ज्यादा मदद करना चाहते हैं। वह यह कि दुनियादारों में से हर आदमी को दुनिया से कुछ ऐसी शिकायतें हैं, जो दुनिया के दूसरे आदमियों को भी हैं। यानी दुनिया के सब आदमियों को दस-बीस एक-सी शिकायतें हैं और सारे ज्योतिषी, रम्माल और हाथ देखनेवाले इस ज्ञान से फायदा उठाते हैं, दुनिया को धोखा देते हैं और अपने पेट के लिए पैसा कमाते हैं। वे बातें हम सुभीते के लिए नीचे दिये देते हैं।

किसीका हाथ देखकर कोई आदमी बड़ी आसानी से यह कह सकता है कि तुम कमाते बहुत हो, पर तुम्हारे पास पैसा टिकता नहीं। यह बात सौ फी सदी ठीक निकलेगी। अमीर-गरीब सबको यह शिकायत बनी है। अब रह गया कोई इक्का-दुक्का कंजूस, वह किसीसे छिपा नहीं रहता। उसके बारे में कोई क्यों ऐसी भविष्यवाणी करने लगा?

कोई आदमी किसीका हाथ देखकर या जन्मपत्री देखकर

वड़ी आसानी से यह कह सकता है कि तुम जिसके साथ भलाई करते हो, वही तुम्हारे साथ वुराई करता है। यह भी दुनिया की आम शिकायत है। यह वात भी सौ फी सदी ठीक निकलेगी। ऊपर वतायी हुई वात और यह वात कहकर आप वहुत जल्दी अपने ग्राहक पर ज्योतिषी होने का असर डाल देंगे।

किसीकी जन्म-कुण्डली या हाथ देखकर यह वात भी आसानी से कही जा सकती है कि आप अच्छे वनने की कोशिश करते हैं, पर सफल नहीं हो पाते। यह वात चाहे आपने झूठ कही हो और चाहे आपका ग्राहक सिर से पैर तक दिन और रात वदमाश वनने की कोशिश में लगा हो, पर वह आपकी इस वात को विलकुल सच मान लेगा। क्योंकि दुनिया के सव चोर, डाकू, उचक्के, वदमाश, रिश्वती यही समझते हैं कि वे जो कुछ कर रहे हैं, दुनिया की भलाई के लिए और भले वनने के लिए करते हैं; फिर न जाने क्यों दुनिया उनको भला नहीं समझती! इसलिए यह वात भी सौ फी सदी ठीक निकलेगी।

किसीकी जन्म-कुण्डली देखकर वेखटके कहा जा सकता है कि तुम वालकपन में काफी वीमार रहे हो। अगर किसीको वैद्यक की थोड़ी जानकारी हो, तो वह यह भी कह सकता है कि किस उम्र में ज्यादा वीमारी रही। यह कौन नहीं जानता कि जव वच्चे के दाँत निकलते हैं, तो वह आधा वीमार तो हो ही जाता है। इसलिए यह वात भी सव दुनियादारों पर समान रूप से लागू होती और सौ फी सदी ठीक वैठ सकती है।

फिर जो आदमी ज्योतिषी का पेशा कर वैठते हैं, वे इधर-

उधर की और बातें भी इकट्ठी कर लेते हैं और उनसे फायदा उठाते हैं। नीचे हम एक अपने मित्र ज्योतिषी की सुनाई बात कहते हैं।

हम एक दिन अपने मित्र ज्योतिषी से पूछ बैठे कि 'हम ज्योतिष को ठीक नहीं मानते। फिर तुम किस तरह इस झूठी विद्या से कमा खाते हो ?'

वह हँसकर बोला, 'हम ज्योतिष से नहीं कमाते, ज्योतिष के बाने और आदमी की मानसिक कमजोरी और मानसिक दासता से कमाते हैं।'

हमने पूछा, 'कैसे ?'

वह बोला, 'सुनिये। एक दिन मैं बनारस में गंगा के किनारे स्नान कर रहा था। मुझसे कुछ दूर एक आदमी और स्नान कर रहा था। वह नहाने के बाद जब धोती बदलने गया, तो अपनी अंटी में से रुपये निकालकर उसने तखत पर रखे। मैंने अंदाज लिये, पचास रुपये हैं। उसने धोती बदलकर फिर उन रुपयों को अंटी में लगा लिया। वह चल पड़ा। मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया। वह काशी स्टेशन पहुँचा। वहाँ उसने टिकट लिया। मैंने मुगलसराय का टिकट खरीदा। मैं उसके साथ हो लिया। जिस डिब्बे में वह बैठा, उसीमें मैं बैठा। थोड़ी देर में उसी डिब्बे का एक और मुसाफिर मुझे मेरे बाने से पहचानकर बोला, ज्योतिषीजी, आपको हाथ देखना आता है ? मैंने कहा, मैं यही काम करता हूँ और उसका हाथ देखने लगा। वह मुसाफिर, जिसका मैं गंगा घाट से पीछा कर रहा था, एकदम फट पड़ा

और बोला, अरे देख लिये बहुत-से ज्योतिषी ! तू हाथ देखकर क्या खाक बतायेगा ? तू कल की बात तो पीछे बताना, पहले यही बता कि मेरी अंटी में कितने रुपये हैं ? मैं बोला, सेठजी, आपको ऐसे-वैसे ज्योतिषियों से पाला पड़ा है, कभी कोई सच्चा ज्योतिषी आपको मिला नहीं, इसलिए आप ज्योतिषियों को गाली दे सकते हैं, इन झूठे ज्योतिषियों ने हम सच्चे ज्योतिषियों को बदनाम कर रखा है।

'रही यह बात कि आपकी अंटी में कितने रुपये हैं, यह बताना हम जैसे सच्चे ज्योतिषियों के लिए बायें हाथ का खेल है, पर सेठजी, यह कहिये कि अगर मैंने सच-सच बता दिया, तो फिर क्या होगा ? सेठजी बोले, हम अभी तुम्हें एक रुपया देंगे। मैं बोला, सच्ची बात के लिए और एक रुपया ! सेठजी जोश में आकर बोले, अच्छा पाँच सही। मैंने कहा, अच्छा दिखाइये हाथ। उनका हाथ देखा। एक-दो मिनट इसमें लगाये। फिर अपना पत्रा निकाला, एक कागज निकाला। उस पर कुण्डली बनायी। उसमें एक से लेकर बारह तक लिखा और उस पर सेठजी की अँगुली रखवायी। थोड़ी देर सोचा और बता दिया कि आपकी अंटी में पचास रुपये हैं। अब क्या कहना था ! सेठजी लट्टू हो गये। पाँच रुपये तुरत मेरे हाथ में थमाकर बोले, तुम कहाँ जा रहे हो ? मैंने कहा, मुगलसराय। बोले, हमारे साथ आरा क्यों नहीं चलते ? हम तुम्हारे लिए मुगलसराय से आगे का टिकट खरीद लेंगे और वहाँ तुम्हारी खूब आमदनी करा देंगे। ऐसे सच्चे ज्योतिषी कहाँ मिलते हैं ! मैं उनकी बात मान गया। थोड़ी

देर में उस डिब्बे में ही मैंने दो रुपये और सीधे कर लिये। आरा पहुँचकर मैं सेठजी के घर एक महीना रहा और पूरे तीन सौ रुपये कमाकर घर लौटा। यह है हमारा ज्योतिष।'

बस, आजकल के ज्योतिषी इस तरह आदमी की कमजोरी का फायदा उठाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि फलित ज्योतिष जहाँ तक पहुँच चुका है, उसके आधार पर थोड़ी बुद्धिमानी के साथ आदमियों की जिन्दगियाँ पढ़-पढ़कर एक आदमी के लिए अन्दाज से अलग-अलग लाखों कुण्डलियों के फल लिखे जा सकते हैं और उनमें बहुत-से ऐसे निकल सकते हैं, जिनका दसवाँ-बीसवाँ हिस्सा किसीके जीवन पर पूरा ठीक बैठ सकता है, जिस तरह आजकल की लिखी हुई कहानियाँ या उपन्यास। पर क्या इससे यह साबित हो सकता है कि फलित ज्योतिष-विद्या ठीक है? दुनियादारों की जीवनी भी इनी-गिनी किस्मों की हो गयी हैं। जिस तरह सिनेमा के सब खेल कुछ किस्मों में बाँटे जा सकते हैं, इसी तरह दुनिया के दो अरब आबादी के आदमियों की जीवनियाँ कुछ किस्मों में बाँटी जा सकती हैं। वे थोड़ी बहुत सबके लिए ठीक निकल सकती हैं और उसके बल पर आदमी की पैदाइशी कमजोरी से फायदा उठाया जा सकता है। मानसिक दासता ने ज्योतिष, रमल और हाथ देखने को ही पनपने नहीं दिया, सैकड़ों और वहमों को जन्म दिया और पनपाया है। इसलिए इससे ऐसे ही पीछा छुड़ाना पड़ेगा, जैसे और दासताओं से।

छींक हो जाने पर दूसरे के घर न जाना, बिल्ली रास्ता काट जाने पर जाते-जाते लौट आना, काली चिड़िया के दायें-बायें

वोलने पर सगुन-असगुन समझना, तेली के सामने आ जाने से असगुन हो जाना और पानी का घड़ा सिर पर लिये किसीके आ जाने पर सगुन बन जाना या सामने से मुर्दा आने पर अच्छा समझना, इस तरह के अनगिनत वहम आदमी ने अपने सर बाँध रखे हैं। उसी आदमी से यह छिपा नहीं है कि समय-समय पर बुद्धिमानों ने आदमियों के इन वहमों को काट फेंकने के औजार बनाये और वे ही औजार कुछ आदमी अपनाकर अपनी पेट की कमाई का जरिया बना बैठे हैं और उनसे उन वहमों को न काटकर उन वहमों की जड़ को पानी दे रहे हैं।

जिस तरह छींक हो जाने पर जरूरी काम पर जाने से न रुकने के लिए समझदारों ने छींक का वहम मिटाने की यह तरकीव निकाल दी कि छींक होने के वाद पानी पीकर चला जा सकता है, इसी तरह अगर दिशाशूल हो, तो उससे एक दिन पहले किसी दूसरे आदमी के घर अपना कोई कपड़ा पहुँचा देने से चाला उसी दिन की हो जायगी और फिर दिशाशूल के दिन चला जा सकता है। ठीक इसी तरह बिल्ली के रास्ता काटने पर पाँव के जूते वदलकर या दो-चार कदम उल्टे चलकर आगे का रास्ता लिया जा सकता है। ये सब बातें यह बता रही हैं कि इन सगुनों की तह में कोई सचाई नहीं, महज वहम है। वहम को दूर करने के लिए एक नये वहम को जन्म देना पड़ा और वह एक नयी विद्या वन वैठा। इसलिए वहम का सिलसिला टूटने की जगह और वढ़ा। यह उस वक्त तक बना रहेगा, जब तक आदमी को सचाई से पूरी मोहब्बत न हो। जब तक वह सत्य को ही परमेश्वर न

माने और सत्य के सिवा और सब देवी-देवताओं को अपने दिमाग से निकाल बाहर न कर दे।

यह ठीक है, वहम हमारे अन्दर इतने गहरे घर कर गये हैं कि हम यह कहकर भी 'हमने वहम छोड़ दिये', वहमों से छूट नहीं पाते। पर इससे हमें घबराने की जरूरत नहीं। वहमों के न मानने की बात कहकर हम कुछ आगे जरूर बढ़े हैं। एक दिन ऐसा आकर रहेगा कि हम इतने आगे बढ़े मिलेंगे, जब वहमों का कोई असर हमारे दिल पर न रह गया होगा। या अगर होगा, तो इतना हल्का कि वह काबू से बाहर न होगा।

• • •

: ८ :

सत्य और अन्ध-विश्वास

विश्वास अच्छी चीज है, पर अन्ध-विश्वास नहीं। अन्ध-विश्वासी को सत्य चुभता है और जब कोई चीज चुभती है, तो क्रोध आ जाना बड़ी बात नहीं। क्रोध आने पर झगड़ा खड़ा हुए बगैर नहीं रहता। नतीजा यह होता है कि सत्य की चाल या तो रुक जाती या धीमी पड़ जाती है।

यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि उस बंदर ने क्या गजब ढाया था, जिसने जुगनू को आग की चिनगारी मान लिया था। वह अपने अन्ध-विश्वास में इतना मस्त था कि उसे बया की सीख ऐसी चुभी, मानो उसके कोई बर्छा चुभा रहा हो। उसने गुस्से में आकर बया का घोंसला तोड़ डाला। इस तरह की बातें आये दिन हर मुल्क में हो रही हैं, होती रही हैं। नतीजा यह होता है कि सत्य इने-गिने आदमियों में रह जाता है, जनता तक नहीं पहुँच पाता। फिर किसी आदमी को सूझता है, वह कोई सत्य लेकर खड़ा होता है। जैसे ही वह उसे जनता तक पहुँचाने में सफल होता है, कोई आदमी बंदर की तरह आ कूदता और उसके बने-बनाये घोंसले को तोड़ डालता है।

अन्ध-विश्वास कैसे छोड़ दें?

अंध-विश्वास के खिलाफ हमेशा आवाज उठती रही है।

अंध-विश्वास अपनी जगह इसलिए नहीं छोड़ पाता कि सैकड़ों पंडितों, मौलवियों, पादरियों का यह अन्नदाता बना है। ९०-९५ फी सदी पंडित, मौलवी और पादरी खुद उस अंध-विश्वास में फँसे नहीं होते, पर पेट के खातिर उसके नाश की बात नहीं सोच सकते। जब किसी देश पर विदेशी का राज होता है, तो पेट के खातिर लोग विदेशियों की नौकरी कर लेते हैं। कुछ दिनों में उसी राज के इतने विश्वासी हो जाते हैं कि अगर उनसे स्वराज्य की बात कही जाय, तो काट खाने को दौड़ेंगे, जिस तरह बंदर बया पर झपटा था। पर क्या मुल्क को आजाद करनेवाले उनकी परवाह करेंगे? वह उनकी घुड़कियों, धमकियों और नोच-काट सब बरदाश्त करके अपना देश आजाद करेंगे ही। अंध-विश्वास हमारे दिलों पर विदेशी राज की तरह जमा है, तो क्या सत्य के पुजारी इन अंध-विश्वासियों की मारकाट से डरकर चुप बैठे रहेंगे? सत्य को उन तक न पहुँचायेंगे? जरूर पहुँचायेंगे। सत्य आगे बढ़ा है, बढ़ रहा है और बढ़ता रहेगा। हमें उसकी चाल तेज करनी होगी। उसे तेज करने के लिए हर बात साफ-साफ कहने की जरूरत है। एक बार नंगा सत्य जनता के सामने आना ही चाहिए। यह किसे नहीं मालूम कि जो आसमान को लक्ष्य करके तीर छोड़ता है, उसका तीर सबसे ऊँचा जाता है। जब हम नंगा सत्य लेकर खड़े होंगे, तो वह अपने आप दूर तक जनता के दिलों में पहुँचेगा।

बंदर को गलत विश्वास नहीं होता। कोई आदमी विश्वास को निगाह में रखकर अपने जीवन पर नजर डाल जाय, तो उसे

अनेक उदाहरण मिल जायँगे, जहाँ उसने बंदर जैसी भूल की होगी। हमें अपने जीवन की एक बात याद आ गयी। मैं उन दिनों बारह बरस का था। मेरी दिनचर्या थी: सुबह उठा, मुँह-हाथ धोया, एक लड्डू खाया, स्कूल चल दिया। अगर उस दिन स्कूल न हुआ, तो घर पर ही स्कूल के काम में या खेल में लग गया। अगर स्कूल गया, तो ग्यारह बजे वापस आने पर खाना खाया, खेलने चल दिया, नौ बजे दूध पिया और सो गया। यह सब काम मशीन की तरह चलता था। एक दिन स्कूल की छुट्टी थी। मैं मुँह-हाथ धोकर स्कूल के काम में लग गया। नौ बजे के करीब माँ को याद आयी कि आज मैंने लड्डू नहीं खाया। माँ लड्डू लेकर आयी। मैं एकदम बोल पड़ा, 'मैं खा चुका।'

माँ ने कहा, 'नहीं खाया।'

मैंने फिर कहा, 'मैं खा चुका।'

आखिर बड़ी मुश्किल से माँ मुझे यह विश्वास करा पायी कि मैंने लड्डू नहीं खाया। जैसे ही विश्वास हुआ कि भूख चेत गयी। इससे पहले भूख न थी। बताइये, अंध-विश्वास छोड़ना कितना मुश्किल है?

अन्ध-विश्वास में बुराई क्या है?

सवाल उठ सकता है, इस अन्ध-विश्वास में बुराई क्या है? अगर एक आदमी ने बिना खाये यह विश्वास कर लिया कि उसने खाना खा लिया और उसका पेट भर गया, तब फिर क्यों उसे विश्वास कराया जाय कि उसने खाना नहीं खाया? सवाल अच्छा है, पर इसकी तह में जो बुराई है, उसकी तरफ भी

ध्यान जाना चाहिए। पहले यह देखने की जरूरत नहीं कि अंध-विश्वास से क्या फायदा हुआ, देखना यह है कि विश्वास उसने झूठ बात पर किया और क्या झूठ का विश्वास अच्छी चीज है? अगर झूठ बुरी चीज है, तो उसका विश्वास और भी बुरा। मेरे खयाल से दुनिया का कोई आदमी, चाहे किसी धर्म का क्यों न हो, न झूठ पसन्द करेगा, न झूठे विश्वास को।

रही यह बात कि उस झूठ-विश्वास से फायदा है। वह फायदा ऐसा है, जैसे कोई आदमी रोटी की जगह खालिस पानी से पेट भरकर यह समझ ले कि उसका पेट भर गया या पानी की जगह मिट्टी खाकर समझ ले कि उसका पेट भर गया। पेट भर जाने का फायदा बेशक है, लेकिन क्या आप समझते हैं कि वह पानी या मिट्टी उसकी देह बनाने का काम दे देगी? ठीक इसी तरह अगर माँ मुझे लड्डू न खिलाकर मेरे मिथ्या विश्वास को न हटाती, तो मेरी देह को खाने से जो फायदा होता, उससे मुझे वंचित रखती। पर वह ऐसा कैसे कर सकती थी? इसी तरह सत्य के विश्वासियों को जब यह मालूम होता है कि कोई अन्ध-विश्वासी बनकर जी रहा है और वे यह भी समझते हैं कि अन्ध-विश्वास जीवन का सच्चा सहारा नहीं, तब क्या वे उस अन्ध-विश्वासी से अन्ध-विश्वास दूर करने के लिए कुछ न कहेंगे?

एक बार एक मशहूर पत्रकार अपने पिताजी के पास जालंधर में बीमार पड़ गये। एक वैद्य का इलाज चालू हुआ। इलाज से थोड़ा फायदा हुआ। हफ्तों इलाज चला, पर पूरा फायदा न हो सका। अब डॉक्टरों की मदद ली गयी। डॉक्टरों ने एक्सरे लिया

और उस एक्सरे की तसवीर के वल पर वताया कि उनको टी० वी० हो गया है और एक फेफड़ा विलकुल खराव हो गया है। उन्होंने समझ लिया, उन्हें टी० वी० है। इतना अच्छा था कि डॉक्टर का इलाज शुरू न हुआ था। इलाज वैद्य के हाथ में था। वैद्यजी जैसे आये, उनको वताया गया कि डॉक्टरों का कहना है, इनको टी० वी० है। वैद्यराज एकदम चौंक पड़े। वोले, 'मेरी समझ में टी० वी० नहीं।' पर जब सारे घरवालों ने कहा कि टी० वी० है, तव वैद्य ने मजवूर होकर कह दिया, 'मेरी राय में टी० वी० है नहीं, पर आप सव कहते हैं, तो मैं टी० वी० का इलाज शुरू करता हूँ।' उस दिन से इलाज वदल गया, सोने की गोली चलने लगी। सोना टी० वी० का माना हुआ इलाज है। इधर टी० वी० का इलाज चला, उधर उनकी देह घुलनी शुरू हुई। एक दिन लेने के देने पड़ गये। कफन की तैयारियाँ हो गयीं। किसी तरह फिर दम आया। उसी दिन लाहौर मेडिकल कॉलेज का वाइस प्रिन्सिपल, जो जालंधर का रहनेवाला था, जालंधर आया था। उसे दिखाने के लिए बुलाया गया। उसने एक्सरे की तसवीर देखकर कहा, 'यह तसवीर ठीक आयी ही नहीं, इससे कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम मुझको रोगी का थूक दे दो, उसे लाहौर ले जाऊँगा, वहाँ जाँच करके वताऊँगा कि इन्हें टी० वी० है या नहीं?' इस वात का थोड़ा असर रोगी पर हुआ, वैद्यजी को वल मिला, पर दवा न वदली गयी। प्रिन्सिपल का लाहौर पहुँचने के वाद पाँच-चार दिन तक कोई पत्र न मिला। वीमारी फिर वढ़ी। एक दिन रात के आठ वजे यह तय हुआ कि कोई आदमी लाहौर जाकर उनसे जवाव लाये। जाने की तैयारी

हो चुकी थी कि अचानक प्रिन्सिपल का तार मिला। उसमें तीन शब्द थे—"नो टवरकल वेसिलि" यानी क्षयरोग का कोई कीड़ा नहीं। यह तार सुनकर रोगी का मिथ्या विश्वास ऐसे भाग गया, जिस तरह सूरज से अँधेरा। उसके दूसरे मिनट उसे जो नींद आयी, तो सुवह पाँच वजे आँख खुली। नौ घंटे की एक नींद! दूसरे दिन से वे उठने-वैठने लगे, सात दिन में ठीक हो गये।

अन्ध-विश्वास और मिथ्या विश्वास से यह फायदा तो हुआ कि सारा घर सतर्क हो गया और दौड़-धूप शुरू हो गयी, पर अगर यही विश्वास वना रहता, तो आठ-दस दिन में या पन्द्रह-वीस दिन में रोगी को जीवन से हाथ धोना पड़ता और उसे वद-नाम कर जाते, जिसका इलाज चल रहा था। अन्ध-विश्वास कितना ही अच्छा क्यों न हो, जिंदगी को इस तरह खाता रहता है, जिस तरह लकड़ी को घुन। ऊपर पता नहीं चलता, अन्दर लकड़ी खोखली होती रहती है।

विश्वास के लिए लालच

विश्वास कराने के लिए लालच देने का रिवाज पुराना है। जब भी किसी नये धर्म ने जन्म लिया, तव उसने अपने सिद्धान्तों पर विश्वास कराने के लिए पहले धर्म से वढ़कर लालच दिया। धर्मों में इस तरह लालच देकर अपने अनुयायियों की संख्या वढ़ाना एक रिवाज वन गया है। इस ओर किसीकी नजर नहीं जाती कि इसमें क्या-क्या वुराइयाँ हैं। कुछ धर्म हैं, जो ब्रह्मचर्य पर वहुत जोर देते हैं। ब्रह्मचर्य वहुत अच्छी चीज है। अगर हम

स्वर्ग को विलकुल न मानें और ब्रह्मचारी रहने का अभ्यास करें, तो इस दुनिया में ही इतना सुख पा सकते हैं कि स्वर्ग की कभी याद न आये। पर धर्मवाले हमें ऐसा करने का मौका नहीं देते। वे वचपन से हमारे कान में यह वात डाल देते हैं कि अगर हम ब्रह्मचारी रहेंगे, तो हमें स्वर्ग में देवांगनाएँ मिलेंगी। जो धर्म ईश्वर के कर्तापन में विश्वास करते हैं, उनका काम वगैर ऐसी देवांगनाओं के चल नहीं सकता। हाँ, नामों में फर्क होगा। कहीं वह 'हूर' के नाम से पुकारी जायँगी, कहीं किसी और नाम से। कहीं वह किसी तरह के कपड़े पहनेंगी, कहीं किसी तरह के। कहीं उनका शिष्टाचार कुछ होगा, कहीं कुछ, पर मूल वात में कोई अन्तर न होगा। कर्तावादी ऐसा करते तो करते, अकर्तावादी भी इस वला से न वच पाये।

सव अकर्तावादी दुनिया में रहते हुए सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर जोर देते हैं, इसीको धर्म वताते हैं। सचमुच यह धर्म है भी। समाज इन पाँचों में से किसी एक के वगैर एक कदम आगे नहीं चल सकता। फिर न जाने किसलिए अकर्तावादियों को ऐसे स्वर्ग और नरक की जरूरत पड़ गयी, जहाँ इन पाँचों व्रतों में से कोई एक व्रत भी ठीक-ठीक नहीं मिल सकता।

इस पर जव हम विचार करने लगे, तो हमें अपनी बुआ की और माँ की याद आ गयी। हमें ऐसा मालूम हुआ कि हमारी बुआ पूरी कर्तावादी थीं और माँ एकदम अकर्तावादी।

बुआ जव भी हमसे कोई काम लेना चाहतीं, तो जोर का

लालच देतीं, पेटभर मिठाई का नहीं, पेटभर दही-वड़े का लालच । दही-वड़े के लालच में हम यों आ जाते थे कि हमारे माँ-वाप दही-वड़े कभी पेटभर न खाने देते थे। हमारी वुआ इस लालच से सभी तरह का काम लेती थीं । हमें मंदिर जाने के लिए तैयार होने में इस लालच का उपयोग किया जाता था। जव कभी यह लालच फेल होता, तव डरावे से काम लिया जाता। उस डरावे में पाप लगना, रात को वुरे-वुरे सपने आना, डर लगना, भूतों का आना और कोई वहुत वड़ी वात हुई, तो नरक में दुःख पाना शामिल हो जाता। जव उनका यह उपाय फेल हो जाता, तो वे सीधे उपाय से काम लेतीं, जो उन्होंने हमारे पिताजी से सीख रखा था यानी मारपीट। हमारी माँ इससे एकदम उलटी थीं। उन्होंने हमें कभी न इनाम का लालच दिया, न डर दिखाया। हाँ, वे इतना जरूर करतीं कि कभी किसी खास मौके पर अपनी सहेलियों में हमारा जिक्र कर देतीं कि हमारा लड़का वड़ा अच्छा है और वड़ा काम करता है। हमें याद नहीं पड़ता कि कभी हमारी माँ ने हमें कोई चीज देकर हमसे काम लिया हो। जव चीज देतीं, तव चीज देतीं, जव काम करातीं, तव काम करातीं। उनका हुक्म हम वड़ी खुशी से मानते थे, वुआ का हुक्म मानने में आनाकानी करते थे। कभी जान-वूझकर आनाकानी करते थे, वह इसलिए कि वैसा करने से कुछ-न-कुछ लालच हमें जरूर मिलता। माँ के हुक्म के लिए ऐसा करने को हमारे दिल के किसी कोने में कोई जगह न थी।

माँ का हुक्म मानने में अन्दर से ऐसी खुशी होती थी, मानो

हमारे अन्दर कोई बैठा हमारी सारी देह गुदगुदा रहा हो। बिलकुल ऐसा मालूम होता, मानो हम अपना काम अपने-आप कर रहे हों। यह बात बुआ का हुक्म मानकर काम करने में नहीं होती थी। बुआ का काम कर लाने के बाद हमारा सारा ध्यान इस तरफ चला जाता था कि दही-बड़े खाने के लिए पैसे कब मिलेंगे। जब तक पैसे न मिलें, तब तक बुआ से तकाजा चलता था। करीब-करीब सारा दिन इसी झंझट में निकल जाता; क्योंकि दही-बड़ों की चाट शाम को ही खायी जाती। जब हम छोटे थे, तब तो हम बुआ और माँ के हुक्म में तमीज न कर पाये। तीस बरस के होकर जब हमने बाहर और अन्दर के सुख में फर्क करना अपने अनुभव से सीखा, तब दही-बड़े खाने का आनंद और अन्दर से बदन फूलने का आनंद, दोनों हमारे सामने आकर खड़े हो गये। तब हम समझ पाये कि लालच के लोभ में किये काम अपने लिए भले नहीं होते। लालच अन्दर का सुख नहीं दे सकता। यह हुई हमारे लिए बात, इससे हमारी बुआ कोई सबक थोड़े ले सकती थीं! उनके लिए तो उनका तरीका ठीक था। उन्होंने समझ रखा था, वह हमसे खूब काम लेना जानती हैं, उम्रभर उन्होंने उस तरीके को छोड़ा नहीं।

यह आप-बीती लिखकर हम कहना चाहते हैं कि आदमी ने अपने इस रिवाज को ज्यों-का-त्यों धर्म के मामले में अपना लिया है। यह बिलकुल हमारी बुआ की नकल करता है। वह पहले धर्म के मनवाने में स्वर्ग का लालच देता है, अगर उससे काम नहीं चलता, तो नरक का डर दिखाता है और उससे न चले, तो डंडे

से काम लेता है। जैसे हमारी बुआ थप्पड़ से काम लेकर यह समझती थीं कि वह हमारा भला कर रही हैं, वैसे ही धर्मवाले आदमियों को धर्म की खातिर बड़ी-बड़ी सजाएँ देकर यह समझते हैं कि वह उनका भला कर रहे हैं। अधर्मियों की जान लेकर वे यह समझते हैं कि बहुत भला कर रहे हैं, बदले में उन्हें ईश्वर की तरफ से बहुत बढ़िया इनाम मिलेगा। अब, जब लोगों ने ऐसे विश्वास को अपने अन्दर जगह दे रखी है, तब यह आशा करना कि दो धर्म आपस में नहीं लड़ेंगे, बेकार की आशा है। दो धर्मों के लड़ने की बात छोड़िये, पहले एक धर्मवाले अपने उस सहधर्मी को सताना छोड़ें, जो सच्ची या नयी बात कहने खड़ा होता है।

अंध-विश्वास में यह ऐसी बुराई है, जो सुख की खेती को कीड़ा बनकर खाती रहती है। सच्चा आदमी तब तक किसी बात पर विश्वास नहीं कर सकता, जब तक कि वह अपने दिल की तसल्ली न कर ले कि वैसी बात पर विश्वास करने के लिए उसे क्यों मजबूर किया जाता है? सच्चे आदमी में जिस तरह ऐसा हठ होता है, वैसे ही उसमें दूसरा गुण भी होता है। वह यह कि वह कभी किसीको किसी बात पर विश्वास करने के लिए नहीं कहता, जब तक कि वह उस बारे में उसकी पूरी तसल्ली न कर दे।

लालच दिखानेवाले धर्म से कोसों दूर

हमारे एक मित्र थे। उनके बाप 'फ्रीमेसन' थे। उन्होंने कई बार अपने बेटे से 'फ्रीमेसन' हो जाने को कहा, पर वे कभी राजी न हुए, क्योंकि उनके बाप उन्हें यह बताने के लिए तैयार

न थे कि 'फ्रीमेसन' के क्या सिद्धान्त हैं। उनके वाप का कहना था, 'फ्रीमेसन' हो जाना बड़ी अच्छी वात है और 'फ्रीमेसन' हो जाने से वे खुद वहुत फायदे में रहे और 'फ्रीमेसन' होकर अनेक झंझटों से वचा जा सकता है। कभी कोई दुनियादारी की आफत आयेगी, तो 'फ्रीमेसन'वाले उन्हें वचा लेंगे। यह सव लालच उनके मन को न भाये। इसे हम अपने मित्र का भाग्य या उनकी बुद्धिमानी ही समझ सकते हैं, नहीं तो उनके वाप ने उन्हें लालच देने में कोई कमी न रखी थी। अगर वे जरा कमजोर दिल के होते, तो फँस गये होते। यहाँ हम यह नहीं कहना चाहते कि फ्रीमेसनरी के सिद्धान्त बुरे हैं। हम तो यह कहना चाहते हैं कि फ्रीमेसनों में यह वहुत वड़ी वुराई है कि किसीको वह अपने सिद्धान्त वताये विना अपनों में मिलाते हैं। इससे हरएक आदमी को यह कहने का हक हो जाता है कि उनके सिद्धान्त झूठे और वाहियात हैं। अगर ऐसे नहीं हैं, तो कम-से-कम ऐसे तो जरूर हैं, जो फ्रीमेसनों को उन आदमियों पर जुल्म ढाने के लिए मजवूर कर देंगे, जो फ्रीमेसन नहीं हैं।

जो धर्म स्वर्ग का लालच या नरक का डर वताकर किसीको मुक्ति में, ईश्वर में या और किसी अदृश्य शक्ति में विश्वास कराना चाहता है, वह धर्म सत्य से कोसों दूर है। वह धर्म आदमी को उस ताकत का विश्वास नहीं करा सकता, जो आदमी के अन्दर मौजूद है या जिसे आदमी पैदा होते वक्त अपने साथ लाता है।

स्वतंत्र विचार से रोकना हत्या से बढ़कर

जो धर्म या आदमी, आदमी के अंदर बैठी विचार-शक्ति को दबाकर कुछ सिखाना चाहता है, वह अन्यायी है। उसे इसी तरह सजा मिलनी चाहिए, जिस तरह उसे, जो एक आदमी को मार डालता है। किसी हालत में सम्भव है, आदमी की गर्दन काट दी जाय और उसका कुछ न बिगड़े, मगर यह किसी तरह सम्भव नहीं कि आदमी की आजादी से सोचने की ताकत दबा दी जाय और उसका कुछ न बिगड़े। किसीको आजादी से विचार करने और जाहिर करने से रोकना उसे जीते जी मार डालना है। किसीको अपने विचारों के जाहिर कर डालने पर गुस्से से मार डालने से कई गुना बुरा है, उसके विचारों को जाहिर न होने देना। पर दुनिया में रिवाज यह है कि आदमी का सिर काटनेवाले को सजा मिलती है और आदमी के अन्दर बैठे ज्ञान का सिर काटनेवाले को कोई सजा नहीं मिलती। आदमी का सिर काटने का काम वे लोग करें तो करें, जो यह नहीं मानते कि आदमी के अंदर बैठा कोई आत्मा भी है, पर जब वे लोग करते हैं, जो यह मानते हैं कि आदमी के अंदर आत्मा है, तो हमारे अचरज का ठिकाना नहीं रहता। अगर गहराई से देखा जाय, तो सिर काटने का काम आम तौर से आत्मवादी ही करते हैं। अनात्मवादी तो स्वतन्त्र विचार के पक्षपाती होते हैं। वे कभी किसीको ऐसी बात पर विश्वास करने के लिए मजबूर नहीं करते, जिसे वे अच्छी तरह समझा न दें।

ये आत्मवादी अपने-आप अपने जाले में मकड़ी की तरह

फँस गये हैं। उन्होंने आत्मा को अकाट्य, अमर, अच्छेद्य मानकर आदमी की देह की कदर करना छोड़ दिया। उन्हें आदमी की जान लेते कोई डर नहीं लगता। ये आत्म और परमात्मवादी ही हैं, जिन्होंने शूद्रों की रचना की, जिन्होंने अछूतों की एक नयी जमात खड़ी कर दी, जिन्होंने कुछ लोगों के लिए ऐसे कठोर नियम बनाये, जिनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे मनुष्यों के योग्य हैं और न यही कि वे मनुष्यों के रचे हैं। इन आत्म और परमात्मवादियों में यह सोचने की समझ ही नहीं रह गयी कि किसी आदमी को आजादी से विचार करने से रोकना उसका गला काटने से ज्यादा बुरा है।

महापुरुषों का सिद्धान्त सत्य-रक्षा

यह किसे मालूम नहीं कि बीसवीं सदी का गांधी अपनी जान देने पर उतारू हो जाता था, जब उसे अपने विचार प्रकट करने से रोका जाता था। यह किसे नहीं मालूम कि लोकमान्य तिलक ने यह पसन्द किया कि उनकी देह जेलखाने की कोठरी में बंद कर दी जाय, पर यह पसन्द नहीं किया कि उन्हें उन विचारों को प्रकट करने से रोका जाय, जिन्हें वे ठीक समझते थे। उन्होंने कभी अपने किसी चेले को लालच देकर या डर दिखाकर अपनी बात मानने के लिए मजबूर नहीं किया। वे अपनी दलीलें देते थे। अपने शिष्य की तसल्ली करके अपनी बात उसके गले उतारते थे। वे खूब जानते थे कि आदमी के अन्दर बैठे आत्मा की हर बात को जरूर सुनना चाहिए और आदमी के अन्दर बैठे आदमी को हर तरह पूरा स्वाधीन होना चाहिए, फिर चाहे उस

स्वाधीनता की खातिर बाहर रहनेवाले आदमी को कम या ज्यादा तकलीफ ही क्यों न सहनी पड़े।

जितने महापुरुष हुए हैं, उनके सिद्धान्तों से अगर कोई हिंसा ढूंढ निकाले या असत्य बोलना साबित कर दे, तो यह सिर्फ खींचतान ही न होगी, महापुरुषों के सिद्धान्त को उलट देना होगा। सब महापुरुषों का एक सिद्धान्त होता है, सत्य की रक्षा। और सत्य की रक्षा इसके सिवा क्या हो सकती है कि हर आदमी को अपने विचार प्रकट करने की पूरी स्वाधीनता हो। कोई आदमी किसी बात पर विश्वास करने के लिए मजबूर न किया जाय। अगर उसे किसीने धोखा देकर यानी कोई लुभावा देकर या कोई डरावा दिखाकर किसी बात में विश्वास करने के लिए मजबूर किया हो, तो दूसरे आदमियों को छूट हो कि वे सच्ची दलील देकर उस आदमी को उस विश्वास से हटा दें।

पुराणों में हिंसा का समर्थन क्यों ?

पुराणों में और कहीं-कहीं महापुरुषों के कामों में ऐसी बातें मिल सकती हैं, जो सीधे हिंसा का समर्थन करती हों। पर जहाँ तक हमारा खयाल है, वह हिंसा का समर्थन उन आदमियों के लिए नहीं होगा, जो कोई सत्य विचार प्रकट करते थे। बल्कि वह इसलिए की गयी होगी कि वे लोगों को सत्य-विचार करने से रोकते होंगे, उन्हें कष्ट देते होंगे, उन्हें मारते होंगे। गांधीजी के मारनेवाले को फाँसी इसलिए नहीं दी गयी कि वह सत्य विचार करता था, बल्कि इसलिए कि उसने एक सत्य-विचार प्रकट करनेवाले की जान ली। क्रान्तिवादियों ने जिन अंग्रेज

अफसरों की जानें लीं, वह इस वास्ते नहीं लीं कि वे सत्य-विचारक थे या सत्य विचारों को प्रकट करनेवाले थे। वल्कि इसलिए कि वे अफसर उन आदमियों को सजा देते थे या मार डालते थे, जो यह सत्य-विचार प्रकट करते थे कि हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों का है, अंग्रेज उसके मालिक नहीं।

जो किसीकी जान लेता है, दुनिया का कानून उसकी जान लेगा। लेकिन पाँच व्रतरूपी धर्म जान लेनेवाले की जान न लेगा, क्योंकि उस धर्म यानी उस धर्म के धर्मी को यह अच्छी तरह ज्ञान होता है कि आदमी जव किसीकी जान लेता है, तो वह किसी-न-किसी अन्ध-विश्वास से दवा होता है। वह यह भी जानता है कि आदमी का अन्ध-विश्वास का दवाव किसी आदमी की जान ले लेने के वाद दूसरे क्षण से कम होना शुरू हो जाता है। इसलिए अगर उसे माफ कर दिया जाय और उस पर कुछ कोशिश की जाय, तो वह अन्ध-विश्वास छोड़कर सत्य-विश्वास को अपना सकता है, ठीक विचारक वन सकता है और दुनिया को वहुत फायदा पहुँचा सकता है। अहिंसावादी ने यह वात कुछ यों ही नहीं मान ली है। इस दुनिया में अनेक हिंसक आदमियों को अहिंसक वनते देखा है, सुना है, यह भी सुना है कि वहुत पहले जमाने में यह वदलाव होता रहा है। इसलिए वह अगर जान लेनेवाले की जान नहीं लेता, तो किसी हद तक ठीक करता है।

क्रान्तिकारी अंग्रेजों को मारकर हिन्दुस्तान को आजाद करना चाहते थे। यह ठीक है कि वे किसीके विचारों का

गला नहीं घोंट रहे थे। वे तो अन्यायी की गर्दन काटना चाहते थे। पर इस बात को भी तो ठीक मानना चाहिए कि वे इतने योग्य नहीं थे कि अन्यायियों का दिल बदल सकते। वे इतने योग्य इसलिए नहीं थे कि उनमें यह अन्ध-विश्वास था कि आजादी की खातिर लड़ाई लड़ने में मर जाने से स्वर्ग मिलता है और जीते रहने से राज्य मिलता है। इस बात के लिए वे अन्ध-विश्वासी थे कि दुश्मन को मार डालने से कोई पाप नहीं लगता। उन्होंने दुश्मन की जान ली, पर सत्य-विचारों का गला नहीं घोंटा। उनकी इतनी अच्छाई और देशों के लिए भी बड़ी भली साबित हो गयी, क्योंकि जैसे ही आदमियों के मन बदलने में विश्वास रखनेवाला और अहिंसा का सच्चे-दिल से पुजारी हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिए मैदान में कूदा, वह सब उसके साथी हो गये, जब कि कायदे से वह अहिंसा का पुजारी क्रान्तिकारियों का दुश्मन होना चाहिए था, क्योंकि वह उनकी मान्यता का विरोधी था। पर क्रान्तिकारी तो विचार का गला घोंटने के पक्षपाती न थे, इसलिए वे अहिंसक को अपना दुश्मन क्यों समझते? इतना ही नहीं, जो विचारों का गला नहीं घोंटता, वह दूसरे के विचारों को ध्यान से सुनता है, उसकी दलीलों पर गौर करता है, उसकी दलीलें अगर मन-लगती होती हैं, तो उन्हें मान लेता है और उसीका बन जाता है। ऐसा ही इन समझदार क्रान्तिकारियों ने किया और वह उस अहिंसक के जी-जान से साथी बन गये। हिन्दुस्तान आजाद हो गया। गुलामी का साँप अपने-आप भाग गया। न साँप मरा, न लाठी टूटी।

ऊपर के उदाहरण हमने इसलिए दिये हैं कि कहीं कोई आदमी पुराणों की हिंसा या महापुरुषों के कामों की हिंसा से कोई गलत पाठ लेकर अन्ध-विश्वासी न बन बैठे और हिंसा-अहिंसा पर स्वतंत्र विचार करने की योग्यता न खो बैठे। हमारा ऐसा खयाल है कि दुनिया ने जिस दिन स्वतंत्र विचारों की कदर करना सीखा, उस दिन अपने-आप दुनिया पर सत्य और अहिंसा का राज्य हो जायगा। सत्य के साथ अहिंसा को कहने का रिवाज-सा ही पड़ गया है। केवल सत्य काफी है। इसलिए यह कहकर भी काम चल सकता है कि दुनिया पर सत्य का राज्य हो जायगा। सत्य का दूसरा नाम है परमेश्वर। परमेश्वर को ही कुछ लोग राम कहकर बोलते हैं, इसलिए सत्य के राज्य को 'रामराज्य' कहा जा सकता है।

विचारों की स्वतन्त्रता सरकार की कसौटी

स्वतंत्र विचार की आजादी ऐसी कसौटी है, जिस पर दुनिया की सरकारें कसी जा सकती हैं और यह बताया जा सकता है कि सरकारें किस हद तक जनतावादी हैं। आज ऐसा कौनसा देश है, जो इस बात का अभिमान कर सकता है कि उसके यहाँ विचारों की पूरी आजादी है। जिस देश में विचारों की आजादी नहीं, उस देश में आजादी ही नहीं, फिर वहाँ रामराज्य कैसा? दुनिया के सब राजकाजी लोग एक मामले में बिलकुल अन्ध-विश्वासी होते हैं, वह यह कि अगर विचारों की स्वाधीनता की घोड़ी की लगाम ढीली कर दी गयी या बिलकुल उतार दी गयी, तो दुनिया में अराजकता फैल जायगी। वे अपने इस विश्वास को अगर

स्वतंत्र विचार की कसौटी पर कसें, तो उन्हें साफ मालूम हो ज़ायगा कि वे इस वात पर विश्वास नहीं करते कि हर आदमी के अन्दर परमात्मा मौजूद है और वही परमात्मा खास मौकों पर जागकर या अवतार लेकर, काम को सँभाल लेता है। यह कौन नहीं जानता कि अराजकता में से सुराजकता वड़ी जल्दी जनम ले लेती है। अगर विचारों की स्वाधीनता को लेकर अराजकता शुरू हुई, तो हमारा विश्वास है कि वहुत कम हिंसा होकर या विलकुल हिंसा न होकर अराजकता अपनी उमर विता सकती है और मरकर सुराजकता को जनम दे सकती है।

विचार की आजादी से अधर्म का राज्य नहीं

दुनिया की सरकारों की तरह दुनिया के सारे धर्म यह विश्वास लिये वैठे हैं कि जैसे ही लोगों को विचार-स्वाधीनता दी गयी कि अधर्म का राज्य स्थापित हो जायगा। उनकी समझ में यह वात आ ही नहीं सकती कि विचार-स्वाधीनता खुद एक धर्म है और सव धर्मों का धर्म है। उनको यह नहीं मालूम कि उनका अपना धर्म भी किसी स्वाधीन विचारक की देन है।

मेरी माँ करीव सव धर्मों को मानती थीं और धर्मों के क्रियाकांडों में विश्वास रखती थीं। विश्वास रखने की वात मैं लिखने के लिए लिख रहा हूँ, असल में मुझे कहना यह चाहिए कि वह सव धर्मों के क्रियाकांड कर लेती थीं। उनमें एक वड़ी खूवी थी कि मुझे किसी क्रियाकांड के करने पर मजवूर न करती थीं। मजवूर करना तो एक ओर, अगर मैं उसके क्रियाकांड को रोक देता, तो वह मुझसे कभी नाराज न होतीं। कभी नाराज

होतीं, तो इतना खुश चेहरा बनाकर कि उल्टे मेरी हिम्मत बढ़ती कि मैं उनके किसी क्रियाकांड को कभी रोक सकूं। कई बार मैंने दशहरे, दीवाली, होली-सलूनो के त्योहारों के मौके पर उस समय होनेवाले क्रियाकांड को नहीं होने दिया या कोई बदलाव कर दिया, तब इतना ही नहीं कि उन्होंने मुझे झिड़का नहीं, उन्होंने मेरा साथ दिया और मेरे क्रियाकांड को ठीक समझा। क्या मैं अपनी माँ के इस व्यवहार को यह नहीं कह सकता कि वह मुझे स्वाधीन विचार करने की शिक्षा दे रही थीं ? यह ठीक है, वे पढ़ी-लिखी न थीं और पढ़ी-लिखी होतीं तो सम्भव है, जो काम वे स्वभाव से कर रही थीं, उसे जान-बूझकर और बुद्धि-पूर्वक करतीं। शायद तब मुझे कई गुना फायदा हो जाता। पर मुझे यह कहते डर लगता है कि अगर वह कहीं पढ़ी-लिखी होतीं, तो अजब नहीं किसी अन्धविश्वास में फँस गयी होतीं या फँसा दी गयी होतीं, और फिर मैं उनके साथ इतनी आजादी न ले पाता, जितनी ले रहा था। ये बातें भी मैं अपने अनुभव पर कह रहा हूँ। २७ बरस का होकर जब मैंने अपने धर्म-ग्रन्थ पढ़ने शुरू किये, तब मैं पक्का अन्ध-विश्वासी बन गया और उसी अन्ध-विश्वास में मेरी पहली तीर्थयात्रा हुई। उस यात्रा में मैं एक तरफ तो फलित ज्योतिष का पूरा अविश्वासी था और ज्योतिषी के कहने पर मैंने अपने इरादे में एक मिनट का अन्तर न पड़ने दिया, दूसरी ओर इस बात का पूरा अन्ध-विश्वासी था कि तीर्थ के दर्शन बड़े भाग्य से होते हैं। अभागों की आँखें तीर्थ पर पहुँचकर बन्द हो जाती हैं और उन्हें दर्शन नहीं हो पाते। मैं इस बात का विश्वासी

था कि जिसको दर्शन हो जाते हैं, उसके लिए मुक्ति की रजिस्ट्री हो जाती है। उस अन्ध-विश्वास को लेकर जब मैं सब यात्रियों को छोड़कर अकेला तेजी से पहाड़ पर चढ़ा, तब मेरी मन की उमङ्गों का ठिकाना न था। पर जैसे ही पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर मन्दिर का ताला बन्द मिला, वैसे ही एकदम मेरा वह हाल हो गया, मानो मैं मर गया हूँ। मैंने समझ लिया, मैं अभागा हूँ, देवताओं ने मुझे दर्शन से रोकने के लिए ताले बन्द कर दिये हैं। निराश होकर मैं दूसरे रास्ते नीचे उतरा। दो-चार फलांग चलने के बाद सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। उसने पूछा, 'तुम यहाँ कहाँ ?' मैंने कहा, 'मैं बड़ा अभागा हूँ, मेरे भाग्य में भगवान् के दर्शन न थे।' वह बोला, 'चाबियाँ मेरे पास हैं, चलो, मैं दर्शन कराता हूँ।' वह मन्दिर का माली था और इससे मेरी आँखें खुल गयी।

जितनी देर दु:ख रहा, वह सब अन्ध-विश्वास की देन थी और उस दु:ख के मिटाने का काम उस मामूली जानकारी ने किया, जिसे सत्यसागरी एक बूंद का हिस्सा नहीं कहा जा सकता।

उसके बाद अन्ध-विश्वासों का ताँता दिन-ब-दिन कम होता गया। अब धर्मग्रन्थों के पढ़ने की मेरी दृष्टि ही बदल गयी। जो धर्मग्रन्थ मेरे लिए अन्ध-विश्वास के भंडार बने थे, अब वे मेरे सामने नित-नया सत्य रखने लगे। ये ग्रन्थ अपना सत्य मेरे हाथ हर्गिज न सौंपते, अगर मेरी माँ ने मुझे वह आजादी न दी होती, जो बचपन में जरूरी थी, और मुझमें आजादी से सोचने की काबलियत पैदा कर दी थी। • • •

: ६ :

दुविधा यानी दो राहें

'दुविधा' शब्द के अर्थ हैं दुःख, पीड़ा, चिन्ता आदि। हमें इन अर्थों से कुछ लेना-देना नहीं। हम दुविधा का अर्थ करते हैं, दो तरह का और इसी अर्थ में विचार करेंगे।

सारी दुनिया दो तरह की

दुनिया दो तरह की, दुनिया की सब चीजें दो तरह की। यही हाल हमारे जीवन का। काल, कहने के लिए तीन हैं—भूत, वर्तमान, भविष्य; पर व्यवहार में दो हैं—भूत और भविष्य। वर्तमान वीच में खिंची लकीर जैसा इतना पतला है कि रेखा-गणित की रेखा की तरह उसमें लंबाई है, चौड़ाई नहीं। वर्तमान नाम के लिए है, व्यवहार के लिए नहीं।

जीवन के दो रास्ते हैं: एक इहलोक का, दूसरा परलोक का।

इहलोक के माने हैं, लोगों से हिल-मिलकर चलना, खाने-पीने-पहनने का सुभीता करना, तन, मन, मस्तक, तीनों के लिए खुराक जुटाना और इनके अलावा हमारे अन्दर जो एक अदृश्य काम कर रहा है, उसके सुख का पूरा-पूरा खयाल रखना। अदृश्य आँख से परे है यानी आँख की पहुँच में नहीं आ सकता। पर मन के परे नहीं। मन की पहुँच उस तक है, इसलिए वह इह-लोक की चीज है।

परलोक के माने हैं, उस जीवन के लिए जीना, जिसका कोई ठीक चित्र हमारे सामने नहीं है। जो है वह खिचा मिला है, उसके वारे में जो हमें सुनने को मिलता है, वह सव इसी लोक के सुख और दुःख का वढ़ाकर खींचा हुआ चित्र है। उसके वारे में जितनी हमारी जानकारी है, उससे ज्यादा अजानकारी है। परलोक का मार्ग कैसा है? उसका ठीक-ठीक हाल आज तक किसीने नहीं वताया। हाँ, यह तय है कि उस मार्ग पर चलकर इस लोक के सव सुख त्यागने पड़ेंगे। पूजा, प्रार्थना करनी होगी और किसी ऐसे प्राणी की मदद की जरूरत होगी, जो अव इस दुनिया में नहीं है। कहा जाता है, वह कभी इस दुनिया में था।

इहलोक और परलोक : एक तुलना

इहलोक के रास्ते में हमारी देह जो काम करेगी, उसका तुरत फल देखने को मिलेगा और इतनी जल्दी मिलेगा, जितनी झाड़ू लगाने से सफाई, जितना दिया जलाने से प्रकाश। इस लोक में हमारा मन जो काम करेगा, उसका फल भी तुरत मिलेगा, यही हाल हमारे मस्तक के काम का होगा। इहलोक में विचार काम आयेगा, वह खोज में लगेगा। आँख, कान, नाक आदि से वह देखने, सुनने, सूंघने का ही काम लेगा, उनमें से कुछ निकालेगा। उनसे इहलोक की हमारी जिन्दगी सुधारेगा, उठायेगा और चमकायेगा। अपने दूसरे साथियों की सेवा करने का वल देगा।

परलोक के रास्ते पर चलकर विचार की वहुत कम जरूरत

रह जायगी, शायद बिलकुल न रह जाय। वहाँ जिस चीज की जरूरत है, वह है विश्वास, वह है अनुगामीपन यानी किसीके पीछे-पीछे चलना या ज्यादा-से-ज्यादा उँगली पकड़कर चलना। वह भी ऐसे आदमी के पीछे और ऐसे आदमी की उँगली पकड़-कर, जो न दिखाई देगा, न जिसके पाँव की आहट सुनाई देगी, न जिसका उँगली का हाथ में होने का हमें तनिक भी भान होगा।

इस लोक के रास्ते चलकर हमारे बन्धु-बान्धव हमारे साथ होंगे, हमारी स्त्री हमारे साथ चल सकेगी, हमारे लड़के-लड़की हमारे काम आ सकेंगी। एक तरह से हमें यह भी पता रहेगा कि हम किसके लिए जी रहे हैं, क्यों जी रहे हैं?

परलोक के रास्ते चलकर हमें क्या करना पड़ेगा, यह हम पहले बता चुके। किसके लिए करना होगा, यह जानना बाकी है। कहते हैं, परलोक के रास्ते चलकर हम उन सबकी भलाई कर सकेंगे, जो कभी हमारे कुटुम्ब के—हमारे कुल के रहे हैं या उनके सहायक रहे हैं। यानी हम उनकी मदद कर सकेंगे, जो मरकर भूत या प्रेत बन गये हैं। हम उनमें ऐसे जा मिलेंगे, जिस तरह आजकल हम दूकान से लौटकर घर पर अपने बाल-बच्चों से आ मिलते हैं। इसी परलोक के जीवन के बारे में यह भी विश्वास दिलाया जाता है कि जब हम परलोक में पहुँचेंगे, तो हमारे वे कसूर माफ कर दिये जायँगे, जो हमने अब किये हैं या कभी भी किये हैं; क्योंकि वहाँ हमारे कुल के बहुत आदमी पहले से मौजूद होंगे, वे हमारी सिफारिश जरूर करेंगे। जो बात परलोक के बारे में कही गयी है, वह कुछ अंश में इस लोक में

जरूर मिलती है, जैसे इस लोक में जो ब्रह्मचर्य या संयम पालता है, वह उतना ही रति का आनन्द ले सकता है, या जो जितना लम्वा उपवास करता है, उतना ही भोजन का स्वाद पा सकता है। वैसे ही इस लोक के संयम के वदले परलोक में हमें खूव असंयम से रहकर सुखी रहने को मिलेगा।

इस लोक में हर वात किताव के पन्नों की तरह खुली मिलेगी। परलोक का जीवन विताने में हर वात मुट्ठी में वंद किसी चीज की तरह होगी यानी हमें यह नहीं वताया जायगा कि मुट्ठी में क्या है?

इस लोक का जीवन विताने में हमें अधिकार हासिल होगा कि हम अपनी बुद्धि का दिया जलता रखें, उसकी रोशनी में आगे वढ़ें और ठोकर खाने से वचते हुए अपना रास्ता आसान वना लें। परलोक के रास्ते में बुद्धि का दिया बुझाकर चलना होगा, क्योंकि वहाँ उँगली पकड़कर चलना है और उँगली पकड़-कर चलने में आँखें वन्द कर चलने में ही सुभीता होता है। कहा जाता है, उस रास्ते में जो रुकावटें हैं, वे इस किस्म की हैं कि वहुत वड़ी मालूम होती हैं, पर जिसकी उँगली पकड़कर हम चलेंगे, उसके लिए वह कुछ भी नहीं। इसलिए उस रास्ते में आँखें वन्द कर लेने से हम उस डर से वच जायँगे, जो हमें उन आफतों के देखने से होता।

इस लोक का रास्ता सुगम है, ईमानदारी का और अपने मन की वात को साफ-साफ दूसरों के सामने रख देने का है। ईमानदारी के वल पर खड़े होकर आँख उठाकर चलने का है,

निडर रहने का और नरक की तरफ से एकदम बेपरवाह रहने का है। परलोक का रास्ता हमें जो बता दिया गया है, उसे मानकर चलने का है और अगर समझ में न आये, तो उस पर कोई अश्रद्धा न करने का है। अगर कोई हमसे पूछे, तुम्हें इस रास्ते चलकर क्या फायदा हो रहा है, तो ईमानदारी फेंककर, सचाई ठुकराकर कह देना कि इस रास्ते चलकर बड़ा आनंद आता है।

इस लोक के रास्ते और परलोक के रास्ते लोग हमेशा से जाते-आते रहे हैं और जाते-आते रहेंगे। परलोक के रास्ते जाने-वालों को बुरा-भला कहने से हमें कोई फायदा न होगा। दोनों रास्ते जानेवालों को बुरा-भला कहने से हमें कोई फायदा न होगा। दोनों रास्ते हरएक के सामने हैं। जो जिसे भला लगे, वह उस रास्ते को चुन ले।

इस लोक के रास्ते में सचाई, ईमानदारी, प्रेम, सन्तोष, स्वाभिमान, अपने पर भरोसा, शील, संयम, इन सबकी जरूरत है। इनके फल से हम सब वाकिफ हैं। हममें से हरएक यह जानता है कि समाज-व्यवस्था बनाये रखने के लिए ये सब बेहद जरूरी हैं। ये ही सब सुख-चैन देनेवाले हैं। जो लोग परलोक के रास्ते चलते हैं, वे ईमानदार और संयमी को बुरा कहने की हिम्मत नहीं कर सकते। वे जो कभी-कभी ऐसी बात कह बैठते हैं, जो ईमानदारी की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती, तो वे उसे ईमानदारी की बात नहीं बताते, क्योंकि उन्हें ईमानदारी इतनी ही पसन्द है, जितनी इस लोक के रास्ते चलनेवालों को।

परलोक का रास्ता, तपस्या का रास्ता है, त्याग का रास्ता है। अपने ढंग का तप और त्याग इस लोक के रास्ते पर चलनेवाले भी करते हैं, पर उनका तप, त्याग परलोक के रास्ते वहुत कम कपड़े पहनकर, या विलकुल नंगे रहकर जाड़ा, गर्मी, वरसात सहना, वड़ी तपस्या मानी जाती है। उनकी नजरों में एक माँ का महीनों अपने वच्चे के खातिर जागना, उसे सूखे में सुलाकर खुद गीले में सोना, उसकी भूख मिटाने के लिए खुद भूखे रहना, उसकी प्यास बुझाने के लिए प्यास से सूखे अपने होठों को पानी की एक बूँद से भी तर न करना कोई तपस्या नहीं, क्योंकि माँ जो तकलीफ सहती है, वह मोहवश सहती है और वह मोह एक प्राणी से है। परलोक के रास्ते पर चलनेवाले जो तपस्या करते हैं, उनका मोह स्वर्ग से भले ही हो, पर स्वर्ग तो प्राणरहित चीज है। इसलिए उनकी तपस्या हर तरह उस तपस्या से वड़ी है, जो इस लोक के रास्ते पर चलकर करते हैं।

परलोक के रास्ते पर चलनेवाले यह खूब समझते हैं कि इच्छाओं का रोकना वड़ा भारी तप है, पर काया को क्लेश देना वे इससे भी भारी तप मानते हैं। वे यह भी समझते हैं कि ममता ही परिग्रह है, पर वह घर में न रहकर जंगल में रहकर घर से ममता छूटी मानते हैं। फिर परलोक के रास्ते चलनेवाले इतना भी नहीं करते कि रास्ते के लिए वगल में तोषा रखें। "वगल में तोषा तो राह का भरोसा" यह कहावत इस लोक की राह चलनेवालों की है, परलोक की राह चलनेवालों की नहीं। उन्हें जहाँ तोषे की जरूरत हुई कि सीधे इहलोक में

आ पहुँचे और जैसे तोषे का काम पूरा हुआ, परलोक की राह जा लगे।

परलोक की राह इहलोक की राह से कम पुरानी नहीं। हाँ, परलोक की राह चलनेवालों की गिनती हमेशा इहलोक की राह चलनेवालों से कम रही और संभव है, आज भी कम हो।

परलोक की राह जब इतनी पुरानी है, तब ऐसी चीज़ नहीं, जो हँसी-खेल में उड़ा दी जाय। उस रास्ते चलकर कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ फायदा समाज को जरूर पहुँचा होगा। वह फायदा कितना पहुँचा? क्या अब भी पहुँचता और पहुँच सकता है? इस पर एक नजर डालने की जरूरत है।

समाज की बचपन की धारणाएँ

इतिहास के जानकारों को अच्छी तरह मालूम है कि मनुष्य-समाज अपने बालकपन में जिस चीज को दुःखदायी या सुखदायी देखता और जिसके दुःख से बचना अपनी शक्ति से बाहर समझता, उसे 'देवता' कह बैठता था। उस समय हमारे बाप-दादों ने अपनी समझ में उस दुःख से छुट्टी पाने में कोई कसर न रखी।

वे मजबूर थे कि इस बात को चुपचाप दलील किये बिना मान लें कि इस लोक से परे एक लोक और है और वही परलोक है। उनका सारा सुख-दुःख उसी परलोक और उसी परलोकवालों के हाथ में है। आज की दुनिया में अनेक जगह ऐसी हैं, जहाँ के रहनेवाले अपनी खेती के लिए मेह के पानी पर भरोसा कर सकते हैं। अगर मेह न बरसे, तो वे परलोकवालों पर न बिगड़ें,

तो क्या करें और अगर ठीक-ठीक वरस जाय, तो उन परलोक-वालों से खुश न होकर क्या वे कृतघ्न वनें ? या अगर वहुत वारिश से उनकी खेती खराव हो जाय, तो क्या वे परलोकवालों को मूरख भी न कहें ? इसी तरह हमारे वाप-दाओं ने परलोक से इतना गाढ़ा रिश्ता जोड़ लिया था। दिखाई न देने पर और हर तरह समझ से परे रहने पर भी वह परलोकवालों को ऐसे ही घर के आदमी वना वैठे, जैसे जीते-जागते अपने भाई-वन्दों को। वे मरे आदमी को आज की तरह मरा नहीं समझते थे। इतना ही समझते थे कि उसने एक लम्वी नींद ले ली है और उसी लम्वी नींद का मुहावरा आज तक मौत के मानों में चला आ रहा है। वे मुर्दे के साथ काफी खाना रखकर उसे धरती माता के सुपुर्द कर देते थे। जव मुर्दों के साथ उनका यह हाल था, तव भूत-पितरों को और परलोकवासियों को, जिन्हें वे अपने घर का आदमी मानते थे, कैसे भूखा रख सकते थे ? इस अपनेपन की वजह से वे परलोकवासियों से खुश हो लेते थे, नाराज हो लेते थे, रूठ जाते थे, उन्हें भला-वुरा कह लेते थे। अपनी समझ से उन्होंने जो कुछ किया, वहुत ठीक किया।

उन्होंने अपनी आँखों आग को अपनी लपट ऊपर फेंकते देखा, धुआँ दूर तक उड़ाते देखा। और आग उनकी इस लोक की देवता भी थी। उन्होंने यह देखा कि पानी ऊपर से आता है। धूप-चाँदनी ऊपर से आती है, विजली ऊपर चमकती है, गड़गड़ाहट ऊपर होती है, सुख-दुःख के सभी साधन ऊपर से आते

हैं। अब यह उनकी कितनी ऊँचे दर्जे की सूझ थी कि उन्होंने परलोकवासियों तक खाना पहुँचाने का काम अग्नि देवता से लिया। अब जब यह रास्ता खुल गया और अग्नि देवता के मार्फत परलोक को खाने की पार्सलें जाने लगीं, तो छोटे-बड़े पैमाने पर यज्ञ शुरू हो गये और वे आज तक जारी हैं। प्रार्थनाएँ इसी क्रिया का एक हिस्सा है। व्रत रखना, उपवास रखना, यहाँ तक कि बाकायदा रोना-पीटना यज्ञ का ही अंग है। आदमी यह कभी नहीं मानता था कि परलोकवासी हैं ही नहीं। वह तो ऊपर आसमान में ऐसी बस्तियाँ मानता था, जैसे इस लोक में उनकी अपनी थीं। वह जो इस लोकवासियों के लिए करता, वही परलोकवासियों के लिए। यहाँ के वैद्य से वह अपनी बीमारी दूर करा सकता था, तो परलोक के वैद्य से लम्बी उम्र माँगता था। वह यहाँ के बेटी-बेटों से या अपने माँ-बाप से मामूली सुख चाहता, तो परलोक के रिश्तेदारों से अनंत सुख की माँग करता।

कुछ दिनों बाद उसकी समझ में यह आया कि जिस तरह इस लोक का राजा है, उसी तरह उस लोक का राजा होना चाहिए और वह राजा फिर ऐसा ही बना, जैसा इस देश का था। यानी पूरा आजाद, जो जी चाहे कर सके, क्योंकि उन्हें ऐसे राजा की जरूरत थी। आदमी ने उन दिनों यह कभी नहीं सोचा कि मैं यह परलोक बनाकर या परलोक का एक राजा खड़ा कर ऐसा काम कर रहा हूँ, जैसे कोई खरगोश कल्पना का एक शेर बना बैठे और अपने-आपको उसके दोनों पंजों में फँसाकर अपनी पीठ

उसके मुँह में दे दे। पर आदमी कर ऐसा ही बैठा, और वह इसके सिवा कर भी क्या सकता था? जैसे वह अपने राजा का डर मानता था, वैसे ही परलोक के राजा से डरने लगा।

कुछ समय बाद उसकी समझ में यह भी आया कि परमात्मा बुराई नहीं कर सकता, किसीको दुःख नहीं दे सकता, पर दुःख तो उसे मिलता था, इसलिए उसने शैतान या दानवों की कल्पना कर ली और अब वह शैतान और दानव को बुरा समझने लगा और ईश्वर को भला। वह डरता दोनों से था। शैतान की पूजा वह इसलिए करता था कि वह उसे इस लोक में दुःख न पहुँचाये और ईश्वर की पूजा इसलिए कि परलोक में पहुँचकर वह उसका कृपापात्र बन सके। यह भी मानता था कि जितने देवी-देवता हैं या जितनी प्रकृति की ताकतें हैं, वे समान रूप से ईश्वर और शैतान के तावे हैं।

सूरज उसे धूप देता था, चन्द्रमा चाँदनी। दोनों उसके काम के थे, दोनों उसके देवता बन गये। चाँद के पन्द्रह दिन छोटे होने और पन्द्रह दिन बड़े होने को तो उसने किसी तरह सह लिया। पर अचानक पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण पड़ने से वह घबरा उठा और ऐसे ही रोने लगा, मानो उसका कोई अपना आदमी मर रहा हो। तब उसने उसी तरह दान-पुण्य किया, जैसे अपनों के लिए करता। थोड़ी देरमें चन्द्रमा ग्रहण से निकल गया और उसने यही समझा कि यह सब उसके दान-पुण्य का प्रभाव है। यही हाल उसका सूरज ग्रहण के समय हुआ। आँधी, तूफान और ऐसी ही आफतों के बारे में वह इसी

तरह के फैसले करता था। जितनी उसकी वुद्धि थी और जितनी उसकी जानकारी थी, उस बुद्धि और जानकारी के वल पर वह वहुत ठीक और वहुत अच्छा फैसला करता था।

विचार ने दिशा वदल दी

हमारे जिन पूर्वजों ने ऊपर वतायी मान्यताओं को मान दे रखा था, उन्हींमें से कुछ लोगों ने आँख खोलकर देखना शुरू किया। उनके मन को यह वात ज्यादा अच्छी नहीं जँची कि विना समझे यों ही किसी वात को मान लिया जाय और फिर उससे डरा जाय। उन्हींमें से कुछ सूरज, चन्द्रमा और नक्षत्रों को वड़े ध्यान से देखने लगे। जिस दिन उन्हें यह पता लगा कि इन सवकी चाल में कोई क्रम, कोई ढंग, कोई तरीका है, उस दिन से वे उसके पीछे लग गये और जल्दी ही उन्होंने यह पता लगा लिया कि ग्रहण कव और कैसे पड़ता है। जव उन्होंने पहले से चन्द्रग्रहण की वात वता दी, तव उनके साथी उन्हींको जादूगर मानने लगे। कुछ दिनों में ऐसा हुआ, चन्द्रग्रहण की वात वहुत लोग जान गये और धीरे-धीरे हमारे वाप-दादाओं ने यह तय किया कि चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा को न कोई देवता खाता और न उगलता है, यह सिर्फ पृथ्वी की परछाईं है, जो चन्द्रमा पर उस समय पड़ती है, जव सूरज, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सीध में होते हैं। उन्हीं लोगों ने यह वताया कि सूरजग्रहण उस वक्त पड़ता है, जव पृथ्वी और सूरज के वीच में चन्द्रमा होता है और तीनों एक सीध में होते हैं।

नये और पुराने विचारों की खींचातानी

आज के लिहाज से मनुष्य-समाज के काफी बालकपन में नक्षत्रों का ज्योतिष पूरी तरह तैयार हो गया था और उसकी जानकारी दसियों को नहीं, सैकड़ों को थी। नक्षत्रों के बल पर दिन के घंटे, घड़ी बताना, महीना और तिथियाँ तय करना इससे भी पुरानी बात है।

जैसे-जैसे आदमी आँख खोलकर देखने लगा और स्वतंत्र रीति से विचार करने लगा, वैसे-वैसे उसकी पुरानी मान्यताओं को धक्का पहुँचता रहा; पर हुआ यह कि मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा उन्हीं मान्यताओं में पहले की तरह ज्यों-का-त्यों फँसा रहा। इसमें कारण हुए वे पंडित और पुजारी, जिन्होंने पुरानी मान्यताओं के बल पर पूजा-पाठ को ही अपना रोजगार बना लिया।

बीच का समाज, जो थोड़ा आजाद था और हर तरह अपने ऊपर निर्भर था, वह नये सोचनेवालों का साथी बन बैठता था और समाज के नीचे का वह हिस्सा, जो अपने हर काम के लिए दूसरों पर निर्भर था, वह पुराने पंडितों और पुजारियों का भक्त बना रहता और पुरानी मान्यताओं को जीवित रखता था।

मनुष्य-समाज का ऐसा कभी कोई समय नहीं रहा, जिसमें पूरी तरह पुरातनवादियों का जोर रहा हो, हमेशा सुधारक होते रहे। सुधारकों का इसके सिवा कोई काम न था कि वह समाज के सदस्यों को आजादी से विचार करने की तालीम दें। अपनी आँखों से देखना और अपने कानों से सुनना सिखायें। अपने-

आप प्रकृति का निरीक्षण करना जानें। ये सुधारक वे लोग थे, जो समय-समय पर ऐसी पाठशालाएँ खोलते रहे, जिनमें ऐसी तालीम दी जाती थी, जिसमें मान्यताओं पर कम-से-कम जोर दिया जाता था और बुद्धि पर ज्यादा-से-ज्यादा।

सुधारक और उनकी चाह

जिस तरह पुरातनवादी हमारे बाप-दादा थे, उसी तरह सुधारक भी हमारे बाप-दादा थे। हम कद्र दोनों की करेंगे, क्योंकि दोनों की मेहनत से हम आज कुछ बने हैं। पर मान्यता हम उन सुधारकों को देंगे, जो हमें आज़ादी से विचार करने का उत्साह देते हैं। एक तरह सुधारक न अपनी पूजा चाहते हैं और न अपने ग्रन्थों की, वे तो इसी बात में खुश हैं कि वह हमें इसी युग में इसी तरह आजादी से विचार करते हुए देखें, जिस तरह वे अपने युग में खुद आजादी से विचार करते थे। वे इसीमें अपनी खुशी समझेंगे कि हम पुरातनवादियों का मुकाबला करें, जिस तरह वे अपने युग में निर्भीक हो खेलकर पुरातनवादियों का मुकाबला करते थे।

हर सुधारक, फिर चाहे वह हजारों वर्ष पुराना, सैकड़ों वर्ष पुराना हो, कल का हो या आज का हो, यही चाहता है कि मनुष्य-समाज का हर आदमी सत्य का पुजारी बने और उसी तरह सत्य का शोध करे। वह उसी तरह सत्य के खातिर जोखम उठाने को तैयार रहे, जिस तरह हर सुधारक अपने-अपने समय में सत्य की पूजा करता रहा है और हर तरह जोखम उठाने के लिए तैयार हो रहा है। उसी सुधारक

का यह उपदेश है कि दो तरह के मार्ग में से इस लोक का मार्ग ऐसा मार्ग है, जिस पर चलकर विना किसी दिक्कत के परलोक के मार्ग की वतायी वातें ऐसी ग्रासानी से समझ में ग्रा जायँगी, जिस तरह इस लोक की वातें।

विज्ञान की गति

जिस विज्ञान ने इस घर ग्रौर पर घर का भेद मिटा दिया, इस मोहल्ले ग्रौर पर मोहल्ले का भेद मिटा दिया, इस गाँव ग्रौर पर गाँव का भेद मिटा दिया, इस देश ग्रौर परदेश का भेद मिटा दिया ग्रौर जो ग्राज इस ग्रह ग्रौर परग्रह का भेद मिटाने पर तुला है, वह इस लोक ग्रौर परलोक का भेद मिटाकर रहेगा। विज्ञान जिस तेजी से ग्रागे वढ़ रहा है ग्रौर जिस तेजी से ग्रन्ध-विश्वासों ग्रौर मिथ्या विश्वासों को ढाता जा रहा है, उससे यह ग्राशा की जा सकती है कि वह हमें सत्य की ग्रसलियत तक पहुँचा देगा। विज्ञान सत्य ही सोचता, सत्य ही वोलता ग्रौर सत्य ही करता है। यह ठीक है कि वह सत्य की ग्रसलियत नहीं जान पाया ग्रौर सत्य की ग्रसलियत माने पूर्ण सत्य। पूर्ण सत्य को हम क्या, सभी ने ग्रादर्श मान रखा है ग्रौर ग्रादर्श तक ग्रादमी कभी पहुँच सकेगा, यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए सत्य की खोज हमेशा जारी रहेगी। विज्ञान में यही खास वात है कि वह धर्म की तरह किसी चीज को पकड़कर नहीं वैठ जाता। पकड़कर वैठना सत्य के खिलाफ है। जव पूर्ण सत्य किसीके पास नहीं, तव किसी भी चीज को कैसे पकड़कर वैठा जा सकता है। सीढ़ी का हर

डंडा अपने-आप में सत्य है, पर जो भी आदमी सीढ़ी पर चढ़ता है, वह एक डंडा छोड़कर चढ़ता है। इसलिए एक समय का सत्य दूसरे समय में छोड़ना ही पड़ेगा, तभी बढ़ा जा सकेगा।

अन्ध-विश्वास मिटने का युग

आज ऐसे आदमियों की तादाद कम नहीं, जिन्होंने देवताओं के होने में सन्देह करना शुरू कर दिया है। कम-से-कम इतना तो मानने ही लगे हैं कि आदमी के किसी काम में उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। फलित ज्योतिष कितना ही क्यों न फैल रहा हो, पर समझदारों में वह जितनी तमाशे की चीज है, उतनी विश्वास की नहीं। गणित ज्योतिष तरक्की पर है और वह तो विज्ञान का अंग है। आज दुनिया की कोई चीज ऐसी नहीं रह गयी, जिसके बारे में विज्ञानियों ने कार्यकारण को नहीं खोज निकाला, फिर चाहे वह इस दुनिया की हो या उन दुनियाओं की, जिन तक हमारी सीधी पहुँच नहीं है, यंत्रों के द्वारा पहुँच है। इस बात ने आदमी के पुराने विश्वासों को इस बुरी तरह झकझोरा है कि वह हमें बिलकुल बेतुके मालूम होने लगे हैं। इसी वास्ते उन विश्वासों ने डरकर हमारे काम में दखल देना बन्द कर दिया है।

दिनोदिन आज जो स्कूल खुल रहे हैं, उनमें जो तालीम दी जाती है, वह और दृष्टि से कितनी ही बुरी क्यों न हो, इस दृष्टि से बड़ी अच्छी है कि वह हमारे बालकों में 'क्या, क्यों और कैसे ?' की चेतना जगा देती है। परलोक में विश्वास घटाने का काम ये स्कूल बड़ी तेजी से कर रहे हैं। पर साथ ही वे परलोक

को अपने यंत्रों के जरिये जानने की कोशिश में लगने की जोर से प्रेरणा दे रहे हैं। अब मिथ्या-विश्वास और अन्ध-विश्वास की बात खतम होती जा रही है और उसीमें से प्रकृति की सच्ची जानकारी का सूरज उदय होने को है। उसके उदय होने पर आजादी की हवा लगी कि आदमी ने अपनी ताकत को पहचाना और सचाई की खोज में लगा।

अब वह समय लद गया, जब किसी स्वतंत्र विचारक को नास्तिक कहकर इने-गिने धर्म के पुजारी उसे आफत में डाल देते और बस चले, तो उसे फाँसी पर लटकवा देते। आज का समय स्वतंत्र विचारकों पर देशों को अभिमान करने का है। आज वह कुल की शान हैं, उनकी जगह-जगह कदर होती है। अब वह दिन दूर नहीं, जब सब जगह अंध-विश्वास और मिथ्या-विश्वास उसी तरह तड़पता मिलेगा, जिस तरह कभी सत्य-विश्वास आफत में पड़ा मिलता था।

तृष्णानाश अपने लिए, समाज के लिए नहीं

आज की दुनिया ऐसे आदमियों को जन्म दे चुकी है, जो यह साबित करके दिखा गये हैं कि इच्छाओं का कम करना, तृष्णा का नाश करना सिर्फ अपने लिए है। उससे आदमी में दुगुनी और चौगुनी काम करने की ताकत आनी चाहिए। आदमी अपने स्वार्थों को कम करके अपने कुटुम्ब को पालता है। माँ अपनी इच्छाओं को कम करके और तृष्णा को घटाकर अपने लिए कष्ट झेलती है। फिर वह आदमी अपनी इच्छाओं को मारने-वाला और तृष्णा को घटानेवाला कैसे समझा जा सकता है, जो

समाज का सारा काम छोड़कर पहाड़ की गुफा में तपस्या करने के लिए भाग जाता है? वह तो स्वर्ग और मोक्ष की तृष्णा में इतनी बुरी तरह फँसा है कि उसे दूसरी तरफ आँख उठाने की फुरसत नहीं। नार्वे का 'नोवेल' नामक धनी न शादी करता है और न किसी और झंझट में फँसता है और करोड़ों रुपये की संपत्ति वह मनुष्य-समाज के लिए—किसी एक देश और कुल के लिए नहीं—इसलिए छोड़ जाता है कि उससे सत्य के खोजियों की मदद हो, जिससे वे निश्चिन्त होकर अपने काम में लग सकें। स्वार्थी वह समझा जायगा, जो *"ना घर मेरा ना घर तेरा"* या *"जग में कोई नहीं अपना"* यह कहकर कोने में बैठ जाता है, या वह समझा जायगा, जो *"सारी दुनिया में मेरा कुटुम्ब है"* यह कहकर काम में लग जाता है? कोई भले ही अच्छे कपड़े न पहने, एक पैसा न रखे, बुरे से बुरा खाना खाये और चाहे नंगा रहे, पर जब वह दुनिया से अलग रहकर दुनिया के लिए कुछ नहीं करता, तब वह किसी समय भले ही लोगों से पूजा पाता रहा हो, आज वह पूजा पाने की आशा न रखे। पशु-पक्षियों से आज भी कोई नंगे रहने, भूखे मरने या और इसी तरह की प्रतिज्ञा ले बैठे, तो उससे पशु-पक्षी-समाज को कोई नुकसान नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें हरएक अपने पैर पर खड़ा रहना जानता है। पर अगर मनुष्य-समाज में कोई ऐसा कर बैठे, तो वह मनुष्य-समाज को बहुत नुकसान पहुँचायेगा। अगर ऐसों की तादाद बढ़ने लगी, तो समाज सरकार की मदद से ऐसे आदमियों को वैसा काम करने से रोकने का हकदार है।

काय-क्लेश भी गुनाह

आज का आदमी अच्छी तरह समझ गया है कि देह को, जो आदमी का घोड़ा है, तकलीफ देना गुनाह है। वह ऐसा घोड़ा है, जो खाने-पहनने की सब चीजें ऐसे ही अपने-आप जुटा लेता है, जिस तरह हाथी अपना चारा अपने-आप तोड़कर अपनी ही पीठ पर लादकर ले आता है। आज तपस्या का नाम काय-क्लेश हो गया, तपस्वी तमाशे की चीज बन गये हैं, हठी तपस्वी मुडचिरों का नाम पाते हैं। अब आदमी ने अच्छी तरह समझ लिया है कि तकलीफ में रहकर न वह इस लोक की सोच सकता है और न परलोक की, न वह अपने भले की सोच सकता है, न दूसरे के भले की और अच्छे विचार तो वह किसी तरह कर ही नहीं सकता। जो भी अपने तन पर कष्ट झेलता है, वह कुछ पाना जरूर चाहता है। जब वह चीज उसके हाथ नहीं आती, तो तन के कष्ट के साथ-साथ उसके मन का कष्ट बढ़ने लगता है, फिर आत्मा कष्ट न माने, यह हो ही नहीं सकता। असल में तन का कष्ट आत्मा झेल लेता है, क्योंकि मन उस कष्ट का बोझ आत्मा पर नहीं पड़ने देता, पर मन का कष्ट आत्मा का कष्ट है, उससे वह कैसे बच सकता है? आज के विज्ञान और शोध ने आदमी को यह सिखाया कि तन को मुनासिब यानी काफी सुख दिया जाय, तभी वह ठीक-ठीक सोच-विचार कर सकता है, अपना और दूसरों का भला कर सकता है, और अगर सचमुच परलोक जैसी कोई चीज है, तो उसको भी अपनी मेहनत से जान सकता है। इसका नतीजा यह हुआ कि आज उसने मनुष्य-समाज की बहुत

तकलीफों को दूर कर दिया और जो बची है, उसके दूर करने में लगा है।

धर्म-विश्वासियों से ही विज्ञान का दुरुपयोग

जिनके मन से अभी परलोक का विश्वास नहीं हट पाया है, जो अभी तक दान-पुण्य में विश्वास रखते हैं और पूजा-पाठ को भला काम समझते हैं और रासलीलाओं से धर्म का उद्धार मानते हैं, वे ही उन आदमियों की उन खोजों का दुरुपयोग कर रहे हैं, जो आदमी के कष्ट दूर करने के लिए सोची गयी थीं, न कि आदमी को ऐयाश बनाने के लिए। घर में सबके लिए बना हुआ हलवा अगर एक आदमी यह कहकर खा जाय कि उसने नमक छोड़ रखा है और फिर वह बीमार पड़ जाय, तो इसमें हलवा बनानेवाले का क्या दोष ? ठीक इसी तरह आज के वैज्ञानिकों की खोज का कोई दुरुपयोग कर बैठे, तो इसमें वैज्ञानिकों का क्या कसूर ? आज के नये हथियारों का जो मनुष्य संहार के लिए उपयोग कर रहे हैं, वे सबके सब अपने धार्मिक होने की डींग हाँकते हैं। धर्म का विश्वास ऐसा कराये बगैर नहीं रह सकता, क्योंकि हर धर्म अपने अलग देवता रखता है और वह देवता दूसरे के किसी देवता से मिलते-जुलते नहीं होते। सबके सब देवता अपने भक्तों से कुछ ऐसी आशा रखते हैं, जिनके पूरा कराने में एक धर्म और एक समाज को दूसरे धर्म और दूसरे समाज से टकराना पड़ता है। इसलिए आज की विज्ञान की सच्चाइयों का इन धर्म-विश्वासियों की वजह से दुरुपयोग हो जाता है और विज्ञान बदनाम हो जाता है।

विज्ञान मानव का मित्र, कुतर्क का शत्रु

आज का आदमी विज्ञान की मशाल लिये सत्य की खोज में लगा है। कोई आदमी जव खोज में लगता है, तो कष्ट के लिए तैयार रहता है, कष्ट झेलता है और जितना कष्ट झेलने के लिए तैयार मिलेगा, उसके प्रेम का उतना ही वड़ा दायरा मिलेगा। जव वह प्रेम में पड़कर और कष्ट झेलकर सत्य की खोज में लगता है, तव इसके सिवा क्या चाहेगा कि वह उन्हें सुखी वनाये, जिन्हें वह प्रेम करता है। अतः वैज्ञानिक सिर्फ इसलिए खोज में लगे हुए हैं कि वे आदमी को किस तरह पूरा सुखी वना दें। वैज्ञानिक यह नहीं मानते कि सूरजग्रहण और चन्द्रग्रहण के माने हैं कि कोई उन्हें निगल गया और वह उन्हें इसलिए निगल गया कि आदमी ने अपने देवताओं की पूजा नहीं की। आज का वैज्ञानिक यह नहीं मानता कि भूकम्प इसलिए आ गया कि दुनिया के आदमी झूठ वोलने लगे थे, या कोई ज्वालामुखी इसलिए भड़क उठा कि उसके आसपास के लोग अत्याचार करने लगे थे। कोई इससे यह न समझे कि वैज्ञानिक झूठ और अत्याचार को अच्छा समझता है। नहीं, वह झूठ और अत्याचार को वहुत वुरा समझता है, पर वह तो इस कुतर्क को झूठ और अत्याचार मानता है कि आदमी के झूठ वोलने से भूकम्प आते और अत्याचारी होने से ज्वालामुखी भड़क उठते हैं।

वैज्ञानिक ने प्रकृति से परे की सव ताकतों के वारे में यह समझ लिया है कि वे आदमी का न कुछ विगाड़ सकती हैं और न वना सकती हैं। दुनिया में कभी किसी देवता का राज्य

न रहा, न आज है और न आदमी किसीका दास है। अगर आदमी किसीका दास है, तो वह है मिथ्या-विश्वासों, अन्ध-विश्वासों और अजानकारी का। उसी गुलामी से छुड़ाने का निश्चय आज के वैज्ञानिक कर बैठे हैं और उसे उस बन्धन से आजाद करके रहेंगे। पाठशालाएँ ही अब सत्येश्वर का मन्दिर हैं। परीक्षण-भवन ही यज्ञशाला है।

विज्ञान ने मानव को शक्ति दी

वैज्ञानिक ने उन दिनों का अन्त कर दिया, जब दुनिया यह समझती थी कि राजा में ईश्वर का अंश रहता है यानी वह अंशावतार है—वह इसलिए पैदा हुआ है कि ईश्वर का प्रतिनिधि बनकर वह ईश्वर की आज्ञा का पालन करे। वैज्ञानिकों ने अपनी मेहनत से आज यह दिन ला दिया कि दुनिया यह समझ ले कि राजा जनता का अवतार है और वह भी अंशावतार। जिस तरह पहले प्रजा को दुःखी बनाने पर ईश्वर राजा को बीमार डाल देता था या यमदूत भेजकर अपने यहाँ बुला लेता था, वैसे ही आज जनता राजा को यह देखकर कि वह अपना काम ठीकसे नहीं कर रहा है, गद्दी से उतार देती है, जरूरत हुई, तो जेलखाने भेज देती है और अगर उसने अत्याचार किये हों, तो फाँसी के तख्ते पर चढ़ा देती हैं। जब इतनी बड़ी ताकत, जो कभी ईश्वर के हाथ में थी, वैज्ञानिकों ने जनता के हाथ सौंप दी, तो फिर उनसे किस बात की आशा नहीं की जा सकती? पर उनके रास्ते में मिथ्या-विश्वास और अन्ध-विश्वास बड़ी भारी रुकावटें हैं। इस रुकावट के दूर करने में जनता जितना

उनका हाथ बँटायेगी, उतनी ही वे एक से एक बढ़कर ताकत जनता के हाथ सौंपते जायँगे। और जल्दी या देर से वह दिन ला देंगे, जब दुनिया का कोई आदमी न भीख माँगता मिलेगा, न किसीकी गुलामी करता मिलेगा।

वह महँगा और यह सस्ता सौदा

इस लोक की राह चलकर आदमी ने जो सौ-दो सौ बरस में पाया है, परलोक की राह चलकर वह हजारों बरस में भी उसे न पा सकता और कहीं अन्ध-विश्वास और मिथ्या-विश्वास के नशे में चूर होकर सत्य-विश्वासियों को या सत्य के खोजियों को तलवार के घाट न उतारा होता, तो न जाने आज दुनिया कहाँ की कहाँ पहुँच गयी होती। जिस तरह आज पृथ्वी के लिए आकाश-काल मिट गये हैं, वैसे ही अब तक सौर-जगत् के कुछ भाग के लिए आकाश-काल मिट गये होते, पृथ्वी और मंगल आदि दूसरे ग्रहों के बीच आना-जाना शुरू हो गया होता।

आज अमेरिका जैसे वैज्ञानिक देश में जो कभी-कभी काले लोग जीते-जी जला दिये जाते हैं, यह वैज्ञानिकों का काम नहीं। यह उन अन्ध-विश्वासियों का काम है, जो यहूदियों की तरह या दूसरे और धर्म-विश्वासियों की तरह यह समझे बैठे हैं कि ईश्वर ने उन्हींको दुनिया पर राज्य करने के लिए बनाया है और काले-पीले-लाल लोग उनकी सेवा के लिए गढ़े गये हैं। ये परलोक की राह चलनेवाले ही हैं, जो दुनिया को बढ़ते नहीं देख सकते। मुश्किल यह है कि एक तरह की परलोक राहवाला दूसरी तरह

की परलोक राहवाले का जानी दुश्मन बन बैठता है और वैज्ञानिकों का दुश्मन तो वह पैदा होने के दिन से ही होता है।

इस लोक की राह अपनाकर देवता बनें

अब बताइये, परलोक का रास्ता किस तरह सबके लिए एक हो सकता है? और जब यह सबने अपनी आँखों देख लिया कि इस लोक का रास्ता एक है और वह सबके सुख-शान्ति की बात सोचता है, तब उसे अपनाने में आनाकानी क्यों? अब रही आपसी लड़ाई, वह उस दिन खतम हो जायगी, जिस दिन विज्ञान यह बता देगा कि आदमी को किसीने पैदा नहीं किया, वह खुद ही अपना जोर लगाकर दुःख से भरी पशु-पक्षी की योनि में से निकलता हुआ आदमी की योनि तक पहुँचा है। वह उसी दिन सुखी हो सकता है, जिस दिन वह अपने में से सारा पशुपन दूर कर लेगा।

परलोक के देवी-देवता आदमी की कल्पना की तसवीरें हैं। यह आदमी ही है, जो देवता बनने की कोशिश में है और एक दिन देवता बनकर रहेगा। इस लोक की राह अपनाइये और देवता बनिये।

• • •

: १० :

सत्य और धर्म

जब हम बारह बरस के थे, तब क्लास के लड़कों में सवाल खड़ा हुआ, कि 'धर्म क्या है?' सवाल उठानेवाला लड़का था आर्य-समाजी। 'धर्म क्या है?' इसका जवाब देनेवाला सबसे पहला लड़का था, सनातनी। उसने बताया, धर्म है, 'राम-नाम जपना'। उसके बाद दूसरे लड़के की बारी आयी। उसने कहा, धर्म है, 'राधा-कृष्ण की भक्ति'। एक लड़का बोल बैठा, धर्म है, 'हनुमान-गढ़ी रोज शाम को जाना'। हनुमान-गढ़ी अतरौली नगर के बाहर एक छोटा टीला है, उस पर हनुमानजी का मन्दिर बना है। वहीं एक साधु रहते थे। हनुमान-भक्त रोज वहाँ जाया करते थे। वह लड़का इन भक्तों में से किसी एक का था।

अब एक मुसलमान की बारी आयी। उसने कहा, धर्म है, 'कुरान का पढ़ना और मसजिद में पाँचों वक्त नमाज के लिए जाना'। एक ईसाई बोला, धर्म है, 'बाइबिल पढ़ना'। वह शायद इतवार को गिरजा-घर जाने की बात भी कहता, पर अतरौली में कोई गिरजा न था और शायद उसने अपनी उम्र में कोई गिरजा देखा भी न था।

अब हमारी बारी आयी। हम बड़े सिटपिटाये। न तो हमें

अपने किसी धर्म-ग्रन्थ का नाम याद था, न यही मानने को तैयार थे कि 'धर्म राम-नाम जपना है या राधा-कृष्ण जपना या किसी मन्दिर में जाना।' मन्दिर हम जरूर जाते थे, पर यह कहना हमें कुछ जँचा नहीं कि मन्दिर जाना धर्म है। हमें समय की सूझ गयी। हमने सवाल करनेवाले से कहा, 'धर्म क्या है' इसका जवाब देना मुश्किल है। हम सोच-समझकर कल जवाब देंगे।

वह लड़का बोला, ठीक है, तुम कल जवाब देना; पर मैं बताये देता हूँ कि धर्म है, 'सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ना, चारों वेदों को मानना।'

हमारा मन उस दिन स्कूल में बिलकुल न लगा। हम क्लास में सबसे ज्यादा होशियार थे। रेखागणित में, उन दिनों की युक्लिड में तो हम इतने होशियार थे कि हमारे मास्टरजी ने उस वषय का क्लास को सबक देने के लिए हमें मास्टर बना रखा था, पर हम 'धर्म क्या है ?' इसका जवाब न दे सके। ११ बजे छुट्टी होते ही हम जल्दी-से-जल्दी घर पहुँच गये और सबसे पहला सवाल हमने अपनी माँ से पूछा, 'धर्म क्या है ?'

स्कूल से आते ही खाना माँगने की बात सुनने की अभ्यासी माँ चौंककर बोलीं, 'यह आज तुझे खाना खाने से पहले धर्म की बात पूछने की क्यों जरूरत पड़ी ?'

हम जोश में थे। हार की शरम से खीझे थे। बोले, 'अम्मा' यह हम पीछे बतायेंगे, पहले तुम बताओ, धर्म क्या है ?'

माँ ने ताड़ लिया, मामला नाजुक है। बोलीं, 'धर्म है सच बोलना।'

हमें इस जवाव से तसल्ली और खुशी हुई, पर निराशा भी। हम तो समझ रहे थे कि हमें हमारी अम्मा कुरान, वाइविल, वेद, सत्यार्थ-प्रकाश जैसी कोई चीज धर्म के लक्षण में वतायेगी, पर उसने वताया 'धर्म है सच बोलना'। हम क्या करते? जो हमें वताया गया, उसे मान लिया। खाना खाने के वाद आज खेलकूद वन्द रहा। स्कूल का थोड़ा काम जरूर किया। स्कूल २ वजे पहुँचना चाहिए था, हम १-४५ वजे पहुँच गये। अभी तक क्लास के और लड़के न आये थे। क्लास में कुल नौ लड़के थे। थोड़ी देर में चार आ गये। पाँचवाँ था वही आर्यसमाजी लड़का। उसने आते ही पूछा, 'वताओ, धर्म क्या है?' हम वोले, 'सव लड़कों के आने पर वतायेंगे।' थोड़ी देर में वाकी तीन भी आ गये।

फिर हमने कहा, 'धर्म है, सच वोलना' यह सुनकर छहों लड़के हमारी तरफ हो गये और बोले, 'विलकुल ठीक।' पर आर्य-समाजी और मुसलमान लड़का, दोनों एक साथ वोल उठे, 'वाह, सच वोलना भी कोई धर्म है? यह तो रोज की वात है। यह वताओ, तुम किस किताव या किस वेद को मानते हो?' हमारे जवाव देने से पहले हमारी तरफ के सव लड़के वोले, 'धर्म से और किताव से क्या मतलव? धर्म से और काम से मतलव है। तुम दोनों वताओ, सच वोलना धर्म नहीं, तो क्या अधर्म है?' अव वे दोनों वड़े चक्कर में पड़े। और तो उन्हें कुछ सूझा नहीं; वोले, 'वेद सच्चा है और धर्म है।' मुसलमान लड़का वोला, 'कुरान सच्चा है और धर्म है।' हमारी तरफ से सव लड़के एकदम खिलखिलाकर हँस पड़े। वोले, 'सच्चा है, तभी तो धर्म है।'

दोनों लड़के यह जवाब सुनकर झेंप गये और चुप हो गये। मामला आया-गया हुआ।

धर्म सत्य और सत्य ही धर्म

बारह वर्ष की उम्र में बतायी हुई माँ की वह बात हमारे अन्दर जड़ पकड़ गयी और वह आज तक हमारे साथ है। सचमुच धर्म सत्य है और सत्य ही धर्म है। धर्म की इस सीधी-सादी परिभाषा में सब कुछ समा सकता है। ईश्वर को ढूँढना है, तो सत्य को अपनाये बिना वह हाथ आने का नहीं। सत्य के बिना किसी बात की खोज नहीं हो सकती। दुनिया में जितने वाद और धर्म दिखाई देते हैं, सब सत्य की फिकर में रहते हैं। जब किसीको जरा-सी सचाई का पता लग जाता है, तब उसे बड़ी खुशी होती है। उसे खुशी हुई कि लोगों ने उसका आदर करना शुरू किया।

आप बाजीगर का तमाशा देख रहे हैं। वह मुट्ठी में एक रुपया लेकर उसके दो बना देता है और फिर तीन-चार-पाँच बना देता है। इसे सब लोग कहते हैं जादू, और तमाशा करनेवाले को कहते हैं, बाजीगर या जादूगर। जो जरा होशियार हैं और समझदार हैं, वे जादू को कहते हैं 'हाथ की सफाई'। हाथ की सफाई उन्होंने इस वास्ते नाम दिया कि वे यह खूब समझ लेते हैं कि जादू जैसी कोई चीज नहीं और कोई ताकत ऐसी नहीं, जो एक रुपये के दो रुपये बना दे, जब तक कि एक रुपये जितनी चाँदी और बनाने के सारे साधन उसके पास न हों। उनसे भी ज्यादा और समझदार लोग हैं, जो बाजीगर की तरह एक रुपये के दो

रुपये बनाना जानते हैं और वे पूरे ईमानदार और सच्चे हैं, न किसीको धोखे में डालना चाहते हैं और न सचाई को बेढंगे कपड़े पहनाकर लोगों के लिए हँसी की चीज। वे साफ-साफ बता देते हैं कि बाजीगर किस तरह दूसरा रुपया छिपाकर रखता है और किस होशियारी और चालाकी से अपनी मुट्ठी में रख लेता है। इसलिए उसके लिए जादू और हाथ की सफाई सत्य नाम ले लेती हैं। अब सत्य के माने हो गये, किसी बात को ठीक-ठीक समझ लेना या किसी भेद की असलियत तक पहुँच जाना।

देववाद सचाई के सामने फीका

जब तक सत्य परदे में छिपा रहता है, तब तक उसके हाथ की सफाई, जादूगरी, करामात, चमत्कार, करिश्मा, भूत, प्रेत, देव और ईश्वर नाम रहते हैं और जब तक ये नाम रहते हैं, तब तक दुनिया धोखे में आ सकती है। बाजीगर सच का परदा हटाकर न तमाशा देखनेवालों का मन खुश कर सकता है, न अपने पेट के लिए पैसा कमा सकता है। यह देववाद बिलकुल कुछ लोगों की बाजीगरी या जादूगरी है। देववाद की तह में बैठे सत्य का पता चला और देवपूजा खतम हुई। देवपूजा खतम हुई कि देवपुजारी के भूखों मरने की नौबत आयी। बाजीगर की सचाई को अगर सब लोग जान लें, तो फिर उसका कौन तमाशा देखे और कौन पैसा दे ?

यह देववाद ऐसा वाद है, जिसे सचाई की जरा जरूरत नहीं। सचाई के सामने यह बिलकुल फीका पड़ जाता है और अपनी सारी चमक-दमक ऐसे खो बैठता है, जैसे सूरज के सामने

चन्द्रमा। देववाद में अपनी चमक-दमक नहीं है। सत्य से मानी हुई चमक ही दमक है। फिर वह सत्य के सामने कैसे टिक सकता है? इसलिए वह हमेशा अपने भक्तों से यही चाहता है कि वे सब कुछ खोजें, लेकिन कभी सत्य की खोज में न लगें।

और आज जिसको धर्म नाम दे रखा है, वह देववाद और उसीकी पूजा के क्रियाकांड के सिवा और है ही क्या? सत्य, अहिंसा आदि पाँच व्रतरूपी धर्म तो अब धर्म के नाम से पुकारा ही नहीं जाता। अब तो धर्म है, ईश्वरवाद, ब्रह्मवाद, देववाद, सर्वज्ञवाद, आप्तवाद या एक शब्द में अज्ञातवाद। जब धर्म और देववाद एक ही चीज है, तब इन अज्ञातवादी धार्मिकों से यह कैसे आशा की जा सकती है कि ये सच घटनाओं को जानने के लिए तैयार मिलेंगे? सच घटनाओं की जानकारी तो अज्ञात-वादी धर्म की चमक-दमक खतम कर देगी।

आज का धर्म वाद को बतानेवाला

धर्म के नाम पर खुले हुए स्कूल साफ कह रहे हैं कि उन्हें सचाई से कोई सरोकार नहीं, उन्हें तो अपने उस वाद से मतलब है, जिसके वे भक्त हैं और जिसका चमत्कार दिखाकर वे स्कूल के लिए पैसा इकट्ठा करते हैं। फिर धर्म के नाम पर कोई स्कूल खुला भी कहाँ है? अगर हम धर्म की परिभाषा वही मान लें, जो हमारी माँ ने हमें बतायी थी और जो हमारे गले उतरायी है, तो धर्म के नाम पर खुले स्कूल धार्मिक स्कूल नहीं रह जाते। हिन्दू युनिवर्सिटी और मुस्लिम युनिवर्सिटी, दोनों में से कोई इस बात के लिए तैयार नहीं हो सकती कि वह अपने को 'धर्म'-

युनिवर्सिटी' कहने लगे। 'थियो' के माने है धर्म। पर 'थियोसॉफी' एक अपने किस्म का अलग वाद है। थियोसॉफिकल कॉलेज़ ऐसा ही कॉलेज है, जैसे हिन्दू कॉलेज और इस्लामी कॉलेज।

आजकल का धर्म किसी वाद का बतानेवाला है। असल धर्म सत्य का दूसरा नाम है। यह बात पुरानी हो चली। इसलिए आज किसी धर्म के स्कूल में न सच्चा अध्यापक टिक सकता है, न सचाई की खोज की जा सकती है और न सचाई का पाठ दिया जा सकता है। हिन्दू और मुस्लिम युनिवर्सिटियों में विज्ञान पढ़ाया जाता है सही, पर वह तभी तक वहाँ है, जब तक वह उन मान्यताओं को नहीं छोड़ता, जो हिन्दू और इसलाम धर्म अपनाये हुए हैं। आज का धर्म यह नहीं चाहता कि कोई आदमी पूरी आजादी से विचार करे। आजादी से सचाई तक पहुँचना धर्म में अपराध माना गया है। वहाँ तो धर्म को गुणों में स्थान दिया गया है। धर्म में सत्यवादियों पर प्रहार करना बहादुरी मानी गयी है और असत्यवाद पर प्रहार करना कायरता।

सत्य पर 'सिद्धान्तों' का दखल

धर्म में सत्य की जगह सिद्धान्तों ने ले ली है। इसलिए सिद्धान्त-विरुद्ध हर बात असत्य ठहरा दी गयी है यानी धर्म ने सत्य का नाम असत्य और असत्य का नाम सत्य धर लिया है। अब जो धर्म-ग्रन्थों में लिखा हुआ है, वह कितना ही असत्य क्यों न हो, सत्य है। और धर्म-ग्रन्थों में लिखे सिद्धान्तों के विरुद्ध जो कुछ कहा जाय, वह कितना भी सत्य क्यों न हो, असत्य कहकर दुत्कार दिया जायगा और कहनेवाले को नास्तिक पदवी

दे दी जायगी। जिस तरह मेहतरों को गंदे काम करते-करते गंदी हवा में साँस लेने की आदत हो जाती है और उन्हें बुरा नहीं मालूम होता, वैसे ही आजकल धर्म के स्कूलों में मिथ्यात्व की हवा में साँस लेने की अध्यापकों को आदत हो गयी है। उनको पता ही नहीं लगता कि उस हवा से भी कोई तकलीफ हो सकती है। वे यह सोच ही नहीं सकते कि जो धर्म किसी वाद पर निर्भर है, वह कभी सच्चा नहीं हो सकता। अज्ञात चीजों के वारे में जो वात कही जायगी, वह आये दिन वदलती रहेगी। जो नयी वदली वात से इनकार करेगा, वह सत्य से इनकार करेगा। उसके वारे में यही कहा जा सकता है कि वह सत्य का खोजी नहीं है।

धर्म जव पंथ का रूप लेता है और वह रूप उसे लेना ही पड़ता है, तव वह सचाई से एकदम हट जाता है और कल्पनाओं में निवास करने लगता है। उन कल्पनाओं को ही वह सिद्धान्त नाम से पुकारता है, वही सिद्धान्त सच्चे मालूम होते हैं। उन्हीं अपने वनाये सिद्धान्तों से वह शासित होने लगता है। इस तरह सच्चे धर्म को असत्य धर्म में फँसाकर आदमी अपने लिए एक आफत खड़ी कर लेता है। धर्म ने जहाँ पंथ का रूप वना लिया, वहाँ वह तर्क और बुद्धि का दुश्मन वना और अन्ध-विश्वास का दोस्त वना। उस वक्त वह यह सोचना छोड़ देता है कि धर्म सत्य या सत्य की खोज के सिवा और कुछ है ही नहीं।

धर्म के पीछे चिप्पियाँ क्यों?

धर्म अनेक नाम लेकर खुले-खुले कह रहा है कि

धर्म नहीं रह गया। धर्म एक है और वह सत्य के सिवा और कुछ नहीं हो सकता, इस बात का इससे बढ़कर और क्या सबूत हो सकता है कि हर अनपढ़ और पढ़े-लिखे के मुंह से, फिर वह चाहे किसी धर्म का माननेवाला क्यों न हो, दूसरे धर्मवाले के लिए अगर वह सच बोले, सत्य व्यवहार करे, तो यह मुंह से निकल जाता है कि "आदमी है बड़ा धर्मात्मा"। एक धर्मवाला जब दूसरे धर्मवाले के लिए 'धर्मात्मा' शब्द का प्रयोग करता है, तो वह उसी वक्त करता है, जब दूसरे आदमी ने धर्म को सच्चे अर्थों में निभाया होता है। आज तक कभी किसी हिन्दू ने किसी मुसलमान को 'हिन्दू धर्मात्मा' कहकर नहीं पुकारा। किसी मुसलमान ने किसी हिन्दू को 'मुसलमान ईमानदार' कहकर नहीं पुकारा। जब 'ईमानदार' और 'धर्मात्मा' ऐसे शब्द हैं कि अपने पीछे हिन्दू और मुसलमान बला बरदाश्त नहीं कर सकते, तब धर्म अपने साथ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि चिप्पियों को कैसे बर्दाश्त कर सकता है ? जो भी धर्म के पहले हिन्दू, मुसलमान आदि शब्द जोड़ता है, वह धर्म का कुछ बुरा ही करता है, भला नहीं। सत्य, प्रेम, ब्रह्मचर्य आदि के पीछे कभी किसीने हिन्दू, मुसलमान शब्द नहीं जोड़े और न जुड़ सकते हैं। फिर धर्म, जो इन्हीं सत्य, अहिंसा, आदि का एक नाम है, इसके पीछे हिन्दू-मुसलमान कैसे ठीक हो सकते हैं ?

धर्म किसीसे टकराता नहीं

एक धर्म दूसरे धर्म से टकराकर यह साफ बता रहा है कि सब धर्म अपने साथ कोई अज्ञातवाद लेकर सचाई से दूर पड़

गये हैं और इसलिए आपस में टकराते हैं। धर्म प्रकाश की तरह स्वच्छ है। जिस तरह प्रकाश प्रकाश से नहीं टकराता, वैसे ही धर्म धर्म से नहीं टकरायेगा। दो ईमानदार आदमी कभी झगड़ा नहीं कर सकते। दो धर्मात्मा कभी नहीं लड़ेंगे। अगर हिन्दू और मुसलमान ईमानदार या धर्मात्मा होते, तो आपस में कभी न लड़ते। गुरु नानक और सन्त कबीर ने तो इन दोनों को बड़ी खरी-खरी सुनायी है और सचमुच ये दोनों ही क्या, सभी धर्म-वाले उसी तरह की खरी-खरी बातें सुनने के योग्य हैं।

अज्ञातवादी धर्म, फिर उसका नाम कुछ भी क्यों न हो, वह किसीको ईमानदार नहीं रहने दे सकता। इसके माने यह हर्गिज नहीं है कि किसी धर्म में ईमानदार आदमी हो ही नहीं सकते। ऐसा होता, तो दुनिया ईमानदारों से खाली हो गयी होती, क्योंकि हरएक आदमी किसी-न-किसी धर्म को जरूर अपनाये हुए है। और हरएक धर्म किसी-न-किसी अज्ञातवाद को अपनाये हुए है। हम तो यहाँ यह कहना चाहते हैं कि कोई अज्ञातवादी धर्म अपने अज्ञातवाद के बारे में कभी ईमानदार नहीं हो सकता। वह उस बारे में न कभी सच्चा हो सकता है और न अहिंसक। उस अज्ञातवाद की खातिर वह चोरी कर लेगा और जरूरत हो, तो जारी पर उतारू हो जायगा।

'धर्म खतरे में' सफेद झूठ

'धर्म खतरे में है' यह आवाज ऐसी ही झूठी है, जैसे कोई यह कहे कि 'प्रकाश अंधेरे में है'। धर्म पर कभी खतरा नहीं आ सकता, खतरे में अधर्म ही पड़ता है। धर्म का सम्बन्ध

आत्मा से है, मन से है। खतरे की वहाँ तक पहुँच ही नहीं है। कुछ स्वार्थी लोग जब 'धर्म खतरे में है' यह आवाज उठाते हैं, तब उनका यही मतलब होता है कि उनके दोस्तों का स्वार्थ खतरे में है। हिन्दू, मुसलमान आदि धर्म भी खतरे में पड़ सकते हैं, क्योंकि वह धर्म नहीं रह गये, पंथ बन गये हैं। जब पंथपना खतरे में हो, तब यह समझना चाहिए कि धर्म प्रकट होने को है। जब सन् १९४७ में हिन्दू-मुस्लिम पंथ लड़ रहे थे, तब जगह-जगह धर्म का प्रकाश हुआ था और दस-बीस या सौ-दो सौ की जान बची थी। जो ईमानदार आदमी हैं, वे 'धर्म खतरे में है' की आवाज से कभी नहीं भड़कते। भड़कते हैं सिर्फ वे लोग, जो देववाद या अज्ञातवाद को ही धर्म समझे हुए हैं।

अज्ञातवादी धर्म की बलाएँ

अज्ञातवादी धर्म के माननेवाले में अपने ढंग की एक अलग बात पैदा हो जाती है। उसे उसकी धर्म की किताब से कुछ भी पढ़कर बता दीजिये, वह उसे सच मान लेगा। वह यह जानने की कोशिश नहीं करेगा कि वैसी बात किताब में लिखी है या नहीं। उसमें एक दूसरा ऐब और पैदा हो जाता है। अगर उसकी धर्म की किताब का अर्थ कोई दूसरे धर्मवाला ठीक-ठीक कर दे, तो वह उसे ठीक नहीं मानेगा। वह उस नाठीक अर्थ को ठीक समझेगा, जो उसका धर्मवाला उसे बतायेगा।

कोई धर्मवाला जब यही मान बैठा कि उसकी धर्म-पुस्तक ईश्वर की या सर्वज्ञ की कही हुई है, तब उसे अपने-आप यह बात झूठ मालूम होने लगेगी कि कोई उसे यह कहे कि इस किताब

में भी कोई असत्य बात है। क्योंकि उसकी यह बात ही असत्य हो जायगी कि ईश्वर कभी असत्य नहीं बोलता और सर्वज्ञ कभी असत्य नहीं कहता। अज्ञातवाद में सबसे बुरी बला यही है। यही वजह है कि धर्मवाले सचाई की ओर नहीं बढ़ पाते।

धर्मग्रंथ ईश्वरोक्त नहीं

जिस धर्मग्रन्थ को धर्मवाले ईश्वर का कहा या सर्वज्ञ का कहा कहते हैं, उसके बारे में वे कुछ सोचना ही नहीं चाहते। वे इतना भी नहीं सोचना चाहते कि वह किताब, जिसे वे ईश्वर या सर्वज्ञ की कही कह रहे हैं, कागज की है और कागज आदमी का बनाया है। वह स्याही से लिखी है और स्याही आदमी की बनायी है। उसे किसी आदमी ने लिखा और उसमें जो कुछ लिखा गया, वह किसी आदमी के मुँह से निकला है। अब वह ईश्वर या सर्वज्ञ का कहा हुआ कैसे हो सकता है? वे इतना भी नहीं सोचते कि जैसे उनकी किताब ईश्वर या सर्वज्ञ की कही है, वैसे वे उसे ईश्वर या सर्वज्ञ की कही मानने से कैसे इनकार कर सकते हैं, जिसमें उनकी किताब से उल्टी बातें लिखी हैं और जिसे उस किताब के माननेवाले ईश्वर या सर्वज्ञ की कही कहते हैं।

ईश्वर या सर्वज्ञ किस भाषा में बोलते हैं, यह किसीको पता नहीं। ईश्वर या सर्वज्ञ के बारे में यह कहना कि वह सिर्फ एक ही भाषा जानता है, उसकी सर्वज्ञता पर दोष लगाना है। इसलिए हर भाषा में लिखा धर्मग्रन्थ ईश्वर का कहा हो सकता है। फिर जब सभी धर्मग्रन्थ ईश्वर के कहे हो गये, तो एक-

दूसरे से विपरीत होने की वजह यह साबित कर देगी कि वे न ईश्वर के हैं और न सर्वज्ञ के ही। वे मामूली आदमी के कहे हुए हैं। उनमें जो कुछ लिखा है, उसमें से बहुत-सी बातें ऐसी हो सकती हैं, जो उस समय के लिए सच हों, पर आज की दुनिया में वह बिलकुल सच नहीं।

जिन धर्मों ने सर्वज्ञ को माना है, उन्होंने किसी आदमी को ही माना है। अब वे अपने ग्रन्थों को किस बूते पर सर्वज्ञ का कहा कहते हैं? जो ग्रन्थ आज सर्वज्ञ के कहे माने जाते हैं, उनमें से बहुत तो संस्कृत में हैं और संस्कृतज्ञ उनके सर्वज्ञ भले ही हों, पर उन्होंने कोई बात संस्कृत में कही नहीं। वैसा करके वे करते भी क्या? क्योंकि जब वे थे, तब संस्कृत के जानकार उँगलियों पर गिने जाते थे। जिनसे उन्हें अपनी बात कहनी थी, वे संस्कृत बिलकुल न जानते थे। इसलिए संस्कृत का कोई ग्रन्थ सर्वज्ञ-वाक्य नहीं माना जा सकता।

प्राकृत और पाली के ग्रन्थों में बहुत-से ऐसे हैं, जो गाथाओं में लिखे हैं यानी पद्य में और यह भी साफ बात है कि सर्वज्ञ गाकर यानी गाथाएँ नहीं बोलते थे। उन्होंने जो कुछ कहा, वह गद्य में। इसलिए गाथाओं में लिखे सब ग्रन्थ सर्वज्ञ के कहे नहीं रह जाते।

धर्म ग्रन्थ गद्य में हैं नहीं। अगर यह मान लिया जाय कि कुछ हैं, तब यह सवाल खड़ा होता है कि वे कब लिखे गये? यह सबको स्वीकार है कि वे आमतौर से न सर्वज्ञ ने लिखे, न सर्वज्ञ के समय लिखे गये। अंदाजन पाँच सौ वर्ष बाद लिखे

गये। यानी सुन-सुनकर और याद से लिखे गये। इसी वास्ते वे 'श्रुति' और 'स्मृति' नाम से पुकारे जाते हैं। तव वे किस तरह सर्वज्ञ-वाक्य हो सकते हैं?

अब यह मानकर चलिये कि किसी-न-किसी तरह हमें सर्वज्ञ के वचन ज्यों-के-त्यों मिल गये हैं, पर जिसे आप सर्वज्ञ कहते हैं, उसे सब सर्वज्ञ मान लें, यह जरूरी नहीं। शायद इसे आप भी जरूरी नहीं समझेंगे। क्योंकि इससे यह बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायगी कि हर काला अक्षर सर्वज्ञ-वाक्य हो जायगा। फिर इसके सिवा हमारे पास क्या रह जाता है कि हम उन ग्रन्थों को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कसें और प्रत्यक्ष से मिलान करें, और अगर वे ठीक न उतरें, तो मान लें कि वे सर्वज्ञ के कहे नहीं हैं। ऐसा मान लेने से कि जो जिस किताब में लिखा है, ठीक है, सबके लिए मुश्किल हो जायगी और एक किताब दूसरी किताब को झूठी साबित कर देगी।

बेचारा सर्वज्ञ-वाक्य का विश्वासी!

सर्वज्ञ-वाक्य सब ठीक होते हैं और जो धर्म-ग्रन्थों में लिखा है, वह सब सर्वज्ञ-वाक्य है, इस बात ने एक ऐसी अनोखी हालत पैदा कर दी है, जिस पर हँसी आये बगैर न रहेगी। मान लीजिये, एक आदमी अपने शादीशुदा लड़के को, जो मुद्दत से घर आने की नहीं सोच रहा, नाराज होकर यह लिखता है कि तुम बहुत नालायक हो कि इतने दिन हो गये और घर पर नहीं आते। तुम्हारे न आने से तुम्हारी पत्नी विधवा हो गयी। वह आदमी अपनी पत्नी के विधवा होने की खबर सुनकर रोने लगता है।

उसके दोस्त जब उससे पूछने आते हैं कि वह क्यों रोता है, तब वह अपने रोने का यह कारण बताता है कि उसकी पत्नी विधवा हो गयी। फिर उसके दोस्त उसे यह बताते और समझाते हैं कि उसके जीते जी उसकी पत्नी किस तरह विधवा हो सकती है? यह सुनकर वह जवाब देता है कि "हाँ, यह तो मैं भी जानता हूँ कि मेरे जीते जी मेरी पत्नी विधवा नहीं हो सकती। पर मेरे बाप जो हमेशा सच बोलते हैं। वे उस जगह मौजूद हैं, जहाँ मेरी पत्नी रहती है। उनके हाथ की लिखावट मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूँ और इस चिट्ठी पर मोहर भी उसी नगर की है, जहाँ मेरे पिताजी रहते हैं। फिर उसी चिट्ठी में लिखा है कि मेरी पत्नी विधवा हो गयी, तब मैं इसे झूठ कैसे कह सकता हूँ? मेरे पास इसके सिवा क्या चारा है कि मैं यह कहूँ कि चूंकि आप अकल की बात कह रहे हैं, ऐसी बात कह रहे हैं, जो मेरी समझ में और अकल में भी आती है, इसलिए आप उतने ही ठीक हैं, जितने मेरे बाप की लिखी चिट्ठी के शब्द। आपकी बात बुद्धि-प्रमाण इसलिए ठीक और मेरी बात पिताजी की चिट्ठी आगम प्रमाण इसलिए ठीक। मेरे पिता चाहे सर्वज्ञ न हों, पर उस मामले की वह बात लिख रहे हैं, जिसके वे हर तरह से पूरे जानकार हैं और इस तरह सर्वज्ञ हैं।"

ऊपर की बात पढ़कर पढ़नेवालों को जरूर हँसी आयेगी। पर हम उदाहरण देकर नहीं रह जायँगे। हमने इस तरह का मामला अपनी आँखों देखा है। हम यहाँ नाम नहीं देना चाहते। एक बड़े मशहूर बैरिस्टर थे। उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थों का बहुत

अच्छा अध्ययन किया था और उनका निचोड़ लेकर अंग्रेजी में एक खासी मोटी किताव भी लिखी थी। उनके धर्म के अनुसार जमीन चपटी है, उसके चारों तरफ अनेक सूरज-चन्द्रमा घूम रहे हैं, अनगिनत दुनियाएँ हैं। पर हमारी इस जानी हुई दुनिया के दो सूरज और दो चन्द्रमा हैं। वे वैरिस्टर साहव इस वात के ऐसे ही विश्वासी थे, जैसे हमारा ऊपर का जवान अपने वाप की वात का। क्योंकि वे अपने धर्म-ग्रन्थों को सर्वज्ञ का कहा समझते थे। एक दिन एक आदमी दो सूरज के वारे में उनसे वहस कर वैठा। उसने उनसे कहा, "इस वात में तर्क-शास्त्र की कहाँ जरूरत है, आप नार्वे देश के ओस्लो नगर में चलिये, मैं आपको २४ घंटे नहीं, २४ दिन तक एक ही सूरज दिखा सकता हूँ, फिर दो सूरज कहाँ से आ गये? अगर कोई दूसरा सूरज है, तो वह किधर रास्ता काटकर निकल जाता है? अगर आप सर्वज्ञ की वात सिद्ध करने के लिए यह भी कह दें कि वह रास्ता काटकर निकल जाता है, तो फिर आपको इस सवाल का जवाव देना पड़ेगा कि दूसरे दिन अँधेरा क्यों नहीं रहता? क्योंकि आपका धर्म-शास्त्र यह कहता है कि एक दिन एक सूरज आता है, दूसरे दिन दूसरा।"

उसकी यह दलील अकाट्य थी, पर वैरिस्टर साहव उसे कैसे मान लेते। ऐसा मानने से उनके धर्मग्रन्थों को वट्टा लगता और उनकी धर्म की सारी वुनियाद ढह जाती। शायद सवसे वुरी वात यह होती कि जिन श्रद्धालु सेठों ने उन्हें पण्डित मान रखा था, उनकी नजर में वे पण्डित न रह जाते। इसलिए उन्होंने उस

आदमी से यही कहा कि "हम ऐसा नहीं मानते, जब तक कि खुद वहाँ जाकर यह न देखें।" बस, उनके भक्त सेठ उछल पड़े और तुरन्त उनके ओस्लो जाने का इन्तजाम कर दिया गया। वे वहाँ गये और अपनी आँखों एक ही सूरज को २४ घण्टे देख आये।

ओस्लो के सूरज की बात आज स्कूल में पढ़नेवाला बच्चा-बच्चा जानता है, वे खुद भी जानते थे, पर सीधे-सीधे मान लेने से ओस्लो की सैर कैसे होती? फिर ओस्लो में २४ घण्टे सूरज देखकर और वहाँ से लौटकर उन्होंने कहा क्या? वही, जो उस जवान ने कहा था कि "ओस्लो का एक सूरज इसलिए ठीक कि हमने वह आँखों देखा, और धर्मग्रन्थ के दो सूरज इसलिए ठीक कि वह सर्वज्ञ ने अपनी आँखों देखे।" बस, ग्रन्थों को सर्वज्ञ-वाक्य मानने से समाज में इस तरह के आदमियों के पैदा हो जाने का बहुत बड़ा खतरा बना रहता है।

आगम-प्रमाण का अर्थ

आगम-प्रमाण पर हमने बहुत सोचा कि आखिर यह बात क्यों चल पड़ी और समझदार से समझदार लोग क्यों इसे महत्त्व देते हैं? क्या इसमें कहीं कुछ सचाई है या कोरा धोखा है? बहुत सोचने पर हम इस नतीजे पर पहुँचे। मान लीजिये, हमारे बाप-दादों में से कोई एक लन्दन गया और वहाँ से वह लन्दन के किसी गिरजे का सविस्तर हाल लिख लाया और वह ग्रन्थ हमारे पास है। लन्दन के बारे में और खासकर उस गिरजे के बारे में लिखा हुआ हमारे लिए वह आगम है और फिर प्रमाण तो है ही। अब आज कोई आदमी लन्दन देखकर आता है और हमें उस पर सन्देह है कि वह

लन्दन गया नहीं, यों ही गप हाँकता है। अब जब वह उस गिरजे की बात सुनाने लगे, जिसका कि जिक्र हमारे बाप-दादों के लिखे उस ग्रन्थ में है, तो हम उस आदमी की बात सुनकर अपने ग्रन्थ से मिलान करेंगे और फिर झट समझ जायँगे कि वह आदमी सचमुच लन्दन गया है। क्योंकि अब उसकी बात आगम-प्रमाण होगी। क्योंकि वह जो कह रहा है, वही हमारे आगम में लिखा है। अब और आगे चलिये। हमारे बाप-दादा गये थे सौ-दो सौ बरस पहले। तब से अब तक गिरजे में बहुत-से बदलाव हुए होंगे। उसकी सजावट तो एकदम बदल गयी होगी। इसलिए हमारा यह फर्ज होगा कि हम उस नये-नये गिरजा देखकर आनेवाले की बात सुनकर अपने आगम को आज की तारीख तक ठीक कर लें, जिससे हमारा आगम-प्रमाण बना रहे। प्रमाण के माने हैं सच्चा या सच्चा ज्ञान। अब आगम हो गया सच्चा ज्ञान करानेवाला। इसीको बोलचाल में कहा जाता है 'आगम प्रमाण है।'

आगम को प्रमाण मानना भारी भूल

आगम-प्रमाण के बारे में एक बात और रह गयी। आगम सच्चा होता है, सच्चा बनाया जाता है और सच्चा बनाया जाता रहेगा। इसीको यों भी कहा जा सकता है कि आगम प्रमाण होता है, प्रमाण बनाया जाता है और प्रमाण बनाया जाता रहेगा। मेरे बाप-दादों का दो सौ बरस पहले लिखा लन्दन का हाल आगम-प्रमाण हैं दो सौ बरस पहले के लिए, आज के लिए नहीं। हाँ, वह आज भी प्रमाण हो सकता है, अगर उसे प्रमाण बनाया

जाता रहा है यानी ठीक किया जाता रहा है और आगे भी प्रमाण रहेगा, अगर ठीक किया जाता रहा। ऋषभ नाम का बच्चा अगर बदलता रहा और खाता-पीता रहा, तो वह जवान जरूर होगा, उसके दाढ़ी-मूँछ भी निकलेंगी, बहुत कुछ शकल भी बदलेगी, उसकी आदतें भी बदलेंगी, फिर भी वह ऋषभ रहेगा। आगे फिर और बदलेगा, फिर भी ऋषभ रहेगा। वह बचपन से बुढ़ापे तक प्रमाण रहेगा, लेकिन अगर किसी वजह बचपन में उसका खाना बन्द कर दिया जाय और वह मर जाय और उसे एक शीशे के बर्तन में स्प्रिट में ज्यों का त्यों रख दिया जाय, तो वह ऋषभ न तो उस साल के लिए प्रमाण है, जब वह पैदा हुआ था या जब वह जीवित था, क्योंकि उस समय का भी सविस्तर हाल वह नहीं बता सकता। उस समय के लिए वह उतना ही प्रमाण होगा, जितना उस समय के वह कपड़े पहने है या जैसा वह उस समय का शरीर लिये हुए है। बाद के लिए वह किसी तरह प्रमाण नहीं माना जायगा। ठीक इसी तरह किसी धर्म के भी धर्म-ग्रन्थ क्यों न हों, वह न उस समय के लिए प्रमाण हो सकते हैं, जिस समय वे कहे गये या लिखे गये थे और आज के लिए तो किसी भी तरह प्रमाण नहीं हो सकते। जिस समय वे लिखे गये थे और जिन रस्म-रिवाजों का उनमें जिक्र है, वे रस्म-रिवाज अब नहीं रहे, इसलिए वे प्रमाण नहीं। उस समय के रस्म-रिवाजों के बारे में वह जितना उनमें लिखा है, उससे ज्यादा बता नहीं सकते, इसलिए उस समय के लिए भी प्रमाण नहीं हैं। इसलिए आगम को प्रमाण मानना बड़ी भारी

भूल है। तर्कशास्त्र में जिसने आगम-प्रमाण को माना, उसने बहुत बड़ी भूल की। यह भूल अब ठीक हो जानी चाहिए।

सत्य के लिए आगम की जरूरत नहीं

आगम वही प्रमाण माना जा सकता है, जो आये दिन प्रमाण बनाया जाता रहता है और यह किसी आगम के साथ नहीं हो रहा है। अब रह गये अटल सत्य, ऐसे सत्य, जिन्हें सारी दुनिया मानती है। उन सत्यों के लिए आगम की जरूरत नहीं। आगम तो एक तरह का कोश होता है यानी डिक्शनरी। कोश और डिक्शनरी तभी देखी जाती है, जब किसी शब्द के माने मालूम न हों। अटल सत्य या सबके जाने-माने सत्य के लिए आगम की कहाँ जरूरत पड़ेगी ? इसलिए भी सारे आगम अप्रमाण ही रह जाते हैं।

धर्म को सत्य पर कसिये

आगम को ही लोगों ने धर्म मान रखा है और हम यह कह ही चुके कि आगम अप्रमाण है। इसलिए आगम नामधारी धर्म अप्रमाण हुआ। धर्म और आगम का जो अंश अटल सत्य या सबके माने-जाने सत्य को लिये है, उसके लिए न आगम की जरूरत है, न धर्म की। उतना धर्म तो आदमी के साथ एकमेक हो गया है, उसके लिए उसे किसी आगम की जरूरत नहीं और फिर गहराई से सोचने पर धर्म अपने-आप कहीं खड़ा ही नहीं रह सकता। किताबों में तो वह किसी भी तरह नहीं रह सकता। यह आदमी में ही रह सकता है। इसलिए भी धर्म-ग्रन्थ

बेकार हो जाते हैं। आग-पानी की तरह धर्म-ग्रन्थों का जो अपना धर्म है, वह उनके अपने काम का है, हमारे किसी काम का नहीं। जितना हमारे काम का है, उतने से फायदा उठाने में समाज को कोई हानि नहीं। समाज को हानि तो तभी पहुँचती है, जब धर्म-ग्रन्थों का बुद्धि और तर्क से बड़ा मानकर सहारा लिया जाता है। जब और जहाँ बुद्धि और तर्क को ढीला डाला कि व्यक्ति और समाज को हानि हुई। प्रचलित धर्म और सत्य में यही अन्तर है कि धर्म आज की तारीख तक की बात नहीं कहता और सत्य आज तक की बात कहता है। इसलिए धर्म को सत्य और परीक्षा की कसौटी पर कसे जाने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

• • •

: ११ :

सत्य और चमत्कार

चमत्कार अपने-आप में कुछ नहीं होते, उनका मोल मामूली घटना जितना होता है। एक चमत्कार दूसरे के लिए मामूली घटना से नीचे दरजे की वात हो सकती है। जिसके लिए जो जितना चमत्कार है, वह उतना ही अजानकार है। *अजानकारी और चमत्कार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।* किसी चीज को देख जब एक आदमी को अचरज होता है, तब वह उसे 'चमत्कार' नाम दे देता है। जो जितना अजानकार और मूरख है, उतना ही चमत्कार उसके लिए दुनिया में रहता है। दूध-पीता बालक अगर बोल सकता, तो आये दिन सैकड़ों चमत्कारों का हाल सुनाता। क्योंकि वह दुनिया की सभी बातों से अजानकार होता है।

चमत्कार और अचरज

चूल्हे में पड़कर जब रोटी फूलती है, तब बच्चे ही नहीं, बड़े-बड़े फड़क उठते हैं। अगर वे यह कहें कि यह आग का चमत्कार है, तो क्या झूठ कहते हैं? पर गहराई से सोचा जाय, तो वे सत्य के तनिक भी पास नहीं। आग में फुलाने की ताकत होती यानी आग फुलाने का चमत्कार दिखा सकती, तो वह लोहे के पतरे की बनी रोटी क्यों न फुला देती? पर वह ऐसा नहीं करती। इसलिए जो यह समझता है कि रोटी का फूलना आग

का चमत्कार है, वह अपनी अजानकारी का प्रमाण देता है। अचरज को सबने अजानकारी का पुत्र माना है। अचरज के बिना कोई घटना चमत्कार नाम नहीं पा सकती। अब रही अचरज की पहुँच। वह बच्चों तक सीमित नहीं, उसकी सीमा बहुत बड़ी है। उसमें बड़े-से-बड़े विद्वान् समा जाते हैं। अगर ऐसा न होता, तो बड़े-बड़े विद्वान् बाजीगरों का तमाशा देखने न आते। कभी-कभी मालूमी बातें भी बड़े-बड़े विद्वानों और बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के लिए चमत्कार साबित हो सकती हैं। अमेरिका में जब हिन्दुस्तान से कोई जलेबी बनानेवाला पहुँच गया, तो वहाँ के लोगों को यह चमत्कार ही मालूम हुआ कि आटे की इतनी बारीक थैली में किस तरह रस भरकर एक पहिये जैसी चीज बना दी जाती है। वे बनानेवाले से जलेबी की मशीन दिखाने के लिए कहने लगे। जब उन्हें मालूम हुआ कि उसकी कोई मशीन नहीं होती और वह हाथ से बन जाती है, तब उनके अचरज का ठिकाना न रहा। जब उन्होंने अपनी आँखों जलेबी बनते देख लिया, तब उनके मुँह से निकल गया, एकदम चमत्कार! यह है आपका चमत्कार!!

चमत्कार और धर्म

धर्म-ग्रन्थ चमत्कारों से भरे पड़े हैं। धर्म का अन्धश्रद्धालु कितना ही विद्वान् क्यों न हो, साधु-सन्तों और महापुरुषों के चमत्कारों पर विश्वास करता है। उसे चमत्कारों पर विश्वास करने में आनंद आता है।

चमत्कार की तालीम

आजकल हमारे बच्चों को चमत्कार की तालीम उस दिन से मिलने लगती है, जिस दिन वे पालने में होते हैं। यह इस वास्ते जरूरी है कि उन चमत्कारों के बिना कोई आदमी धर्म के पैगम्बरों पर ईमान ही नहीं ला सकता। जब तक उसे यह साबित करके न दिखा दिया जाय कि वह आदमी नहीं, ईश्वर के भेजे हुए देवता या फरिश्ते थे और जब बचपन से किसी दिमाग में इस तरह की बातें भर दी जायँ, तब यह बड़ी बात नहीं कि बड़े होकर वह बालक चमत्कारों में ऐसे ही विश्वास करने लगें, जैसे दुनिया की और बातों में।

साधु लोग चमत्कारी होते हैं, यह बात आजकल हरएक अपढ़ में जगह किये है। औरतों की तो कुछ न पूछिये। वे तो चमत्कारों में इतना ज्यादा विश्वास रखती हैं, जिसका ठिकाना नहीं। उनके इस विश्वास का यह नतीजा हुआ है कि हमारे बालक भिखमंगों से ऐसे डरने लगे हैं, जैसे अंग्रेजी राज्य में पुलिस से डरते थे। यही हाल हमारी माँ-बहनों का है।

कोई साधु यानी भिखमंगा अगर जरा चालाक है, तो किसी ऐसे घर से, जिस घर में कोई मर्द न हो, औरतों से चमत्कार की बात कहकर जेवर उतरवाकर ले जा सकता है। हमारी बहन से एक भिखारी खाली हाथों से बाजरा गिराने का तमाशा दिखाकर चमत्कारी बन कुछ पैसे, कपड़े, पूरियाँ पा गया था। उसकी एक यह वजह थी कि उस वक्त हमारी बहन का तीन बरस का बच्चा बीमार था। हम बड़ी मुश्किल से अपनी बहन के चमत्कार-

सम्वन्धी अन्ध-विश्वास को तोड़ पाये थे। चमत्कारों का जब सिलसिला चल पड़ता है, तो वह खतम नहीं होता। कभी कहीं चमत्कारों की बात छिड़ जाय, तो फिर शायद ही कोई ऐसा हो, जो अपना चमत्कार न सुनाये। *चमत्कार के वायु-मण्डल में पले बालक मुश्किल से सत्य की खोज में लग सकते हैं।*

आज का कोई धर्म चमत्कारों से खाली नहीं। इतना ही क्यों, सब धर्म चमत्कार बताये बिना किसी दूसरे धर्मवाले पर अपने धर्म का रंग नहीं चढ़ा सकते। इस तरह चमत्कार धर्म के महल की बुनियाद बन बैठा है। कौन यह नहीं जानता कि बुनियाद के हिलने से इमारत हिल जाया करती है। इस वास्ते कोई धर्मवाला यह नहीं चाहता कि चमत्कारों के खिलाफ आवाज उठायी जाय।

चमत्कार सब धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं। जो जितना पुराना धर्म हो, वह उतना ही ज्यादा चमत्कारों से भरा मिलेगा।

चमत्कारों का गढ़ना

चमत्कार बड़ी आसानी से गढ़े जा सकते हैं। उनके गले में कल्पना-शक्ति पर ज्यादा जोर नहीं डालना पड़ता। आग गरम है। वह चीजों को जला दे, तो चमत्कारों की एक इमारत खड़ी हो जाय। आग के बारे में एक खास चमत्कार की बात सारी दुनिया में फैली है। जब भी कोई आदमी दहकते कोयले पर नंगे पाँव निकल जाता है, तो चमत्कारी मान लिया जाता है। उस चमत्कार को जब ज्यादा बढ़ाकर कहा जाता है, तो वह ऐसा

अप्राकृतिक हो जाता है कि सत्य से बहुत दूर पड़ जाता है। आग पर चलनेवाले चमत्कारी के बारे में कहा जाता है कि उसे कोई देवता सिद्ध है और वही देवता उसके पाँव नहीं जलने देता। यह बात बिलकुल झूठ है, पर लाखों पढ़े और बे-पढ़े यह सुनते हैं और अचरज में पड़ जाते हैं। अपनी इस समझ को कि आग बिना दवा डाले जलाना नहीं छोड़ सकती, एकदम दिमाग से निकालकर फेंक देते हैं। 'चमत्कारी', 'जादूगर' और 'बाजीगर' तीनों शब्दों का एक ही मतलब है। साधु की बाजीगरी 'चमत्कार' नाम से पुकारी जाती है और बाजीगर का दिखाया हुआ चमत्कार 'बाजीगरी' नाम पाता है। वही चमत्कार चुपके से किसीको दुःख पहुँचाने के काम में लाया जाय, तो 'जादूगरी' नाम ले बैठता है।

जैसे दहकती आग पर चलना चमत्कार है, वैसे ही आदमी का पानी पर पाँव-पाँव चलना चमत्कार नाम पाता है। पानी पर पाँव-पाँव चलने की बात बहुत साधुओं के बारे में कही जाती है।

हवा में उड़ने की बात कम रिवाज में नहीं है। इस बारे में भी लोगों का कहना है कि कितने ही साधु हवा में उड़ सकते हैं। धर्म-ग्रन्थों में जहाँ ऋद्धि-सिद्धियों का जिक्र है, वहाँ हवा में उड़ने की बात भी कही गयी है। मतलब यह कि चमत्कार और करामातों की कोई गिनती नहीं हो सकती।

चमत्कारों से हानि

चमत्कारों में विश्वास करने से मनुष्य-समाज को बहुत नुकसान हुए, पर सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि चमत्कारों को

ज्यों-का-त्यों सत्य मान लेने से मनुष्य-समाज का सच की असलियत तक पहुँचने का स्वभाव नष्ट होता जा रहा है। कच्ची उम्र के बच्चे पढ़ाई-लिखाई से भागकर देवी-देवताओं को मनाने में लग गये हैं। वे समझ बैठे हैं कि उन्हें सिद्ध कर लेने से जरा देर में पढ़ना-लिखना आ जायगा, वे इतने बड़े विद्वान् बन जायँगे कि कोई उनका मुकाबला न कर सकेगा।

हम दो-चार चमत्कारों का सही-सही अर्थ समझाकर यह अध्याय खतम करेंगे।

मूर्ति की अधरता

एक बार हमने सुना कि एक मन्दिर में ऐसी मूर्ति है, जो अधर है। वह इस वास्ते अधर है कि उसे देवता थामे हैं। हम चमत्कारों में विश्वास नहीं करते। हमने इस तरह दलील करना शुरू की :

१. जब उस मूर्ति को देवता थामे हैं, तो इसमें चमत्कार क्या हुआ ? अगर मूर्ति अपने-आप अधर होती, तब कोई चमत्कार हो सकता था।

२. अगर मूर्ति अपने-आप निराधार है, तब भी कोई चमत्कारी बात नहीं; क्योंकि सारे ग्रह निराधार घूम रहे हैं। और बन्दूक से फेंकी गोली और हाथ से फेंका ठीकरा बहुत देर न सही, थोड़ी देर निराधार रहता ही है। फिर निराधार रहने में चमत्कारीपन क्या है ?

३. वैज्ञानिकों का कहना है कि चुम्बक की मदद से ऐसा सम्भव है कि कोई चीज हवा में अधर थामी जा सके। यह

विज्ञान की एक सचाई है, इसे कोई भी कर सकता है। यह चमत्कार नहीं कहा जा सकता।

पर हम तो यह मानते हैं कि वह मूर्ति, जिसकी तुम वात कह रहे हो, न देवताओं के हाथ में थमी है, न ग्रहों की तरह निराधार है और न चुम्बक पत्थर से निराधार वनायी गयी है। हम अगर आँख से देख पायें, तो हम उसके निराधार होने की सारी पोल खोल दें।

होनहार की वात। हम अपनी वड़ी वहन समेत वहुत दिनों वाद उसी जगह जा पहुँचे, जहाँ अधर मूर्तिवाला मन्दिर था। हमने एक रुपया पुजारी को देकर उस मूर्ति की खुद जाँच की। वह अधर न पायी गयी। उसमें चुम्वक की कोई कारीगरी न थी। वह मूर्ति पीठ के पीछे दो-ढाई इंच लम्वे और इतने ही चौड़े आसन पर टिकी हुई थी। इसलिए कपड़े का टुकड़ा पलोथी के दायें-वायें घोंटुओं के नीचे होकर साफ निकल जाता था। अगर कोई आमने-सामने डोरे निकालने की कोशिश करता, तो अधर रहने के सारे चमत्कार की पोल खुल गयी होती। चमत्कार में विश्वास करनेवाले इस तरह की वात सोचने भी क्यों लगे?

मूर्ति जमीन पकड़ गयी

नगर का नाम तो याद नहीं रहा। उस नगर के मंदिर में एक मूर्ति जमीन पकड़ गयी। किसी तरह उठाये न उठी। उस नगर के लिए यह वात चमत्कार वन गयी। विज्ञान के लिए यह वात विलकुल मामूली है। दो चीजों के वीच में जव विलकुल हवा न रहे, तव वहुत मजवूती से चिपक जाती है। आमने-

सामने से दो हाथी भी जोर लगाकर उन्हें अलग करना चाहें, तो नहीं कर सकते। हाँ, पहलू की तरफ से दिया हुआ मामूली धक्का उन दो चीजों को अलग कर देगा। यही हाल उस अचल मूर्ति का हुआ। जैसे ही एक तरफ से धक्का दिया गया, हवा अन्दर पहुँच गयी और मूर्ति के अचलपन का चमत्कार खतम हो गया। पर उस मूर्ति के मामले में एक और नया तमाशा हुआ। मूर्ति का चमत्कार हटा, तो वह मूर्ति हटानेवाले से जा चिपका यानी अब मूर्ति हटानेवाला चमत्कारी बन बैठा। यह है अन्ध-विश्वास की तालीम का फल।

मुर्गी का अण्डा

एक जगह और ऐसा ही चमत्कार देखने को मिला। वह चमत्कार यह था कि एक आदमी बड़े अहिंसक मशहूर थे, इसलिए उन्हें यह ऋद्धि हासिल हो गयी थी कि वे अगर मुर्गी के अण्डे को अपने हाथ से ऊँचा उछालकर मकान के पीछे के मैदान में फेंक दें, तो न अण्डा फूटेगा और न उसके अन्दर रहनेवाले प्राणी को कोई चोट लगेगी। वे इस करामात की वजह से पुजने लगे। पर जब हमने इसकी अच्छी तरह जाँच की, तो पता चला कि मुर्गी के हर ताजे अण्डे में यह खासियत रहती है कि उसे कितना भी ऊँचा घास उगे मैदान पर फेंका जाय, तो वह हमेशा अपनी नोंक के बल जमीन पर गिरेगा, पर न कभी फूटेगा, न अन्दर कोई चोट खायेगा। यह विज्ञान की सीधी-सादी बात है। इसे मूरख फेंके, तब भी वही नतीजा होगा। हिंसावादी फेंके, तब भी वही

नतीजा होगा । बस, इसकी सचाई जब तक अँधेरे में है, तभी तक यह चमत्कार, नहीं तो मामूली घटना ।

गांधीजी और चमत्कार

सन् १९२१ की बात है । असहयोग-आन्दोलन जोरों पर था । अंग्रेजी सरकार का आसन हिल गया था । गांधीजी सारे देश में चमत्कारी पुरुष के नाम से मशहूर हो चुके थे । वह उन्हीं दिनों डाकगाड़ी से कलकत्ता जा रहे थे । मध्यप्रदेश के गोन्दिया स्टेशन पर डाकगाड़ी शायद आध घण्टा ठहरती थी । इसलिए गोन्दियावालों ने स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर ही एक सभा का वन्दोवस्त कर लिया । गाड़ी आने पर सभा शुरू हो गयी । गांधीजी बोलने लगे । जब गाड़ी चलने में दो-एक मिनट बाकी रह गये, तब गांधीजी ने गाड़ी में जा बैठने की बात सोची । लोगों ने फौरन आवाज उठायी, 'रेल के इन्तजाम में कोई ऐसी गड़बड़ी हो गयी है कि गाड़ी अभी जल्दी न चलेगी, आप बोले जाइये ।' गांधीजी सुभीते से बोलते रहे और जब वह बोलकर गाड़ी में जा बैठे, रेल का सब इन्तजाम ठीक हो गया और गाड़ी चल दी । गाड़ी के गोन्दिया से छूटने से पहले-पहले गोन्दिया से नागपुर तक और इधर गोन्दिया से रायपुर तक यह खबर फैल गयी कि गांधीजी बड़े चमत्कारी हैं, उनके चमत्कार से गाड़ी रुक गयी । उनके उस चमत्कार की बात का कभी किसी समझदार आदमी ने खंडन नहीं किया, उलटा मण्डन किया; क्योंकि उस वक्त हिन्दुस्तान के सारे समझदारों का स्वार्थ इस बात में था कि गांधीजी को अवतारी, चमत्कारी और महाचमत्कारी साबित

किया जाय। हम गोंदिया स्टेशन पर मौजूद थे। यह सब कार्यवाही स्टेशन के आदमियों ने जान-बूझकर की थी, वे सब गांधीजी का व्याख्यान जी भरकर सुनना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि वे गाड़ी रोकने के इलजाम से बचे रहें। पढ़नेवालों को यह याद रहे कि स्टेशन की रिपोर्ट में गाड़ी रुकने की वजह यह नहीं बतायी गयी कि गांधीजी के चमत्कार से गाड़ी रुक गयी। क्योंकि रेलवे-अफसर इतने बेवकूफ न थे कि वे इस तरह के झाँसे में आ जाते, उन्हें तो बुद्धि में जँचनेवाली ऐसी ही कुछ वजह बतायी गयी थी। जैसे सिग्नल का खराब हो जाना या इंजन का फोरवॉल्व यानी अगली नली बिगड़ जाना। ये होते हैं चमत्कार और यह है चमत्कारों का उपयोग।

चमत्कारों से बच्चों के दिमाग न बिगाड़ें

चमत्कारों की सचाई हर बच्चे को उसकी जन्मघुट्टी में पिलायी जाती है। अगर आप जरा गौर से देखें, तो आपको मालूम हो जायगा कि कोई तीन-चार वर्ष का बच्चा जब स्टेशन पर रेलगाड़ी के देर तक खड़े रहने से ऊब उठे, तब वह रेलगाड़ी में मुक्का मार-मारकर चल-चल कहना शुरू कर देता है। अगर कहीं उसके पहले, दूसरे, तीसरे मुक्के पर गाड़ी चल पड़े, तो चट उसके मुंह से निकल जायगा, "मेरे हुक्म से गाड़ी चल दी।" उधर उसकी माँ के मुंह से निकल जायगा, "मेरा लाल बड़ा चमत्कारी है।" बच्चे को जितना इस बात में विश्वास है कि उसके हुक्म से गाड़ी चली, उतना ही उसकी माँ को उसके चमत्कारी होने में विश्वास होता है। वह अपने बालक को यों

ही चमत्कारी नहीं कह बैठती, उसे सचमुच उसका बालक चमत्कारी जँचने लगता है, उसके मन में वैसी गुदगुदी पैदा होने लगती है, वह यह बात सोचने की हर तरह अधिकारी है। अगर कंस जैसे पापी की बहन देवकी कृष्ण जैसे चमत्कारी को जन्म दे सकती है, तो वह क्यों नहीं वैसे ही चमत्कारी को जन्म दे सकती? और क्यों रेलगाड़ी उसके बालक के चमत्कार से न चले? उस माँ की पीढ़ियों की धार्मिक तालीम उसके सिर पर आ सवार होती है। फिर वह यह सोचने का तनिक भी कष्ट नहीं उठाती कि रेल किन-किन कारणों से चला करती है और यह कि रेल के चलने के काम में उसके बालक का मुक्का मारना किसी तरह का कारण नहीं हो सकता।

हमारे पढ़नेवाले अगर हमारी बात ठीक-ठीक समझ गये होंगे, तो वे आसानी से खुद भी और उदाहरण सोच निकाल सकते हैं। इसलिए हम इतने ही उदाहरणों पर सन्तोष करते हैं। अन्त में यही कहना चाहते हैं कि वे अपने बच्चों के बारे में इस बात का खयाल रखें कि उनके दिमाग इस तरह मैले न होने पायें कि वे चमत्कारों में विश्वास करके कार्य का ठीक-ठीक कारण खोजना छोड़ बैठें।

चमत्कार मामूली घटनाएँ

चमत्कार में और मामूली घटना में कोई अन्तर नहीं होता। चमत्कार चमत्कारी के लिए वैसे ही मामूली घटना है, जैसे बाजीगरी के खेल बाजीगर के लिए। रेडियो के यंत्र, जो दिनभर

घर-घर में गाते रहते हैं, किसी ऐसे गाँव में, जहाँ अब तक रेडियो न पहुँचा हो, चमत्कार की चीज समझे जायँगे। हो सकता है, कोई-कोई रेडियो के यंत्र को अचानक देखकर डर जायँ और यह समझें कि इसके अन्दर भूत-प्रेत बैठे गाना गा रहे हैं। क्योंकि भूत-प्रेतों के बारे में अक्सर जो कहानियाँ कही जाती हैं, उनमें यही बताया जाता है कि उनके घुंघरुओं की छम-छम आवाज और गाना सुनायी देता है, पर वे दिखाई नहीं देते। दूसरी बात उनके बारे में यह बतायी जाती है कि वे छोटी-से-छोटी जगह में आ सकते हैं। जिन्नों को शीशों में उतारने की बात किसने नहीं सुनी? 'शीशे में उतारना' अब आम मुहावरा बन गया है। इसलिए जो रेडियो शहरवालों के लिए मामूली चीज है, वही गाँववालों के लिए चमत्कारी चीज हो सकता है।

समझदार भी चमत्कार के शिकार

चमत्कार मामूली घटनाएँ हैं, फिर भी वे पढ़े-लिखों में इतने गहरे घर कर गये हैं कि वे अपने दिल से निकालकर नहीं फेंक सकते। जब कोई हिन्दू अपने धर्म के चमत्कार फेंककर मुसलमान हो जाता है, तब वह इसलाम धर्म के चमत्कार अपना लेता है। यही हाल किसी मुसलमान का आर्यसमाजी होकर हो जाता है। आदमी चूंकि सर्वज्ञ नहीं है और बहुत अंशों में अजानकार है, इसलिए चमत्कारों में विश्वास करने में उसे आनन्द आता है।

एक बार का ज़िक्र है, सिक्खों के दूसरे गुरु गोविन्दसिंह, जो हिन्दुओं में बड़े चमत्कारी मशहूर हो गये थे और जिन्हें सैकड़ों

मुसलमान भी चमत्कारी मानते थे, एक वार दिल्ली के वजीर के मेहमान हुए। वजीर ने वड़ी श्रद्धा के साथ उनसे पूछा, 'मैंने सुना है, श्राप वड़े-बड़े करिश्मे यानी चमत्कार कर सकते हैं, कोई करिश्मा दिखाइये।' गुरुजी वोले, 'श्राप वादशाह के वजीर होकर करिश्मों में विश्वास करते हैं! भला करिश्मे भी कोई चीज होते हैं? मैं न कोई चमत्कार-करिश्मा जानता हूँ श्रौर न कर सकता हूँ।' वजीरसाहव वोले, 'सव पहुँचे हुए फकीरों का यही हाल होता है। वे कभी यह नहीं कहते कि वे कोई चमत्कार करना जानते हैं। उनके लिए वैसा कहना वाजिव भी है। पर हम मामूली श्रल्लाह के वन्दे यह कैसे मान लें कि पहुँचे हुए फकीर चमत्कारी नहीं होते। श्रगर ऐसा न होता, तो ताजवंद वादशाह नंगे, उघाड़े फकीरों के पाँव छूने न जाया करता। हुजूर, कोई करिश्मा तो दिखाइये।'

गुरुजी वोले, 'मैं क़रिश्मे या चमत्कार में विश्वास नहीं करता, न कोई चमत्कार ही करता हूँ श्रौर न जानता ही हूँ। मैं श्रापको भी यह सलाह देता हूँ कि श्राप चमत्कारों में विश्वास करना छोड़ दें।'

गुरुजी के इस उपदेश से वजीरसाहव के श्रन्दर करिश्मा देखने की इच्छा श्रौर ज्यादा भड़की। वे हठ करने लगे, 'हुजूर कोई करिश्मा तो दिखाइये ही।' श्राखिर गुरुजी को सूझ गयी श्रौर उन्होंने श्रपनी जेव से एक श्रशर्फी निकालकर दिखाकर कहा, 'करिश्मा यानी चमत्कार यह है, इससे सैकड़ों काम हो सकते हैं। जिन्हें वड़े-से-वड़े चमत्कार नहीं कर सकते।'

वजीरसाहब बोले, 'हुजूर का फरमाना बजा है। बेशक यह करिश्मा है और इस करिश्मे से बादशाह लोग बड़े-बड़े काम निकालते हैं। पर फकीरों के पास तो यह करिश्मा नहीं होता। हुजूर, कोई करिश्मा दिखाइये। अगर आप करामाती न होते, तो लाखों आदमी इस तरह आपके पीछे न हो जाते। बड़ी इनायत होगी, कोई करिश्मा दिखाइये।'

गुरुजी ने थोड़ा बिगड़कर अपने म्यान से तलवार खींची और उसे नंगा करके दिखाया और बोले, 'दूसरा करिश्मा यह है।'

जवाब में वजीरसाहब बोले, 'बेशक यह बड़ा करिश्मा है, पर हुजूर यह चीज भी फकीरों के पास नहीं होती। कोई करिश्मा दिखाइये।'

गुरुजी ने उन्हें लाख समझाया, पर किसी तरह उनका विश्वास करिश्मे पर से न हट सका।

हम क्या करें ?

यह रहता है पढ़े-लिखों का हाल। *बचपन में जो चीज गहरी घर कर जाती है, वह आसानी से नहीं निकल पाती। यही वजह है कि दुनिया के बड़े-से-बड़े सुधारक, बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक बेहद जोर लगाकर भी दुनिया को यह नहीं सिखा पाये कि जब भी कोई अनोखी चीज देखो, तब उसके कार्य-कारण सोचो। अगर ठीक-ठीक न जान सको, तो उस कार्य का गलत कारण तो न मान बैठो। जनता के मन का यह अज्ञान और कार्य-कारण को सोचे बिना किसी घटना को ऊटपटाँग तरीके से मान लेने की आदत उस वक्त तक न छूटेगी, जब तक बच्चों के संस्कार न बदले जायँगे; स्कूल और कॉलेज उन आदमियों के हाथों से न छीन लिये जायँगे, जो देववादी धर्म के विश्वासी*

हैं। देव या ईश्वर न जाना गया, न जाना जाता है, न जाना जा सकता है। हमारी बुद्धि प्रकृति की सीमा का लोप नहीं कर सकती। बुद्धि यानी ज्ञान ही हमारी आत्मा का स्वभाव है। अव ज्ञान बुद्धि के सिवा कुछ भी नहीं है। वही ज्ञान-बुद्धि हमें कर्तव्य सिखाती है। कर्तव्य-पालन का सम्वन्ध परलोक से नहीं, इस लोक से है। *हमें परलोकवासियों से न दोस्ती करने की जरूरत हैं और न उनके लिए मेहनत।*

नानक की सूचक शिक्षा

गुरु नानक का यह खेल कितना अच्छा पाठ देता है! एक बार वे गंगाजी नहाते वक्त अपने गाँव की तरफ मुँह करके पानी उलीचने लगे। जव यह तमाशा करते देर हो गयी, तव लोग पूछ बैठे कि 'गुरुजी यह आप क्या कर रहे हैं?' गुरुजी वोले, 'अपने गाँव के खेतों को पानी दे रहा हूँ।' लोग वोले, 'महाराज, यह कैसे हो सकता है?' गुरुजी वोले, 'क्यों नहीं हो सकता? जव तुम यहाँ से सूरज को पानी दे सकते हो और श्रद्धा के जरिये परलोकवासियों को खाना पहुँचा सकते हो, तो मेरा पानी मेरे गाँव के खेतों तक क्यों नहीं पहुँचेगा?'

सारांश, यह कहकर गुरुजी ने साफ़ वता दिया कि परलोकवासियों के प्रति न हमारा कोई कर्तव्य है, न हम उनकी कोई सेवा करते हैं। यह इसी लोक के लोगों से प्रेम करके, मोहव्वत करके, दोस्ती का वर्ताव करके, उनकी खातिर मेहनत करके हम अपने सारे कर्तव्य पालन कर सकते हैं। अगर हमें सचमुच ईश्वर या परलोक के लिए किसी कर्तव्य-पालन की जरूरत है,

तो वह इस लोक के कर्तव्य को पालने में समाया है। ईश्वर या परलोक के लिए अलग कोई कर्तव्य नहीं रह जाता। हमें संतोष के साथ काम में लगे रहने के सिवा कुछ नहीं सीखना।

सच्चा और महान् चमत्कार !

चमत्कार हमारी कमर तोड़ देते हैं। हमें साहसी बनकर चमत्कारों की कमर तोड़नी होगी। चमत्कार हमसे हमारी समझ और हमारी प्रसन्नता छीन लेते हैं। हम चमत्कारों का कार्य-कारण भाव जानकर अपनी समझ और अपनी प्रसन्नता उन चमत्कारों से छीन लेंगे। फिर अपने-आप हमारे मन भलाई के लिए खुल जायँगे और हमारा मस्तक सचाई को अपनाने लगेगा। यही होगी पूरी आजादी। हमारी यह आजादी ही मनुष्य-समाज को सुखी बनायेगी, आजाद करेगी। हम उसी आजाद समाज की मदद पाकर सत्य की असलियत को समझ लेंगे और सत्य, जो ईश्वर के नाम से पुकारा जाता है, उसके दर्शन कर लेंगे। यही होगा सच्चा और महान् चमत्कार !

• • •

: १२ :

सत्य और देवता

आदमी की बुद्धि को चाहिए कि वह जीवन की मूल वात समझे। पर समाज के साथ मिलकर आदमी की बुद्धि, समाज का सहारा पाकर जीवन की मूल वात छोड़ शाखाओं पर वन्दर की तरह दौड़ने लगी है। वह मूल को वैसे ही भूल गयी, जैसे वच्चे पेड़ की डाल पर वैठकर यह भूल जायँ कि डाल उन्हें सँभाले हुए है और डाल काटने लगें। आदमी ने भी जीवन की मूल वात छोड़ एक नहीं, सैकड़ों ऐसे काम निकाल लिये, जिनसे जीवन-मूल को एक वूंद पानी न मिला। पानी न दें तो न सही, वे काम उलटे जीवन-मूल काटते रहते हैं।

विज्ञानों में गणित-विज्ञान सवसे सच्चा विज्ञान है। पर अगर कोई गणित का जानकार नदी के किनारे रेत के कणों की गिनती लगाने वैठ जाय, तो विज्ञान की सचाई क्या करे? वह उसी काम में जुट जायगी और समाज को उस कण गिनने-वाले के लिए खाना जुटाना पड़ेगा। कहीं उसे यह कहने की सूझ गयी कि रेत के कण गिनने से जीवन सफल होता है, ईश्वर के दर्शन होते हैं, देवता प्रसन्न होते हैं और मुक्ति मिल जाती है, तव तो न जाने वह अपने जैसे कितने साथी तैयार कर देगा। फिर उन सवके लिए भी समाज को खाना जुटाना पड़ेगा।

एकांगीपन धोखेबाजी

आदमी की बुद्धि का यह स्वभाव बन गया है कि उसे किसी एक तरफ लगने में बेहद आनन्द आता है। बुद्धि किसी एक तरफ लगे तो लगे, पर वह अपने साथ तन और मन को ले लेती है। फिर आदमी काम करना छोड़ देता है, मेल-मुहब्बत खो बैठता है, रेत के कण गिनने को ही सब कुछ समझता है। अगर उससे यह सवाल किया जाय कि भैंस के अंडे का छिलका कितना मोटा होगा और वह अण्डा कितना लम्बा और कितना गोल होगा, तो वह अपने गणित-विज्ञान के सहारे बिलकुल ठीक जवाब दे देगा। उसने मुर्गी का अण्डा देखा है, मुर्गी के बच्चे की लम्बाई-चौड़ाई और उसका वजन जाना है। उसे सामने रखकर भैंस का अण्डा तैयार करने में उसे कोई दिक्कत नहीं हो सकती।

जब हम छोटे थे, तब एक किताब में एक कहानी पढ़ी थी। उसमें किसी आदमी ने किसी मूरख को एक तरबूज घोड़ी का अण्डा बताकर सौ रुपये में बेचा था। फिर वह उस तरबूज नामी घोड़ी के अण्डे को किनारे पर रख तालाब में नहाने लगा। जैसे ही एक खरगोश उस तरबूज के पास से भागा, वैसे ही तरबूज बेचनेवाले ने कहा, 'लो, तुम्हारे इस अण्डे से घोड़ी का बच्चा निकलकर भाग गया।' वह मूरख उस घोड़ी के बच्चे को पकड़ने भागा और उसके वापस आने के पहले तरबूज बेचनेवाला तरबूज भी चट कर गया। उसके वापस आने पर तरबूज के छिलके उसके हवाले कर दिये। जब वह मूरख घर पहुँचकर घोड़ी के अंडे

की वात लोगों से कहने लगा और लोगों ने उसकी खिल्ली उड़ायी, तो क्या वह यह वात कि घोड़ी का अण्डा नहीं होता, आसानी से माना था ? अजी साहव, वह माना ही न था। कुछ यही हाल आजकल के उन विज्ञानों का है, जो हिसाव के जरिये भैंस का अण्डा तैयार कर लेते और फिर कहते हैं कि इस भैंस के अण्डे को विज्ञान की कसौटी पर कस लीजिये, जब उसका नाप-तौल ठीक है, तो आप भैंस के अण्डे के अस्तित्व से कैसे इनकार कर सकते हैं ?

जिसने थोड़ा-सा भी गणित पढ़ा है, वह यह जानता है कि वृत्त यानी दायरा कितना ही छोटा-वड़ा क्यों न हो, उसकी परिधि यानी उसके मुहित और व्यास यानी कुतर में हमेशा एक ही अनुपात रहेगा। सीधे शब्दों में विलकुल गोल घेरे और वीचो-वीच की लकीर में एक-सी ही घटक-वढ़क होती है और लगभग एक-तीन का रिश्ता रहता है। गणित की इस सचाई को लेकर दुनिया को कितनी ही लम्वी-चौड़ी मान लीजिये, आप एक कोठरी में वैठे-वैठे सारा हिसाव लगा सकते हैं और फिर आप दुनिया की लम्वाई-चौड़ाई दूसरे के सिर इस वजह से थोपना चाहें कि वह विज्ञान की कसौटी पर ठीक उतरती है, तो यह कोई वुद्धि-मानी न होगी, वहुत वड़ी धोखेवाजी होगी।

देवता लड़ाई मिटाने में असमर्थ

मनुष्य-समाज जव अपना वचपन का जीवन विता रहा था, तव वह होशियार था, चालाक नहीं। वह भोला था, इसलिए अपने और सवके प्रति सच्चा था। वह काइयाँ नहीं था, जो

अपने ज्ञान से लोगों को धोखा देने की सोचता। उस समय उसने जो देवता बनाये, वे थे सूरज, चन्द्रमा, आग, पानी, हवा वगैरह। वे सीधे-सीधे उसका काम करते, उसे सुख पहुँचाते और दुःख भी देते थे। मनुष्य-समाज की भोली उमर में तैयार किये देवता अब कहीं नहीं रहे। लेकिन जब मनुष्य-समाज चालाक बना, तो उसने जो देवता तैयार किये, उनका मिटना मुश्किल हो गया। वे आज मनुष्य-समाज के ऊपर सवारी किये हैं। अनेक होने की वजह से वे मनुष्य-समाज के एक हिस्से को दूसरे हिस्से से भिड़ा देते और खून-खराबी करा देते हैं।

उन देवताओं से तंग आकर देश-देश में विद्वानों को यह सूझा कि ये बहुत देवता खतम होने चाहिए—उन्होंने अपने-अपने देश में सब देवताओं का एक सरदार माना और उसका नाम अपनी-अपनी बोली में अलग-अलग रख लिया। जैसे देवताओं के मन्दिर थे, वैसे ही देवताओं के सरदार का मकान बन गया। हरएक देश ने उन मकानों के अपनी-अपनी बोली में नाम रख लिये। यह बात तो बड़ी अच्छी हुई कि देवताओं की झंझट मिटकर एक महादेवता आ गया। पर उस महादेवता के लिए एक और नयी मुश्किल खड़ी हो गयी। वह एक होने पर भी अलग-अलग नाम होने से अनेक हो गया। इस अनेकता का यह नतीजा हुआ कि एक नामधारी महादेवता के भक्त दूसरे नामधारी महादेवता के भक्तों से लड़ने लगे। समझदार जिस लड़ाई को खतम करना चाहते थे, वह लड़ाई और बड़ा रूप ले बैठी। ऐसा क्यों हुआ ? इसकी वजह यह थी कि जो पहले लोगों ने अपने

देवताओं के गुण मान रखे थे, वे सबके सब महादेवता को सौंप दिये गये। वे गुण ऐसे थे, जो पहले खानदानों में लड़ाई कराते थे। अब वे ही गुण महादेवता के अनेक रूप हो जाने से देश-देशों में लड़ाई कराने लगे।

इस लड़ाई से तंग आकर आज बीसवीं सदी में फिर एक नया आन्दोलन उठा है कि ऐसी कोशिश की जाय कि महादेवता के अनेक नाम सब आदमी मान लें और महादेवता के तरह-तरह के मकान एक बराबर का आदर पाने लगें। पर यह आन्दोलन भी अन्त में हमें कहाँ ले जायगा, इस ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। इसलिए यह नया आन्दोलन भी आपसी लड़ाई मिटाने में असमर्थ रहे, तो अचरज नहीं।

देवता, महादेवता मानव की कल्पना

इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि देवताओं को आदमी ने माना है, देवताओं ने खुद आकर आदमियों से अपने-आपको कभी नहीं मनवाया। इस बात के मानने से भी कोई इनकार नहीं कर सकता कि आदमी ने कभी किसी देवता को नहीं देखा। उसने मेह को बरसते देख मेह के देवता को मान लिया और अपनी बुद्धि और विज्ञान के बल पर ऐसी ही एक शकल तैयार कर ली, जैसे वैज्ञानिक भैंस का अण्डा बना लेते हैं। मेह के देवता की तरह आँधी का देवता बन गया। इसी तरह और देवता तैयार हो गये। अब इन सब देवताओं का जो महादेवता बना, उसमें बस इतनी विशेषता रही कि छोटे-छोटे देवताओं में एक-एक ताक़त थी, उसके हाथ में सारी ताकत आ गयी।

आदमी ने जिस तरह देवता नहीं देखे, उसी तरह महादेवता भी नहीं देखा। वह उसको कभी देख भी नहीं पायेगा। अगर देख पाये, तो ऐसे ही देख पायेगा, जैसे आज वह सपने देखता है। आज एक कृष्ण-भक्त भगवान् में वहुत तल्लीन होकर अपने सामने भगवान् को मुकुट बाँधे और चार हाथ लिये देख सकता है। ठीक इसी तरह एक मुसलमान अल्लाह की भक्ति में डूबकर अपने अल्लाह को एक वड़े तख्त पर वड़ी साफ दाढ़ीवाले वड़े नूरानी चेहरे के साथ वैठा देख सकता है। यह महादेवता के दर्शन हुए या उस देवता के, जो हमने कल्पना से तैयार कर रखा है? वस महादेवता तक, इससे ज्यादा आदमी की पहुँच कभी नहीं हो सकती।

महादेवता को मानते हुए वह दिन कभी नहीं आ सकता, जव आपसी लड़ाई खतम हो जाय। क्योंकि हम देवता या महा-देवता को मानकर उससे कुछ माँगे वगैर नहीं रह सकते और इसके सिवा क्या माँग सकते हैं कि वह हमें सुख दे और हमारा दुःख मिटाये। सुख देना और दुःख मिटाना, दोनों एक ही वात है। हमारा सुख-दुःख दूसरों के सुख-दुःख पर निर्भर है। हममें से कोई भी सुखी नहीं हो सकता, जव तक वह किसी दूसरे को दुःख में न डाले। तव महादेवता से जव भी हम सुख माँगेंगे, तो किसीको दुःख में डालने की वात कहेंगे। फिर महादेवता इस दुनिया में किसीको दुःख में डालने के लिए खुद तो आता नहीं। वह तो हममें से ही किन्हीं एक-दो में ऐसी वुद्धि पैदा कर देता है और वही एक-दो दूसरों को दुःख पहुँचाकर हमें सुख देते हैं।

अब बताइये, यह महादेवता किस तरह दुनिया की तकलीफें मिटा सकता है और दुनिया के लोगों को सुख पहुँचा सकता है ?

देवताओं का इतिहास अत्यन्त सामान्य

देवताओं का इतिहास अगर पढ़ा जाय, तो बिलकुल ऐसा मालूम होगा, मानो हम किसी मामूली आदमी का इतिहास पढ़ रहे हैं। हर देवता मामूली आदमी की तरह आदर का भूखा है, मान का प्यासा है, गुस्से का पुतला है, दूसरे देवता से बदला लेने के लिए ऐसे ही तैयार रहता है, जैसे इस लोक का मामूली आदमी। आदमियों में ऐसे आदमी मिल सकते हैं, जो दुश्मन को माफ कर दें, पर एक देवता दूसरे देवता के भक्तों को किसी तरह माफ नहीं कर सकता। किसी मौलवी से पूछ लीजिये, उनका अल्लाह किसी भले-से-भले हिन्दू को कभी हमेशा के लिए जिन्नत में जगह नहीं देगा, जिसने कभी सपने में भी किसी मूरत या बुत की पूजा की है। इसी तरह हिन्दुओं का राम किसी मुसलमान को माफ नहीं करेगा। इसमें राम और अल्लाह का दोष नहीं, आदमी की अकल की बनावट का दोष है। आदमी जब-जब जीवन के मूल से हटकर इधर-उधर की बातें सोचने लग जाता है, तब उसकी बुद्धि धोखा खायेगी ही। अगर ऐसा हुआ होता कि आदमी ने पहले जीवन-मूल को अच्छी तरह समझ लिया होता, उसके समझने से उसमें अपने-आप इन्सानी मोहब्बत जाग गयी होती, फिर वह मोहब्बत अपने-आप सारे इन्सानों में फैल जाती। सारी इन्सानी कौम-मोहब्बत के एक रिश्ते में बाँधकर अगर अपनी बुद्धि को जीवन-मूल छोड़कर किसी दूसरी तरफ लगाती

और तव अनेक देवता गढ़ लेती, तो वे सब देवता एक ही किस्म के होते और आपस में मिलकर रह लेते। तब शायद महादेवता की जरूरत न रह जाती। अगर जरूरत पड़ती, तो ये सभी देवता एक महादेवता की खातिर अपना देवतापन अपने-आप छोड़ बैठते।

अनेक धर्मों, अनेक समाजों में बँटा इन्सान एक ईश्वर की बात नहीं सोच सकता। उसकी बुद्धि एक ईश्वर की कल्पना नहीं कर सकती। एक ईश्वर की कल्पना से पहले सब धर्मों को खतम होना पड़ेगा या खतम करना पड़ेगा। फिर जो धर्म बचेगा, वह सिवा सत्य के क्या होगा और सत्य नामवाला ईश्वर न हमसे प्रार्थना चाहेगा, न पूजा। वह हमसे चाहेगा आपसी मेल, आपसी मोहब्बत और हमें सुख-सन्तोष से रहते हुए देखना।

• • •

: १३ :

सत्य और सर्वज्ञता

आदमी का छोटा-बड़ापन

आदमी की वनावट इस किस्म की है कि उसे न अधूरी कहा जा सकता है, न पूरी। जिस्म के लिहाज से वह अपने हाथ से साढ़े तीन गुना बड़ा है, दोनों हाथ फैलाकर खड़ा हो जाय, तो उँगली से उँगली तक की लम्वाई सिर से एड़ी तक की लम्बाई के वरावर होगी। लम्वे-से-लम्वे नौ फुट तक के आदमी हमने देखे हैं। आमतौर से छह फुट के होते हैं। इतने लम्बे-चौड़े आदमी में जो इन्द्रियाँ काम कर रही हैं, वे और उसका मन, दोनों मिलकर इस छोटे-से आदमी को वेहद लम्बा-चौड़ा वनाये है। उसकी इच्छाओं ने कल्पना के साथ मिलकर उसे इतना बड़ा वना दिया है कि तीन लोक उसके लिए कम पड़ते हैं। यही कारण है कि उसने ऐसी-ऐसी वातें सोच ली हैं, ऐसे-ऐसे देश रच डाले हैं, जो कहीं भी नहीं हैं। पर जव उसके दिमाग में हैं, तब सब जगह हैं।

इस साढ़े तीन हाथवाले आदमी की सबसे कमजोर इन्द्रिय है स्पर्शेन्द्रिय। पर इसे भी कमजोर कैसे कहा जाय? करोड़ों मील दूर सूरज की गर्मी और लाखों मील दूर चन्द्रमा की चाँदनी की ठंढक यह स्पर्शेन्द्रिय जान लेती है। यहाँ यह कहना ठीक न रहेगा कि यह सूरज और चन्द्रमा हैं, जो अपनी गरम और ठंढी

किरणें आदमी की देह तक भेजते हैं, और तब वह गर्मी-सर्दी का अनुभव करता है। क्योंकि ऐसा कहने से उसकी कान और आँख इन्द्रियाँ भी वैसी ही कमजोर रह जायँगी, जैसी स्पर्शेन्द्रिय। क्योंकि कानों तक भी आवाज की लहरें आती हैं और आँखों तक प्रकाश की लहरें। फिर पाँचों इन्द्रियाँ एक ही किस्म की हो जायँगी। इसलिए यही मानना ठीक रहेगा कि स्पर्शेन्द्रिय ऐसी इन्द्रिय है, जो देह के अन्दर ही सीमित है। वह किसी चीज को छूकर ही यह बता सकती है कि वह गरम है या ठंढी, चिकनी है या खुरदरी, हल्की है या भारी, कड़ी है या मुलायम।

चखनेवाली इन्द्रिय इससे कुछ ज्यादा ताकतवाली है। हमारी देह के बहुत कम ऐसे हिस्से हैं, जो ठीक-ठीक यह बता सकें कि उनके सूई किस जगह चुभोयी गयी है, पर जीभ का कुछ हिस्सा ऐसा जरूर है, जो बिलकुल ठीक जगह बता सकता है कि कहाँ नमक की डली या शहद की बूंद रखी गयी है। इसके अलावा स्पर्श इन्द्रिय की अपेक्षा चखनेवाली इन्द्रिय आदमी के काबू से ज्यादा बाहर है। इससे ज्यादा काबू से बाहर देखने और सुननेवाली इन्द्रियाँ हैं। इनका काबू में न रहना ही ऐसी करामात है, जिसने इस छोटे-से आदमी को बहुत बड़ा बना रखा है। वह बैठे-बैठे यह समझ लेता है कि वह फूल तक पहुँच गया, क्योंकि नाक के द्वारा वह उसकी गंध ले सकता है। वैसे ही वह बैठे-बैठे तारों तक पहुँच सकता है, क्योंकि आँखों के रास्ते वह उन्हें देख लेता है। इसी तरह वह बहुत दूर हुई दो चीजों की टक्कर की आवाज कान के रास्ते दूर से सुन लेता है। अब अगर वह यह कहे कि

मैं सारी दुनिया में फैला हुआ हूँ, तो क्या गलत कहता है ? जहाँ उसका यह हाल है, वहाँ वह अपनी आँख अपने-आप नहीं देख सकता, अपने अन्दर की आवाजें नहीं सुन सकता, अपने अंदर की खुशबू और बदबू नहीं सूंघ सकता, न अंदर की चीजों का स्वाद ले सकता और न छू सकता है। इस विचित्रता ने आदमी को बड़ी दुविधा में डाल दिया है।

आदमी एक तरफ नजर डालता है, तो बहुत बड़ा मालूम होता है। दूसरी तरफ नजर डालता है, तो बहुत छोटा मालूम होता है। यानी वह बेहद छोटा और बेहद बड़ा है।

कभी यह सुनकर सबको अचरज मालूम होता है कि आदमी बहुत गहरे प्रकाश को नहीं देख सकता, पर विज्ञान के हर विद्यार्थी को मालूम है कि आदमी की आँखें प्रकाश की खास-खास लहरों को ही पकड़ सकती हैं। बहुत छोटी लहरें और बहुत लम्बी लहरें, दोनों ही आँख से परे हैं। यही हाल आवाजों का है। न आदमी बहुत जोर की आवाज सुन सकता है और न बहुत धीमी। धीमी आवाज के मामले में वह कुत्ते से बहुत पीछे है और रोशनी की कमजोर किरणों के मामले में उल्लू, चमगादड़, शेर, बिल्ली, सभीसे कम। यही हाल गंध का और चखने और छूने का है।

मौत और अमृत की शोध

आदमी ने अपने-आपको सब पशुओं से बड़ा समझ रखा है, इसलिए उसे यह बरदाश्त नहीं कि जो आवाज कुत्ता सुन सके, उसे वह न सुन सके। जो काम उल्लू कर सके, उसे वह न

कर सके। वस, होड़ की इस आदत ने आदमी को खोज-बीन में लगा दिया। उसने ऐसी-ऐसी चीजें सोच निकालीं, जिनकी मदद से वह आँख, कान, नाक के मामले में वहुत से और प्राणियों से कहीं आगे वढ़ गया। उसे यह भी मालूम है कि कुछ प्राणी ऐसे हैं, जो जिस दिन से पैदा हुए हैं, आज तक कभी मरे नहीं और इसलिए उसने अमृत ढूंढ़ने की कोशिश की, पर अभी तक वह सफल नहीं हो पाया। इस वीसवीं सदी की नयी शोध ने तो उसे कुछ हताश भी किया है। वह शोध यह है कि पहले प्राणी मरते ही न थे, पर न मरने में एक वहुत वड़ा नुकसान यह था कि उनका ज्ञान उतना ही रहता, जितना उनमें होता था। इसलिए उन अमर प्राणियों ने मौत का आविष्कार किया, तव वे कहीं ज्ञान वढ़ा पाये। इस शोध का यह नतीजा हुआ कि अमृत की शोध तो जारी है, पर उससे अव यह आशा नहीं रखी जाती कि उसे खाकर आदमी कभी मरेगा ही नहीं। जो प्राणी अमर हैं, वे सव एक कोटिवाले हैं। उनका यही काम है कि वे एक से दो हों और दो से चार हों, और इसी तरह वढ़ते रहें। आज भी आदमी की आँखों के सामने वटवृक्ष है, जो अपनी मौत मरता कभी नहीं देखा गया। वह अपनी जड़ें अपने जीते-जी पैदा करता और आगे वढ़ता रहता है। वटवृक्ष की ही किस्म की कुछ घास है, जो इसी तरह वढ़ती रहती है।

कल्पना और इच्छा

आदमी की जानकारी जैसे-जैसे वढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसकी कल्पना और इच्छा भी वढ़ती है। इसलिए जानकारी

की दौड़ में वह जितना आगे बढ़ता है, उतना ही उसे ऐसा मालूम होता है कि मानो उसे बहुत दौड़ना है। यह दौड़ कहाँ खतम होगी, इसका वह अन्दाज भी कैसे लगाये ? वृत्त का हाल ही इस किस्म का है कि जितने आगे बढ़ेंगे, वृत्त उतना ही बड़ा होता चला जायगा। आदमी का ज्ञान भी वृत्ताकार है। मशहूर वैज्ञानिक आइन्स्टाइन का कहना है कि जो चीज वृत्ताकार है, वह अनंत नहीं हो सकती। पर हमारा ज्ञान हमें यह कहने के लिए मजबूर कर रहा है कि वृत्ताकार में फैलनेवाली चीज ही अनंत होती है। जिस तरह पानी की लहरें वृत्त में बढ़ती हुई दूर तक चली जाती हैं, वैसे ही प्रकाश की लहरें वृत्त में बढ़कर अनंत काल तक अनंत में फैलती रहेंगी। हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि यह है आदमी की कल्पना का हाल। उस कल्पना का, जो मामूली ज्ञान की बेटी है और वह मामूली ज्ञान खुद भी जगत् के भंडार की एक बूंद के बराबर नहीं है।

आदमी कल्पना के बल पर शेर से कुश्ती लड़ सकता है, हाथी को कन्धे पर बिठा सकता है। किसके हाथी और शेर, वह सारी पृथ्वी को कन्धे पर रखकर भाग सकता है। किसकी पृथ्वी, वह तीन लोक को अपनी जेब में रख सकता है। उसे यह सोचने की जरूरत नहीं कि वह तीनों लोकों को जेब में रखकर खड़ा कहाँ होगा।

ज्ञान से अज्ञान का क्षेत्र बड़ा

अब सोचिये, अगर आदमी अपनी कल्पनाओं को कागज पर लिख डाले,—ऐसा कवि करते रहे हैं, करते हैं और करते रहेंगे—

तो वह लिखा हुआ फिर मामूली आदमियों में ऐसी भावना पैदा कर देगा कि जिन्होंने यह लिखा, वे सचमुच वैसे रहे होंगे। अगर वे वैसे न रहे हों, तो उन्होंने वैसा कोई आदमी तो जरूर देखा होगा। अब बताइये, वे कहाँ गलती कर रहे हैं? बड़े-बड़े ज्ञानियों की अनुभवों के बाद यही राय है कि जैसे-जैसे आदमी का ज्ञान बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे अज्ञान का क्षेत्र उनके ज्ञान के क्षेत्र से कई गुना बढ़ जाता है। *यानी जो जितना ज्ञानी है, वह उससे कई गुना अज्ञानी है।* दूसरे मानों में बड़ा ज्ञानी अज्ञानी ज्यादा है और ज्ञानी कम। उन्हीं अनुभवियों के आधार पर हम यह कह सकते हैं, *ज्ञानी होने का इसके सिवा कोई अर्थ नहीं हो सकता कि वह अपने अज्ञान को अज्ञानी की अपेक्षा खूब अच्छी तरह* जानता है। हम कितने अज्ञान हैं, यह जानने के लिए इतने ज्ञान की जरूरत है, जितना ज्ञान आदमी उमरभर प्राप्त नहीं कर सकता। *जहाँ यह कहा जा सकता है कि ज्ञान अनन्त है, वहाँ यह भी तो मानना पड़ेगा कि हर प्राणी अनन्त ज्ञानी नहीं है, अनन्त अज्ञानी है। तीन लोक आकाश के अन्दर हैं। पर उसके बाहर अलोकाकाश है और अलोकाकाश लोकाकाश से अनन्त गुना बड़ा है।* इसलिए अज्ञान हमेशा अनंत गुना बड़ा रहेगा। अगर किसीको अनंत ज्ञानी मान लिया जाय, तो वह अनंतानंत अज्ञानी होगा।

सर्वज्ञ का प्रश्न

अब जरा उल्टे चलिये। जो अनंत अज्ञानी है, वह अनंत ज्ञानी नहीं हो सकता। पर ऐसा भी नहीं कि वह बिलकुल ज्ञानी ही न हो। *हर अनंत अज्ञानी दुनियाभर के आदमियों से*

वड़ा ज्ञानी होगा। क्योंकि किसी आदमी को अपने अनन्त अज्ञान का ज्ञान हो ही नहीं सकता, जव तक कि वह दुनिया में जितना ज्ञान है, उस सवको हासिल न कर ले। अव जरा और नीचे चलिये। जो अपने को वहुत अज्ञानी समझता है, वह जरूर खासा पूरा ज्ञानी न रहेगा। इसी तरह नीचे-नीचे जाने पर एक वह अवस्था आ जायगी, जव आदमी यह समझने लगेगा कि मैं विलकुल अज्ञानी नहीं हूँ। जो कहता है कि मैं विलकुल अज्ञानी नहीं हूँ, वह सर्वज्ञ नहीं तो क्या है ? इसलिए सर्वज्ञ के माननेवालों को जव ऐसे आदमी से पाला पड़ जाता है, जो यह कहता है कि सर्वज्ञ नहीं हो सकता, तव वे उससे सवाल पूछते हैं कि इसके तो यह माने हुए कि तुमने सव काल और सव जगह देखकर यह वात कही है कि सर्वज्ञ नहीं हो सकता, इसलिए तुम ही सर्वज्ञ हुए। क्या इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि सर्वज्ञ वही है, जो यह कहता है कि सर्वज्ञ नहीं हो सकता ?

ऊपर की दलीलें विलकुल ऐसी हैं, जैसे वाल की खाल उधेड़ी जा रही हो। पर हैं सीधी-सादी और विलकुल वैसी हैं, जैसे वड़े-वड़े दार्शनिक किया करते हैं और इन दलीलों में दार्शनिकों के लिए वहुत-कुछ मिलेगा। इन्हें छोड़िये, अव जरा सीधे-सादे ढंग से चलिये।

सर्वज्ञता की दलीलें

आदमी के दिमाग ने सर्वज्ञ की वात सोची क्यों ? इसमें एक कारण तो यह हो सकता है कि उसे कुछ आदमी कम ज्ञानी मिले, कुछ ज्यादा ज्ञानी मिले, कुछ वहुत ज्यादा ज्ञानी मिले।

इसलिए उसने सोच डाला कि कुछ सब ज्ञानी भी होने चाहिए और मेहनत से हो सकते हैं। पर उसकी यह सूझ इतनी ही वेतुकी है, जितना एक आदमी यह देखकर सोचे कि एक आलू दो माशे का होता है, एक पाँच माशे का, एक दस तोले का, एक चालीस तोले का; इसलिए एक इतना बड़ा भी हो सकता है, जितनी बड़ी हमारी पृथ्वी। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि खूब खाद चाहिए और उसके उगने के लिए बहुत बड़ी जमीन। अब अगर सर्वज्ञ के लिए ऊपरवाली सूझ ठीक है, तो बड़े आलू के लिए नीचेवाली सूझ क्यों ठीक नहीं? फिर वह आलू वहीं क्यों रुकेगा? वह भी अपने आलू को अनन्ताकाश तक ले जा सकता है और उसे रोकेगा कौन?

दूसरा कारण यह हो सकता है कि संसार अनंताकाश में फैला है और यह अनंताकाश चीजों से भरा है। चीज का ही दूसरा नाम ज्ञेय है। ज्ञेय के माने है ज्ञान का विषय, इसलिए हर चीज को ज्ञान का विषय होना जरूरी है, इसलिए सर्वज्ञ होना चाहिए। नहीं तो वह ज्ञेय ही नहीं रह जायगी।

यह दलील भी बड़ी पोच है। अनंताकाश है, अनंत जीव हैं, सब जीव ज्ञानी हैं, फिर कोई चीज ज्ञान का विषय होने से बची कहाँ, जिसके लिए सर्वज्ञ की जरूरत पड़ गयी? चींटी की देह चींटी के ज्ञान का विषय बनी है, इसलिए वह ज्ञेय है। उसे ज्ञेय बनने के लिए किसी सर्वज्ञ की जरूरत नहीं। यही हाल दुनिया की और सब चीजों का हो सकता है। जो चीज जहाँ है, वहाँ प्राणी मौजूद है। वह चीज उन प्राणियों के ज्ञान का

विषय बन सकती है। अब रह गया ज्ञान खुद, उसे सबने ज्ञान का विषय माना ही है, अब सर्वज्ञ की कहाँ जरूरत रह गयी ?

तीसरा और असली कारण यह हो सकता है और शायद यही रहा हो कि जब ईश्वर जैसे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् के हाथ से कर्तापने का राज्य छीना गया, तब उन दिनों की जनता घबरा उठी होगी। उसे जरूरत हुई होगी कि फिर यह राज्य किसीके सिपुर्द किया जाय। बस, वह ईश्वरीय राज्य किसीके सिर थोप दिया गया और वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् बन गया। हमने नानी की कहानियों में सुना था कि ऐसे राजाओं की राजगद्दी भरने के लिए पहले यह तरीका था कि जिसे कोई औलाद न होती थी, वह राजा हुक्म निकालता था कि जो कोई अमुक दिन सुबह होने के पहले-पहले नगरी में दाखिल होगा, वही राजा बना दिया जायगा। उसी सिलसिले में यह भी सुना था कि एक घसेरा आया और वह राजा बना दिया गया और दूसरे दिन ही उसे सचमुच वह ताकत हासिल हो गयी, जो राजा को हासिल थी। नानी की कहानी छोड़िये। आज बीसवीं सदी में बच्चासक्का अफगानिस्तान के बादशाह को गद्दी से उतारकर खुद बादशाह बन गया और कुछ दिनों राज्य कर गया। इसे भी छोड़िये। अब आये दिन राजावाले देश राजाओं को खतम कर रहे हैं और उनकी जगह सभापति के नाम से किसीको बैठा देते हैं। उसे वह ताकत हासिल हो जाती है, जो राजा को होती है। सब लोग उससे वैसे ही डरने लगते हैं, जैसे राजा से डरते हों।

महात्मा गांधी तो यहाँ तक कह गये थे कि किसी मेहतरानी की लड़की को क्यों न गवर्नर और गवर्नर-जनरल बनाया जाय। आज जब आदमी अपनी आँखों यह तमाशे देख रहा है—आदमी हमेशा से परलोक के मामले में उसी ढंग से सोचता आया है, जिस ढंग से इस लोक में हो रहा है—इसलिए अगर उसने ईश्वर को गद्दी से उतारकर वह गद्दी किसी आदमी को सौंप दी, तो वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् क्यों न हो गया? आदमी जिसे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् कहे, वही सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्। किसने पत्थर को देवता बनते नहीं देखा। अब वह पत्थर का देवता देवता का कौन-कौन नाटक खेल सकता है, यह भी आदमी की अकल अच्छी तरह जानती है। वह ईश्वर बना हुआ आदमी सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता का कितना नाटक खेल सकता है, यह बात भी आदमी की अकल से परे नहीं है। पर आदमी जिस तरह झूठे सपने देखकर हँसता और रोता है और अपने-आपको सच्ची दुनिया में मान लेता है—जिस तरह वह नाटक-सिनेमा देखकर नकली दुनिया में हँस-रो लेता है, और यही समझ लेता है कि वह सच्ची दुनिया में रह रहा है—वैसे ही वह सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता का नाटक देखकर अपनी तबीयत खुश कर लेता है। वह यही समझ लेता है कि वह सचमुच सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् के दर्शन कर रहा है। जैसे वह सपने में सपने की चीजों की परीक्षा नहीं करता, नाटक-सिनेमा में नाटक की परीक्षा नहीं करता, वैसे ही वह धर्म के खेलों में सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् की परीक्षा की झंझट में नहीं पड़ता। सर्वज्ञ के मानने की यही असली जरूरत थी।

सत्य एक कसौटी या बरमा

सत्य एक कसौटी है। वह खुद खोटे-खरे सोने पर न इल्जाम लगाती और न सराहना करती है। हाँ, आदमी उस पर सोना कसने लगे, तो वह साफ बोल उठेगी कि यह सोना खोटा है और यह खरा। सत्य एक आग है। वह सूखे को ही नहीं जलाती, उसमें गीले को भी जलाने की ताकत है। वह लकड़ी ही नहीं, लोहे को भी भस्म कर सकती है। पर वह आग किसीको भस्म करने की नहीं सोचती, और न किसीको तपाकर चमकाने या काला करने की सोचती है। हाँ, आदमी जिस नीयत से यानी भस्म करने या परखने की नीयत से जिस चीज को आग में रखेगा, वह भस्म कर लेगी या परख लेगी। अब उससे सर्वज्ञता परखवाइये या सर्वशक्तिमत्ता। उसके लिए सब एक है।

सत्य एक बरमा है, जो सोने की डली में अंदर तक सूराख करके यह बता सकता है कि यह डला कहाँ तक सोना है। पर सत्य का यह बरमा भी अपने-आप कुछ नहीं करता। आदमी चाहे, तो उससे परीक्षा करा ले। वह सत्य का बरमा जब सर्वज्ञता के डले में अन्दर तक छेद करता जाता है, तो आदमी चट समझ लेता है कि सर्वज्ञता कितने गहरे तक गयी है और कहाँ से अज्ञान शुरू हो जाता है। सत्य को कुछ लोगों ने जो परमेश्वर नाम दे डाला है, वह ठीक ही है। पर मुश्किल यही है कि सत्य और सर्वज्ञता, दोनों एक आदमी में नहीं रह सकते। शायद इस वजह से कि दोनों ही ईश्वर हैं या शायद इस वजह से कि उनमें कोई एक प्रकाश है और कोई एक अँधेरा।

सच्चे और ज्ञानी की नजर अपने अज्ञान पर

दुनिया में एक वड़ी मुश्किल है। जो फलदार दरख्त होते हैं, उनकी डालियाँ झुकी होती हैं, फल गिरे कि डालियाँ ऊपर उठीं। वह न उठना चाहें, तो भी उठना पड़ता है। प्रकृति वनी ही इस तरह की है। ठीक इसी तरह जो ज्ञानी हैं, वह विनम्र होते हैं, सच्चे होते हैं। जव भी उनसे पूछा जाय, वे अपने को ज्ञानी कम और अज्ञानी ज्यादा वताते हैं। यह झूठ नहीं होता, इसमें विनम्रता होती है, सरलता होती है। सच्चे आदमी की विनम्रता झूठी नहीं होती, दिखावे की चीज नहीं होती। वात सिर्फ इतनी होती है कि ज्ञानी और सच्चे आदमी की नजर हमेशा अपने अज्ञान की तरफ रहती है। ऐसा न हो, तो वह आगे वढ़ कैसे पाये? इसलिए वह सीधे-सादे शब्दों में अपने को अज्ञानी कह देता है। मालूम होता है, सत्य और ज्ञान साथ-साथ रह सकते हैं, पर सत्य और सर्वज्ञता साथ-साथ नहीं रह सकती और जहाँ तक हमारी अकल जाती है, हम यही समझते हैं कि *कभी किसी आदमी ने अपने को सर्वज्ञ न कहा होगा। दूसरों ने भले ही उसे सर्वज्ञ और महा-सर्वज्ञ के नाम से पुकारना शुरू कर दिया होगा।*

सर्वज्ञ और भगवान्, ये दोनों शव्द आज भी प्रचार में हैं। भगवन् और भगवान् कहकर वोलने का रिवाज है। "आप सव कुछ जानते हैं" यानी आप सर्वज्ञ हैं—यह मुहावरा घर-घर में फैला है और यह व्यावहारिक सत्य है। सर्वज्ञ व्यावहारिक कसौटी पर ठीक उतर सकता है, सत्य या निश्चय की कसौटी पर नहीं।

• • •

: १४ :

सत्य और सुख-दुःख

दुःख जीवन का जरूरी गुण

धर्म का उपदेशक बोलना शुरू करने पर कहता है, "सब सुख चाहते हैं, दुःख से बचना चाहते हैं" पर शायद ही किसीने यह सोचा हो कि सुख-दुःख ऐसे मिले हैं, जैसे दूध-पानी। सुख बिना दुःख के हासिल नहीं होता।

जिसे देखो, दुःख से भागना चाहता है। लोगों ने ईश्वर के नाम गिनाते हुए एक नाम बताया, 'दुःख-मेटनहार।' रोज मंदिर में यह विनती सुनी जा सकती है :

"सुख देना दुःख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लेना भगवान्॥"

हमने छुटपन में यह विनती खूब गायी है। अगर भगवान् ने सचमुच हमारी विनती सुन ली होती और हमारा दुःख मेट दिया होता, तो आज ये पंक्तियाँ लिखने के लिए हम जीवित न रहते। 'दुःख-दर्द से परे हो गया' यह एक मुहावरा है, जिसका मतलब है 'मर गया'। दुःख-दर्द का न रहना मौत है। पत्थर को दुःख-दर्द नहीं होता, क्योंकि उसमें जान नहीं होती। दुःख-दर्द जान के साथ लगा है। वह जीवन का जरूरी गुण है। उसके मेटने-मिटाने की सोचना जीवन मिटाने की सोचना है।

दर्द : वेदना

संस्कृत में 'दर्द' के लिए शब्द है 'वेदना'। वेदना शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जानकारी। वेदना दो तरह की है : एक अनुकूल, दूसरी प्रतिकूल। इन्हींका नाम 'साता' और 'असाता' है। अनुकूल वेदना का नाम सुख और प्रतिकूल वेदना का नाम दुःख। अब सुख-दुःख दोनों एक तरह की जानकारी रह गये। कौन ऐसा होगा, जो यह चाहे कि उसकी जानकारी उससे छीन ली जाय? दुःख मिटने का इसके सिवा क्या अर्थ है कि दुःख की जानकारी मिट जाय। क्योंकि दुःख-दर्द अपने तन की तकलीफ से ही नहीं होता, दूसरों का दुःख देख और ज्यादा होता है। एक कवि कह बैठा :

"दर्द दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को।
वर्ना ताअत के लिए कुछ कम न थे करोबियाँ॥"

उस शायर के हवाले से यह कहा जा सकता है कि आदमी दर्द के लिए पैदा हुआ है।

दुःख का महत्त्व

बच्चा पैदा होते ही रोता है, नहीं तो दाई ठंडे पानी का छींटा देकर रुलाती है। न रोने के माने हैं, पैदा होने का ज्ञान न होना। अब दुःख-दर्द जीवन की जानकारी का दूसरा नाम रह जाता है। बच्चा रोता क्यों है? सिर्फ इसलिए कि उसे भूख की तकलीफ होती है। उसका रोना सिवा इसके कुछ भी नहीं कि वह रोकर बता दे कि वह भूखा है। अगर बच्चा भूख की तकलीफ

लिये पैदा न हो, तो क्या वह कुछ दिन भी जी सकता है ? इसे छोड़िये। अगर उसकी माँ को उसके पैदा होने की तकलीफ न हो, तो बच्चा कहीं उतरकर मर जाय। बच्चे के पैदा होने की तकलीफ प्रकृति की ऊँचे दरजे की देन है। इस तकलीफ और दुःख को अगर कोई मूरख मिटाने की सोचने लगे, तो यही समझना चाहिए कि वह दुनिया से उठ जाने की बात सोच रहा है।

लकवा एक बीमारी है। उसे पक्षाघात भी कहते हैं। उस बीमारी में आदमी का अंग सुन्न पड़ जाता है। उसका वह अंग दुःख-सुख मानना छोड़ देता है। हमने किसीको नहीं देखा कि उस बीमारी के होने पर उसने खुश होकर मिठाई बाँटी हो या उसके कुटुम्बियों ने खुशी मनायी हो। क्या यह उसके और उसके कुटुम्बियों के लिए खुशी का मौका न था कि आधी देह का सुख-दुःख मिट गया। हमने ऐसे बीमार को एक बार अपनी आँखों देखा है। उसकी पत्नी से बातचीत की। उस बीमार का पाँव पास रखी अँगीठी की आग से जलने लगा। न उसे पता लगा, न हमें। जब मांस की गंध आयी, तब इधर-उधर नजर डालने पर पता चला कि मरीज का पाँव जल रहा है। अब समझ में आ गया होगा कि दुख-दर्द आदमी को जीते रहने और सही-सलामत रखने के लिए कितना जरूरी है ? इस जरूरी चीज को मिटाने के लिए न जाने आदमी ने कितने देवता तैयार कर लिये, कितनी देवियाँ बना लीं, कितनी प्रार्थनाएँ रच डालीं। इस तरह वह अंध-विश्वास के जाल में फँस गया, जिससे निकलना मुश्किल हो रहा है।

दुःख एक अलार्म

जिस तरह आम के अचार को बरसों बनाये रखने के लिए तेल जरूरी है, वैसे ही दुःख-दर्द आदमी को सौ-सवा सौ बरस जीते रखने के लिए जरूरी है। दुःख-दर्द की बात लेकर किसी दार्शनिक ने एक कथा गढ़ डाली, जिसका भाव है, ईश्वर ने पहले आदमी बेदुःख-दर्द का पैदा किया। उसे कोई तकलीफ न होती थी। नतीजा यह हुआ कि आदमी की नस्ल दुनिया के पर्दे से खतम होने लगी। एक आदमी ईश्वर के पास पहुँचा और दुःख-दर्द माँगकर लाया। तभी तो आज दुनिया में इतने आदमी जीवित हैं। दुःख-दर्द का भाव समझाने के लिए कथा सुन्दर है। सचमुच देह का दुःख देह बनाये रखने के लिए जरूरी है। जब तक दुःख-दर्द देह को बनाये रखने के लिए जरूरी बना रहेगा, तब तक यह इतना दुःखदायी नहीं हो सकता कि आदमी सह न सके। आदमी ने इञ्जन में भाप की एक नली रखी है, जिससे वह ज्यादा भाप निकाल देता है, इञ्जन का बायलर फटने से बच जाता है। प्रकृति ने आदमी को ऐसा बनाया है कि जब तकलीफ ज्यादा होती है और इन्द्रियाँ उसे नहीं सह सकतीं, तब उसमें मूर्च्छा या बेहोशी आ जाती और तकलीफ कम हो जाती है। रहा थोड़ा दुःख। वह बेहद जरूरी है। वह दुःख न होता, तो वह कुछ करने की न सोचता। दुःख असल में अलार्म का काम करता है। अलार्म सुनकर आदमी समझ जाता है कि उसके जागने या काम करने का समय हो गया और उठ बैठता है। मान लीजिये, एक बच्चे को मच्छर ने काट खाया। अब अगर मच्छर के काटने से उसे दुःख न हो, तो वह क्यों

रोये ? जव वह न रोयेगा, तो उसकी माँ को कैसे पता चलेगा कि उसे मच्छर काट रहा है और माँ को पता न लगेगा, तो वच्चा मलेरिया-ज्वर से कैसे वचेगा ? वह अपनी जान खो देगा। अव वताइये कौन ऐसा वेवकूफ होगा, जो यह चाहेगा कि उसके वच्चे को दुःख न हुआ करे। दुःख-दर्द यह वताता है कि क्या नहीं होना चाहिए। वच्चा रोकर माँ को वताना चाहता है कि उसे मच्छर काट रहा है और यह उसे नहीं काटना चाहिए। वताइये, इसमें क्या वुराई है ?

अव दूसरी मिसाल लीजिये। वच्चा जितनी जोर से रोता है, उतनी जोर से आदमी नहीं रोता। वच्चे को वाहरी तकलीफ ज्यादा होती है। प्रकृति का यह प्रवन्ध वड़े मार्के का है। क्योंकि वच्चे को अपनी तकलीफ दूर करने के लिए दूसरों की जरूरत पड़ती है। अव अगर वह जोर-जोर से न रोये, तो उसको दूसरों की मदद कैसे मिले और जव तक तकलीफ ज्यादा न हो, तव तक वह जोर से कैसे रोये ? तकलीफ में जोर से रोना उसके लिए जरूरी है।

वच्चे को वाहरी तकलीफ होती है, भीतरी नहीं। आदमी की तरह उसके मन के सितार का दुःखरूपी तार वहुत देर तक झन्नाता नहीं रहता। शायद वह विलकुल नहीं झन्नाता। जरा पुचकारने पर वच्चा रोना वन्द कर देता है, हँसने लगता है। उसे दूसरे की मदद की जरूरत थी, वह मिल गयी। वच्चों को वचपन की तकलीफें याद नहीं रहतीं। उन्हें वह याद करने की कोशिश करे, तो भी याद नहीं कर सकता। सचमुच वच्चे को

रोते देख आदमी जितना दुःख मानता है, उसका सौवाँ हिस्सा वच्चे को दुःख नहीं होता। ऐसा क्यों होता है ? यह हम आगे समझायेंगे। दुःख-सुख का सारा भेद इसीमें है। वच्चा हमारी नजरों में वहुत दुःखी है, अपने लिए नहीं। असल में नासमझों की वाहरी तकलीफ वहुत होती है। ऐसा न हो, तो दूसरों में दया कैसे पैदा हो और क्यों दूसरे उनकी मदद को दौड़ें ?

दुःख-दर्द और तन-मन

समझ पैदा होने पर वाहरी तकलीफ कम हो जाती है, भीतरी वढ़ने लगती है। सवको मालूम है, वच्चा जहाँ समझदार हुआ, वहाँ इस योग्य हो जाता है कि हँसी और गुस्से के भावों को अलग-अलग पहचान सके। अव तकलीफ का केन्द्र वाहर से उठ अन्दर पहुँच जाता है। अगर कोई गुस्सा होकर वच्चे को थप्पड़ दिखाये या आहिस्ता मारे, तव भी वह दुःख मानेगा और रो देगा, और अगर हँसकर कोई उसे जोर से थप्पड़ मार दे, तव वह रोने की जगह हँस देगा। अव वह दुःख-सुख मन से मानता है, देह से नहीं। वस, जैसे-जैसे आदमी में वुद्धि-चेतना वढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दुःख-सहन का अभ्यास होता जाता है।

दुःख मिटाने के लिए प्रार्थना क्यों ?

दूसरों की तकलीफ को आदमी तकलीफ मान सकता है, वच्चा नहीं। दूसरों की तकलीफ का अनुभव भी होता है। जव दुःख का केंद्र तन से हटकर मन-मस्तक में जाकर जगह ले लेता है, तव आदमी के हाथ में यह ताकत आ जाती है कि वह दुःख को चाहे जितना घटा-वढ़ा ले। वढ़ाने की हद है, घटाने

की हद नहीं। आदमी दुःख को घटाकर सुख में बदल सकता है। यही कारण है कि एक तरफ आदमी का सिर कटता रहता है और दूसरी तरफ हँसता रहता है। किसने नहीं सुना कि कुछ आदमी फाँसी का हुक्म सुनकर फाँसी पाने तक कई सेर बढ़ जाते हैं। सिपाही अपने तन की बड़ी-से-बड़ी चीरफाड़ अपनी आँखों देख सकते हैं और हँसते रह सकते हैं। अपना सिर अपने-आप काटकर दे डालने की बात देखी नहीं, सुनी है; पर झूठ नहीं हो सकती। आदमी के लिए यह मुश्किल काम है, असम्भव नहीं।

अब यह बताइये, इस दुःख के दूर करने और मिटाने के लिए देवी-देवताओं से प्रार्थना किसलिए और ईश्वर की खुशामद किसलिए ? छोटी-मोटी तकलीफ बड़े काम की चीज है। अगर वह देवी-देवता या ईश्वर से मिटवा लेंगे, तो मिट जायँगे। रही देह की बड़ी-बड़ी तकलीफें, उनके लिए प्रकृति में प्रबंध है, बेहोशी आ जाती है। अब रही मानसिक तकलीफें, उसकी कुंजी बुद्धि और आत्म-चेतना के हाथ में है, फिर किसीकी मदद की क्या जरूरत ?

आदमी अपनी बुद्धि से दुःख बढ़ाता है

दुःख-दर्द उन्हींको बहुत होता है, जो देह में निवास करते हैं। यह देह का दुःख-दर्द उन आदमियों के क्यों कम नहीं होता, जिनमें बुद्धि आयी है ? बुद्धि तो इसलिए है कि दुःख को कम करे। असल में आदमी बुद्धि से दुःख बढ़ाने का काम लेता है, कसूर उसका है। वह दुःख बढ़ाने का कसूर करके देवी-देवताओं का जाल रच ले, तो क्या यह सत्य की बेइज्जती करना नहीं है ?

दूसरे शब्दों में आदमी के अन्दर दो वक्स हैं। एक में सुख भरा है, दूसरे में दुःख। दोनों के ताले वन्द हैं। दोनों कुंजियाँ आदमी के हाथ में हैं। वह आजाद है, चाहे सुख का वक्स खोल ले, चाहे दुःख का। अब अगर वह वार-वार दुःख का वक्स खोले, तो इसे कोई क्या करे ? दुःख-सुख के वारे में जव आदमी इतना आजाद है, तव यह अच्छा नहीं मालूम होता कि वह उन चीजों को हाथ फैलाकर दूसरे से माँगे।

सुख से दुःख ज्यादा जरूरी

अगर आदमी से दुःख-दर्द छीन लिया जाय, तो वह फिर किसीको प्यार न करे। मौत की उसे कोई जानकारी न रहे। फिर आदमी क्या रह जायगा, यह कहना मुश्किल है। जिसे देखो, दुःख मेटने की वात सोचता है। सुख मेटने की कोई नहीं सोचता। अगर वह जरा सोचे, तो मालूम हो जाय कि वह सुख पाने की कभी सोच नहीं सकता, अगर दुःख उसको सुख पाने की वात न सुझाये। दुःख उसके वड़े काम की चीज है। दुःख उसको सुख की तरफ ढकेलता है। अगर उसे भूख का दुःख न हो, तो वह खाने की वात न सोच सके। सुख से कहीं ज्यादा दुःख जरूरी है। सुख संसार से उठ जाय, तो आदमी का कुछ न विगड़े। दुःख खुद आदमी से सुख जैसी कोई और चीज तैयार करवा ले, लेकिन अगर दुःख मिट जाय, तो आदमी कहीं का न रह जाय। भूख का दुःख न हो, तो क्यों खाये ? जव न खाये, तव क्यों न मरे ? जव मर गया, तव सुख कौन भोगे ? इसलिए सुख मेटने-मिटाने की प्रार्थना समझ में आती है, दुःख

मेटने-मिटवाने की नहीं। अब रही सुख मेटने की प्रार्थना। सो सुख मेटने-मिटानेवाले दुनिया में बहुत हैं। दुनिया में हो ही क्या रहा है ? हर प्राणी दूसरे के सुख मेटने में लगा है, इसलिए प्रार्थना की क्या जरूरत है ?

दूसरों के दुःख के लिए भी प्रार्थना कहाँ ?

सवाल हो सकता है, यह हुई अपने दुःख-दर्द की बात, पर दूसरों का दुःख देखकर जो हमें दुःख होता है, वह कैसे मिटे ? उसके लिए प्रार्थना की जरूरत रह जाती है। जहाँ तक हम समझते हैं, दूसरों का दुःख-दर्द मिटाने के लिए कोई प्रार्थना करता नहीं। लोग कहेंगे, हर माँ अपने बेटे का दुःख दूर करने के लिए प्रार्थना करती देखी गयी है, इस खुली बात से कैसे इनकार किया जा सकता है ? हम भी इस खुली बात से कहाँ इनकार करते हैं, पर कहना यह चाहते हैं कि हरएक माँ को अपने बेटे को दुःखी देखकर खुद दुःख होता है और वह बेटे का दुःख दूर होने की प्रार्थना करके अपना दुःख दूर करना चाहती है। ऐसी माताएँ मिल सकती हैं, जो धर्म-गुरु के कहने पर अपने बच्चे का दुःख मिटाने के लिए दूसरे बच्चे की जान ले लें। तब यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरों के दुःख मिटाने के लिए प्रार्थना की जरूरत है।

सामाजिक विपत्ति में भी प्रार्थना नासमझी

भूकंप में सैकड़ों आदमी मर जाते हैं। यही हाल आग लग जाने, रेल लड़ जाने, बिजली गिर जाने से या बाढ़ आ जाने से होता है। क्या इसके लिए भी प्रार्थना नहीं करनी चाहिए ?

इस सवाल का जवाब देने के पहले हम यह कहेंगे कि जब कभी ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं, तब नासमझ ही प्रार्थना में लगते हैं। समझदार तो एकदम उन लोगों की मदद के लिए दौड़ते हैं, जो दुःख में घिरे होते हैं, वे जहाँ तक बने, उन्हें आफत से निकाल-कर उनका दुःख दूर करते हैं। इससे हटकर यह मान लीजिये, सारे समाज ने एक आदमी का रूप ले लिया है, तब भूकम्प जैसी बड़ी दुर्घटनाएँ समाजरूपी एक आदमी के लिहाज से इतनी छोटी रह जाती हैं, जितनी एक आदमी के पाँव में मामूली चोट। ऐसे मौकों पर आदमियों में दुःख सहने का या दुःख को सुख में बदलने का बेहद बल आ जाता है। हमने बिहार के भूकम्प का हाल अपनी आँखों देखा। वहाँ के लोगों का कहना था कि लोगों ने हँस-हँसकर जानें दीं। जो अचानक मरे, मर गये; जो बच रहे, उनमें न जाने कहाँ से इतना बल आ गया कि उस बल को पाकर रोने की जगह हँसने लगे। ऐसा ही अनुभव किसी फारसी कवि को हुआ। उसने लिखा, "मिलकर मरने में बड़ा आनंद आता है।" आनंद को छोड़िये, आइये दूसरी तरफ विचार करें।

भविष्य न जान पाना प्राकृतिक प्रबंध

अगर आज कोई ऐसा इश्तहार निकाले कि वह ऐसी औरत से शादी करना चाहता है, जिसे वह रोज सौ जूते मारा करेगा, जब उसके जी में आयेगा, उसका हाथ काटकर फेंक देगा, उसके पाँव काटकर फेंक देगा, उसका सिर काटकर फेंक देगा या जो जी में आयेगा करेगा, तो क्या दुनिया में ऐसी औरत मिल सकती है, जो उससे शादी करने को तैयार हो जाय? अगर वही

ऊपर बतायी शर्तों में से कोई शर्त न बताकर सिर्फ शादी करने का इश्तहार दे और शादी हो जाय और बाद में वैसा ही बर्ताव करने लगे, जैसा वह चाहता है, तो उसकी औरत क्या करेगी ? चुपचाप बर्दाश्त कर लेगी; मार डालेगा तो मर जायगी। ठीक इसी तरह अगर आदमी से यह कहा जाता कि देखो जी, हम तुम्हें दुनिया में भेजते हैं, पर यह बताये देते हैं कि जब हमारे जी में आयेगा, हम तुम्हारे ऊपर बिजली गिरा देंगे, तुम्हें जमीन में दफन कर देंगे, तुम्हें पानी में बहा देंगे, तो क्या कोई भी आदमी दुनिया में आना पसन्द करता ? पर चूंकि दुनिया में आने के पहले ऐसी कोई शर्त नहीं होती, इसलिए सब आते हैं और ऐसी तकलीफें आराम से सह लेते हैं। दूसरे ऐसी तकलीफ देखकर भी दुनिया से भागना नहीं चाहते। रेल-दुर्घटना से बचे आदमी दूसरे क्षण दूसरी रेल में बैठकर चल देते हैं। कोई एक ऐसा न निकला, जो रेल में न बैठकर पैदल जाने की बात सोचे। प्रकृति ने आगे की बात न जानने का इन्तजाम सोच-समझकर किया है। न जाने आदमी भविष्य जानने की बला में क्यों फँसना चाहता है ? भविष्य कोई जान नहीं सकता। पर आदमी की भविष्य जानने की कमजोरी से हर कोई फायदा उठाना चाहता है। देवी-देवताओं की तरह सगुन, ज्योतिष, पाँसे, रमल और न जाने क्या-क्या बलाएँ चल पड़ी हैं। भविष्य जानकर प्रकृति के प्रबन्ध में ऐसी बाधा डालना है, जैसे देवी-देवताओं से दुःख मेटने की प्रार्थना करके नयी बला मोल लेने की सोचना।

अब यह समझ में आ गया होगा कि प्रकृति ने क्यों ऐसा

इन्तजाम किया कि हम आगे की तो क्या, कल की बात भी न जान सकें ?

भविष्य जान लेने से क्या हाल होता है, इस पर एक कहानी प्रसिद्ध है, जिसमें एक साधु एक लड़के का भाग्य ब्रह्मा से जान लेते हैं। ब्रह्मा लड़के के भाग्य में लिख जाते हैं कि यह रोज हिरण बेचकर रोजी कमायेगा। साधुजी ने लड़के को एक तरकीब बतायी और रोज हिरण उसके जाल में आने लगा। अन्त में ब्रह्मा उससे तंग आ गये और भविष्य न बताने की शर्त पर लड़के का भाग्य बदल दिया। उस कथा से नतीजे यह निकलते हैं कि :

१. भविष्य जानने की जरूरत नहीं। २. भविष्य जानकर प्रकृति का काम एक दिन नहीं चल सकता। ३. पुरुषार्थ भाग्य से बहुत बलवान् होता है। वह भाग्य को बदल सकता है।

दुःख-सुख पहले जानने की चीज नहीं

दुःख-सुख ऐसी चीज नहीं, जिसके पहले जानने की जरूरत हो। आदमी जरा भी सोचे, तो उसकी समझ में यह बात आ सकती है कि प्रकृति के दुःख-सुख छोड़ जो दुःख-सुख हैं, वे ऐसे नहीं, जो सहे न जा सकें, पर ऐसे भी नहीं हैं, जो किसी सुख की सूचना देते हों, फिर क्यों आते हैं ? उसकी एक वजह है, आदमी बहुत से सुख तो दूसरों को दुःख पहुँचाकर मोल ले लेता है। यह किसे नहीं मालूम कि जब कोई आदमी किसीकी जान लेता है, तब उसे कई रात नींद नहीं आती। इसे छोड़िये, इसका हरएक को अनुभव नहीं, पर इस बात का सबको अनुभव है कि माँ अपने बच्चे को पीटकर तुरत रोने लगती है। इससे यह नतीजा

निकलता है कि दुनिया में जो दूसरे बड़े-बड़े दु:ख हैं, वे भी किसी और के नहीं, हमारे ही पैदा किये हुए हैं। इसके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि दु:ख किसी देवी-देवता के नाराज होने से या किसी महादेवता से बिगड़ बैठने से किसी देश या उसके किसी हिस्से पर आ पड़ते हैं।

दु:ख डरने की नहीं, समझने की चीज

दु:ख बिलकुल डरने की चीज नहीं। दुख समझने की चीज है। जब वह समझ में आ जायगा, तो उसे मिटाने के लिए किसीकी प्रार्थना न करनी पड़ेगी, यह एक बड़ी सचाई है। जैसे ही आप अपने-आपको दु:खरहित अवस्था में ले जायँगे, वैसे ही पहली आफत आप पर यह आयेगी कि आप प्रकृति के सारे नियम तोड़ डालेंगे। दु:ख ऐसी चीज है, जो आपसे ऐसी भूल कभी नहीं होने देता। दु:ख के बिना कोई सत्य को पहचान नहीं सकता। कोई उन कायदों का जानकार नहीं हो सकता, जिन कायदों से उसका जीवन चल रहा है।

आदमी के दु:खी होने का कारण है, उसकी यह दुविधा कि वह उस काम में लगे या न लगे, जो उसकी भलाई के लिए बेहद जरूरी है। यह दु:ख बेशक ऐसा है, जिसे मिटाने की जरूरत है। पर इसके लिए किसी प्रार्थना की जरूरत नहीं, किसी देवी-देवता की जरूरत नहीं, इसके लिए समझने की जरूरत है।

आदमी में जब दु:ख की चेतना आ जाती है यानी यह कि मन दु:ख का केन्द्र हो जाता है, तब उसमें नयी बात पैदा होती है और वह यह कि अपनी भूलों में अन्तर पैदा करने लगता है। अपनी

भूल को भूल नहीं मानता, दूसरों की भूलों को भूल समझता है। यही हाल उसका उन बुराइयों के साथ होता है, जो वह दूसरों के साथ करता है। उसका कोई बुरा कर दे, तो बहुत कम दुःख मानता है या बिलकुल नहीं मानता। भलाई के बारे में उसका यही हाल है। औरों से अपने लिए वह भलाई की जितनी आशा रखता है, उतनी आशा औरों को अपने से नहीं रखने देता। यह एक ऐसी बुराई है, जो आदमी को ऐसी मालूम होती है कि वह उसे खुद दूर नहीं कर सकता और इसी अजानकारी की वजह से वह कभी-कभी दूसरों को सुख पहुँचाने के बहाने दुःख पहुँचाने लगता है। इसका नतीजा होता है, आदमियों के जीते रहने की ताकत का कम हो जाना। उसका असर खुद उस पर पड़े बिना नहीं रहता, इस तरह वह अपने और सबके लिए दुःख पैदा कर देता है।

दुःख के बराबर दोस्त नहीं

अगर जीवन उस रस्सी के समान है, जिस पर आदमी नट बनकर चलता है, तो दुःख आदमी के हाथ में एक बाँस है, जो उसके समतोल को बनाये रखता है, उसे गिरने नहीं देता, आगे बढ़ने में मदद करता है। अगर जीवन एक अँधेरी गली है, तो दुःख आदमी के हाथ में लाठी है, जो उसे रास्ता टटोलने में मदद देती है। आदमी का इधर-उधर न गिरना और न भटकना ही सुख है, इसलिए दुःख के माने हैं, आदमी को सुख से न भागने देना। क्या दुःख के बराबर कोई दूसरा दोस्त हो सकता है? किसीने ठीक कहा है :

"विपत बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट, मित्र अरु बन्धुजन, जान पड़ैं सब कोय॥"

आदमी चाहे या न चाहे, दुःख हमेशा उसके साथ है और हमेशा उसका दोस्त है और दोस्त के नाते वह उसे ज़ीवन के सच्चे रास्ते की तरफ ढकेलता रहता है, उसे इधर-उधर नहीं भटकने देता। दुःख आदमी को उस जगह ले जाना चाहता है, जहाँ कोई बाधा नहीं है, जहाँ कोई बुराई नहीं है, जहाँ भलाई ही भलाई है। वह भलाई ऐसी है, जो दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती है; क्योंकि उसका आदि-अन्त नहीं।

दुःख जीवन का एक सत्य है।

• • •

: १५ :

सत्य और रीति-रिवाज

सहज विश्वास

विलकुल छोटे वच्चे का पता नहीं, पर वड़े वच्चे से लेकर वूढ़े तक सव एक खास कमजोरी लिये हैं। यह कमजोरी सत्य को सहन नहीं। यह कमजोरी इतनी फैल गयी है कि सत्य की लाख मेहनत करने पर कम नहीं हो पाती। रिजका नामक एक घास होती है। जानवरों के लिए उसे वोते हैं। उसे एक तरफ से काटें, तो दूसरी तरफ वढ़ने लगती है। यह कमजोरी इसी घास की तरह एक तरफ कटती और दूसरी तरफ उग जाती है। इस कमजोरी का नाम है, *सहज-विश्वास*। रीति-रिवाज इस सहज विश्वास की सन्तान हैं।

सत्य और वहम

न कभी सहज-विश्वास आदमी को छोड़ सकेगा और न रीति-रिवाज। सत्य की यह कोशिश नहीं कि रीति-रिवाज खतम हों। रीति-रिवाज के वढ़ने से सत्य का कोई नुकसान नहीं। सत्य को धक्का पहुँचता है उस समय, जव रीति-रिवाज को यह कहकर अपनाया जाता है कि अगर ये न किये जायँ, तो कोई ऐसी आफत कुटुम्व या समाज पर आ जायगी, जो हटाये न हट सकेगी। सत्य इस वहम को दूर कर देना चाहता है। वहम

अँधेरा है, सत्य प्रकाश है। दोनों एक जगह नहीं रह सकते। सत्य जीवन में प्रसन्नता लाता है, वहम उस प्रसन्नता का रस चूस लेता है। फिर जो कुछ आदमी के हाथ पड़ता है, वह छूँछ होती है। गन्ने की खोई और बादाम की खल की तरह उस छूँछ में मिठास और चिकनाई रहती तो है, पर इतनी नहीं जिससे आदमी पूरा-पूरा लाभ उठा सके। अगर उसे वह खोई और खल बिलकुल न मिली होती, तो कुछ बुरा तो होता, पर इतना बुरा न होता जितना खोई और खल मिल जाने से होता है। क्योंकि उनके मिलने से उसे मिठास और चिकनाई का स्वाद आता है, तबीयत नहीं भर पाती, तृष्णा जाग उठती है। वह उसे पहले से ज्यादा दुबला कर देती है। सत्य की कोशिश है, उसके सहज-विश्वास को ठीक करे और रीति-रिवाजों की पूरी मिठास और पूरी चिकनाई आदमी को मिलने दे।

जब रीति शुरू होती है, तब उसे 'रीति' नहीं कहा जाता। वह किसी रीति की जगह लेती है, इसलिए रीति कहा जाता है। रीति के माने हैं किसी काम के ढंग को बहुतों का अपना लेना और बहुत दिनों तक अपनाये रखना। जो ढंग आज निकला है, उसे रीति-रिवाज कैसे कहा जा सकता है? नये ढंग को एकदम रीति-रिवाज नाम क्यों दिया जाने लगा? इस सवाल का जवाब सीधा है। संगठित समाज में कोई ढंग कानून के जरिये एक दिन में जारी किया जा सकता है। जिस तरह पहले आम तौर से लम्बे लिफाफे चलते थे, फिर एकदम चौकोर चल पड़े। तब चौकोर लिफाफों के बारे में यह कह देना बेजा नहीं कि आज से

चौकोर लिफाफों का रिवाज हो गया। रीति-रिवाज के माने वदल गये। रीति-रिवाज जिस वक्त शुरू हुए थे, उस वक्त समाज संगठित न था, या था तो इतना संगठित न था कि अपने हुक्म से काम करने के किसी ढंग को एकदम वदल सके। होता यह था कि किसीने एक ढंग अपनाया, तो उसे समाज में फैलने में समय लगता था, दिनों में ढंग रीति-रिवाज नाम पाता था।

किसी देश का समाज, आजकल कुछ वातों को छोड़, जिनका सरकारी कानून से सम्वन्ध है, किसी वात में सारा-का-सारा एक रीति-रिवाज में वँधा मिलेगा। हर देश का समाज अनेक टुकड़ों में वँटा है। चार वर्णों की वात पहले से चली आ रही है, उनमें तो समाज वँटा है ही, पर उन चार में से हरएक चार-चार और आठ-आठ में वँटा है। आज जितनी जातियाँ हैं, सवके अलग-अलग रिवाज हैं यानी सवके रहन-सहन के अलग-अलग ढंग हैं। समाजी मामलों को छोड़ दें और सिर्फ सरकारी मामलों को लिया जाय, तो उसके भी ढंग सव जगह एक-से नहीं हैं। हर प्रान्त अपने ढंगों के लिए स्वाधीन है। कुछ वातों में एक ही प्रान्त का हरएक जिला अपने ढंग के लिए स्वाधीन है। यही हाल तहसील-तालुकों, परगनों और गाँवों का है।

रीति-रिवाजों की भिन्नता

समाजी और सरकारी कामों का अलग-अलग ढंग यह सावित करता है कि हर जगह के रीति-रिवाज अलग-अलग हैं। अलग-अलग यों हैं कि हर जगह का हवा-पानी अलग-अलग है।

एक ढंग दूसरी जगह ठीक नहीं वैठ सकता। राजस्थान में, जहाँ रेत के टीले हैं और दूर-दूर तक रेत फैली है, काम करने के जो ढंग सोचे जायँगे, वे पंजाव में नहीं सोचे जा सकते। पंजाव में पाँच वड़ी और कई छोटी नदियाँ वहती हैं। यही हाल उत्तर प्रदेश का है। वहाँ भी नदियों की कमी नहीं। पंजाव और उत्तर प्रदेश में काम करने के ढंग विलकुल अलग रहेंगे, राजस्थान के ढंग विलकुल अलग रहेंगे। अव राजस्थान के ढंग पंजाव या उत्तर प्रदेश के ढंगों से मेल न खायें और राजस्थान के आदमी अपने सहज-विश्वास को लेकर पंजाव और उत्तर प्रदेशवालों से झगड़ वैठें या समझें कि वह उनके विपरीत ढंगों को अपनाकर कोई अनीति कर रहे हैं, तो यह कितनी वुरी वात होगी? पर हो रहा है ऐसा ही। सत्य इस आपसी झगड़े को मिटा देना चाहता है। उसे झगड़ा मिटाने का नुस्खा बड़ा अच्छा आता है, पर लोग उस नुस्खे के इस्तेमाल में वड़ी गड़वड़ी कर जाते हैं। नुस्खा उस कागज के परचे को कहा जाता है, जिस पर कोई हकीम कुछ दवाई लिख देता है कि वह दवा किस तरह तैयार की जायगी और किस तरह काम में लायी जायगी। अव अगर कोई आदमी नुस्खे के कागज को ही दवा समझकर खा ले, तो इसमें हकीम का क्या दोष? ठीक इसी तरह सत्य एक रिवाज के ढंग को वदलता है और उसकी असलियत समझा देता है, पर लोग उसी ढंग को अपना लेते हैं और अपने सहज-विश्वास को उसके साथ नत्थी कर देते हैं। वही ढंग नया होने पर पुराने ढंग की तरह मिठास और चिकनाई खो वैठता है।

रीति-रिवाजों की असलियत

सत्य इस बात पर जोर नहीं देता कि रीति-रिवाज बदल डालो। उसका जोर इस बात पर है कि रीति-रिवाज की असलियत जान लो। यह ठीक है, जैसे ही आदमी को किसी रिवाज की असलियत का पता चला, वैसे ही वह उसे छोड़ बैठेगा। क्योंकि बहुत कम रिवाज ऐसे हैं, जिनकी असलियत आज कायम रह गयी है। उदाहरण के लिए अगर कोई रिवाज उस वक्त बना था, जिस वक्त हमारे देश में रेल न थी, तो वह रिवाज आज कैसे रह सकेगा, अगर उसकी असलियत को लोग समझ जायँ? सत्य जबरदस्ती नहीं करता। सत्य बल देता है, जगाता है, मस्तक को विचार की आजादी देता है, ज्ञान को साफ करता है और सच्चा ढंग सोचने, उस पर अमल करने की हिम्मत देता है।

सारे रीति-रिवाज जन्म, विवाह और मौत के चारों तरफ घूमते हैं। अगर इन तीनों को ठीक-ठीक समझ लिया जाय, तो रीति-रिवाजों के पीछे रहनेवाले जिस सहज-विश्वास ने मिथ्या और अन्ध-विश्वास का रूप ले लिया है, वह ठीक हो जाय। फिर रीति-रिवाज, जो आदमी पर सवारी गाँठे है, आदमी की सवारी में आ जायँ और जीवन-यात्रा में गति और प्रसन्नता आ जाय।

जन्म की रीति

जन्म इससे ज्यादा कुछ नहीं कि वह आदमी, जो अभी तक बीज की तरह जमीन के अन्दर से बाहर निकलने के लिए जोर

लगा रहा था, अंकुर के रूप में बाहर निकल आया। पेड़ का जमीन से रिश्ता बना रहता है। यानी उसकी जड़ अंकुर निकलने के बाद से बड़े होने तक जमीन के अन्दर रहती है। आदमी के मामले में ऐसा नहीं होता। आदमी या उसी जैसे प्राणी अपनी माँ से एकदम सम्बन्ध छोड़ देते हैं, पर उन्हें भी आगे बढ़ने के लिए, भोजन पाने की खातिर माँ से सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। इसलिए किसी अंश में आदमी पेड़ से मिलता है। बहुत पेड़ ऐसे हैं, जो अपने फूल और फल गिरा देते हैं, पर उनके फल-फूल गिराने को जन्म नाम नहीं दिया जाता, क्योंकि वे गिरकर बढ़ते नहीं। पेड़ के अंकुर को 'जन्म' नाम दिया जाता है, क्योंकि वह बढ़ता है। पेड़ों से लेकर आदमी तक सबके जन्मों पर नजर डाली जाय, तो मालूम होगा कि प्रकृति ने उनकी कोमलता को ध्यान में रखकर उन्हें बचाये रखने के लिए काफी प्रबन्ध किया है। बाहरी आफतों से बचाने के लिए सब प्राणियों में ऐसी भावना पैदा कर दी है, जिसकी वजह से वह उन कोमल देहधारियों को कम-से-कम सताने की सोचते हैं। सत्य चाहता है, प्रकृति के उन कोमल देहधारियों की रक्षा करने में मदद की जाय और आदमी इस बारे में अपने सहज-विश्वास को मैला न होने दे। जन्म के कोमलपन को ध्यान में रखकर जो कुछ किया जाय, ठीक है और जो किया जायगा, वह सत्य होगा।

विवाह की रीति

विवाह इसके सिवा कुछ नहीं कि प्राणी के अन्दर जो एक विशेषता है कि वह अपने पीछे अपने जैसे प्राणी छोड़ जाता है,

उसे वनाये रखे; सृष्टि-रचना को सुख से चलने में प्रकृति की मदद करे। विवाह ऐसी रस्म है, जो आदमी की अपनी सूझ है, क्योंकि और प्राणियों में विवाह जैसी रस्म नहीं पायी जाती। आदमी पशुओं को पालता है और जो पशु पूरी तरह आजाद नहीं हैं, उनके गर्भाधान का प्रवन्ध करता है। उस गर्भाधान को 'विवाह' नाम दिया जा सकता है। वैदिक काल के शुरू-शुरू में या मानव-समाज के वचपन में 'विवाह' नाम की कोई चीज न थी। विवाह का सम्वन्ध गुलामी से है। विवाह आदमी की दासता की निशानी है, आदमी के पतन का चिन्ह है। जैसे-जैसे आदमी समाज के वन्धनों में ज्यादा-ज्यादा जकड़ता गया, वैसे-वैसे विवाह के कायदे सख्त होते गये और आदमी का वासना पर से कावू हटता गया। आज भी जिन्हें जंगली जाति के नाम से पुकारा जाता है, वे वासना के लिहाज से शहरी जातियों से वहुत अच्छे हैं। मनुष्य-समाज अपनी आजादी खोकर जव सामाजिक वन्धन में फँसा, तव भी वह इतना आजाद था कि उसे किसी तरह के विवाह की जरूरत न थी, उसकी वासनाएँ कावू में थीं, पर समाज के साथ रहकर खाने-पीने का सुभीता हो जाने से वह अपनी वासना का संतुलन खो वैठा।

समाज को उसके वन्धन सख्त करने पड़े। सवसे पहले समाज ने आदमी को वाँधने के लिए उससे यह आजादी छीनी कि वह गर्भाधान के मामले में पूरा स्वाधीन न होगा। आज के पालतू पशु भी कहाँ आजाद हैं? गर्भाधान का रिवाज वढ़कर विवाह नाम ले वैठा। यह है विवाह की असलियत।

गर्भाधान नामी विवाह आज 'सुहागरात' के नाम से मौजूद है। गर्भाधान के उस वक्त के रिवाज, जब उसका, 'संस्कार' नाम था, कभी के नष्ट हो गये। सुहागरात की रीतियाँ अब वे नहीं रहीं। सुहागरात खतम हो रही है। यह खतम हुई कि गर्भाधान नामी विवाह एकदम खतम। गर्भाधान-संस्कार उन दिनों ज्यादा जोर पकड़ गया था, जब दो-दो, तीन-तीन बरस के लड़के-लड़कियों की शादी चल पड़ी थी। उस वक्त इसकी जरूरत थी। अचरज नहीं, सौ-दो सौ, पाँच-सौ बरस में, अगर मनुष्य-समाज इतना समझदार हो जाय कि वह अपनी वासनाओं पर काबू रख सके और इतना आजाद हो जाय कि वह दुनिया-भर से अपना नाता जोड़ ले और मेल-मुहब्बत से रहने लगे, तो विवाह की रस्म खतम हो जाय।

हमारा खयाल है, मनुष्य-समाज जिस जंगलीपन से निकलकर आज की सभ्यता तक पहुँचा है, एक दिन पूरा सभ्य होकर उसी जंगलीपन को अपना लेगा, जहाँ से वह चला था। यह एक अलग विषय है, पर इतना साफ कर देना जरूरी है कि मनुष्य जब फिर जंगली बनेगा, तब वह जंगली न होगा, बहुत संस्कृत और सभ्य होगा, उसका आत्मा मँझकर साफ हो चुका होगा। वह जिस जंगलीपन को मूर्खतावश अपनाये था, नुकसान कर रहा था, आगे बढ़ने से रुका था, अब उसी जंगलीपन को सोच-समझकर अपनायेगा और मेल-मोहब्बत के साथ दूसरे चक्र की तैयारी करेगा। उस चक्र की अगली मंजिलें क्या होंगी, उनके बारे में कुछ कहना बेकार है। हमारे काम की इतनी बात

है कि विवाह की असलियत सिर्फ इतनी है कि मनुष्य जैसा प्राणी अपने पीछे, अपने जैसे और अपने से उन्नत प्राणी छोड़ सके। बस, इतनी बात को ध्यान में रखकर हमें विवाह करने के ढंग अपनाने चाहिए।

मौत की रीति

मौत का मतलब है, शरीर का बेकार हो जाना। मनुष्य-समाज जब बालक था, तब किसीके मर जाने पर न रोता था, न उस मरे आदमी के बारे में कुछ सोचता था। बंदर में अपने छोटे बच्चे के लिए मोह है, मादा अपने मरे बच्चे के खल्लड़ को छह-छह महीने गले से लगाये फिरती है, पर बड़े बन्दरों की मौत हो जाने पर बन्दर-समाज मरे बन्दर के लिए न रोता है, न कुछ और करने की सोचता है। कई किताबों में हमने पढ़ा है कि कहीं-कहीं कुछ खास तरह के बन्दर किसीके मर जाने का शोक मानते हैं। हो सकता है, यह बात ठीक हो, पर शोक मनानेवाले बन्दर उस मरे बन्दर के बारे में और ज्यादा नहीं सोच सकते।

मनुष्य-समाज में मुर्दों को दफन करने, जलाने का रिवाज बहुत पीछे चला। कुछ रिवाज ऐसे हैं, जो पहले थे, पीछे बन्द हो गये, फिर चल पड़े, फिर बन्द हो गये। कुछ रिवाज ऐसे हैं जो कहीं-कहीं बन्द हो गये, कहीं-कहीं जारी हैं। वे रिवाज ये हैं : मुर्दों को बहा देना, मुर्दों को जलाकर बहा देना, मुर्दों को जानवरों को खिला देना। बहा देने का रिवाज जलाने और दफन करने के पहले का है। इसे आदमी ने प्रकृति से सीखा।

डूबने पर आदमी मरकर ऊपर तैरने लगता था। उसे जानवर खा जाते थे। वहा देने का रिवाज, मुर्दे के प्रति मोह होने से, जँचा नहीं। उसे दफन करने और जलाने का रिवाज अपना लिया गया। जलाने के रिवाज के बाद और नये तजर्वे हुए। उन तजर्वों के बल पर उसने गर्भवती औरतों, जहर खाये हुए, साँप के काटे को, जलाने की जगह, वहाने का रिवाज शुरू किया। जानवरों को खिलाने का रिवाज पारसियों को छोड़ और कहीं नहीं रह गया। उनमें यह रिवाज किन मनोभावों को लेकर मौजूद है, उन्हें हम यहाँ नहीं लिखना चाहते। यहाँ सिर्फ इतना कहना चाहते हैं कि मरने के बाद आदमी का जिस्म मिट्टी हो जाता है, उस जिस्म में और मिट्टी में कोई अन्तर नहीं करना चाहिए। यह अन्तर रहेगा ही कि आदमी के देह की मिट्टी सड़ने लगती है, आदमियों में बीमारी पैदा करती है, पर यह बात तो गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली की देह के साथ भी है। आदमी जिस तरह कुत्ते, बिल्लियों की देह के लिए सोचता है, वैसे ही आदमी की देह के लिए सोचे। सत्य चाहता है, आदमी मुर्दे की देह को मिट्टी समझे। ऐसा समझकर उसे फेंकने या ठिकाने लगाने के तरीके सोचे। उसके साथ बेमतलब की भावना जोड़कर, तरह-तरह की बेतुकी बातें सोचकर, अपना मन गँदला न करे। सहज-विश्वास को अन्ध-विश्वास और मिथ्या-विश्वास के जाल में न फँसाये।

सुलभ प्रसूति के लिए चक्रव्यूह

"सत्य और सुख-दुःख" अध्याय में कहा जा चुका है, दुःख कोई बुरी चीज नहीं। दुनिया के कम दुख-दर्द ऐसे हैं, जिनसे

वचने की जरूरत है। वहुत तो आदमी को सुख पहुँचाने के लिए हैं। वच्चा पैदा होने से पहले जो दर्द माँ को होता है, वह उन्हीं-को ज्यादा तकलीफ देता है, जो तन्दुरुस्त नहीं होतीं। जिनका जीवन प्राकृतिक होता है, उन्हें वहुत मामूली तकलीफ होती है। इस मामूली और प्राकृतिक तकलीफ को लेकर समाज में सैकड़ों वहम खड़े हो गये हैं। जहाँ जरा तकलीफ हुई कि घरवाले दौड़े किसी ओझा के पास और लगे उससे झाड़-फूंक की प्रार्थना करने। अगर वहू सास की प्यारी हुई, तो वह भी उतारा उतारती है, देवताओं के नाम पर उठावा उठाकर रखती है, अगर कहीं वहू पहलौटी गर्भवाली हुई, तो न जाने क्या-क्या तूफान खड़े हो जाते हैं। वहुत तकलीफ होने पर दवा-दारू कम चलते हैं, मन्तर-जन्तर ज्यादा। हम जव छोटे थे, तव मोहल्ले में आये दिन झाड़-फूंक का तमाशा देखने को मिलता था। एक वार एक औरत को वेहद तक-लीफ थी, उसके लिए एक पण्डित ने यह किया :

एक काँसे की थाली मँगायी, थोड़ा गेरू मँगाया और उस गेरू को पानी में घोला। गेरू के रङ्ग से थाली में एक चक्रव्यूह वनाया और थाली में थोड़ा पानी डालकर उस औरत को पिला दिया जिसे दर्द हो रहा था। पीने के कुछ देर वाद दर्द कम हुआ और थोड़ी देर में उसे वच्चा हो गया।

चक्रव्यूह वनाना हमने सीख लिया। और एक-से ज्यादा वार हमें भी इस काम के लिए वुलाया गया और सफलता मिली। जव हम कुछ वड़े हुए और जन्त्र-मन्त्र से हमारा विश्वास उठ गया, तव हमने उस काम को छोड़ दिया। तीस वरस की उमर

में हमें किसी वैद्यक की किताब में यह लिखा मिला कि काँसे की थाली में गेरू पिला देने से दर्द कम हो जाता है, बच्चा पैदा होने में आसानी होती है। रहा चक्रव्यूह, उसके बारे में समाज ने यह विश्वास फैला रखा कि उसके देखने से बच्चा पैदा होने में आसानी होती है। यह मिथ्या-विश्वास और दवा मिलकर कभी-कभी कुछ काम कर जाते हैं, कभी-कभी बिलकुल नहीं।

चक्रव्यूह के मिथ्या-विश्वास से समाज को यह नुकसान हुआ कि गेरू, जो दवा थी, उसकी तरफ से लोगों की नजर हटकर चक्रव्यूह की तरफ चली गयी और गेरू की शोध एकदम पीछे पड़ गयी। अगर चक्रव्यूह का मिथ्या-विश्वास न होता, तो गेरू पर वैज्ञानिक खोज-बीन की जाती और उस खोज-बीन से, हो सकता है, समाज को नफा पहुँचा होता।

मलेरिया बुखार में पीपल के पत्ते पर गेरू से कोई जन्तर लिखकर बुखार उतारने का रिवाज आज तक मौजूद है। कोई-कोई नासमझ जन्तर को महत्त्व देकर गेरू की बजाय केशर से जन्तर लिख देते हैं। अगर मिथ्या-विश्वास को महत्त्व न मिला होता, तो इस तरह की भूलें कभी न होतीं।

मिथ्या-विश्वास की मदद से ऐसे मौके पर दाइयाँ खूब फायदा उठाती हैं, और ऐसे मौके पर घर के सभी लोग घबराये होते हैं और वह सब करने के लिए तैयार होते हैं, जो उन्हें करने के लिए कहा जाय। दाई की, जो बच्चा जनाने के काम की मुखिया होती है, बात कैसे टाली जा सकती है? उस वक्त जो उतारा, उठावा बताया जाता है, किया जाता है।

बच्चा पैदा करने का काम औरतें ही नहीं, सारे पशु करते हैं। पशुओं के बच्चे जंगल में होते हैं और आदमी के बच्चे से कई गुना तन्दुरुस्त होते हैं। कई जंगली जातियाँ ऐसी हैं, जिनके बच्चे भी जंगल में पैदा होते हैं, वे भी शहरी बच्चों से ज्यादा तन्दुरुस्त होते हैं।

जंतर-मंतर का मिथ्या-विश्वास

जन्म के रीति-रिवाजों के बारे में अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं, सिर्फ इतना समझ लेना काफी है कि हर जंतर-मंतर के पीछे कोई-न-कोई विज्ञान की सचाई छिपी रहती है। जितनी सचाई होती है उतना फायदा होता है, जितना उसके साथ मिथ्या-विश्वास रहता है उतना नुकसान होता है। उस नुकसान से न व्यक्ति बचता है, न समाज।

इसी सिलसिले में एक आपबीती सुनिये।

सन् १९२३ में नागपुर में झंडा-सत्याग्रह जोरों से चल रहा था। स्वयंसेवकों का एक डिपो खुला था। वहाँ किसी स्वयंसेवक को बिच्छू ने डंक मार दिया। किसीने कह दिया, 'हम बिच्छू का मंत्र जानते हैं।' हमारे पास खबर पहुँची। हम मंत्र नहीं जानते थे, पर स्वयंसेवकों के सरदार होने के नाते हम उनके साथ चल दिये, जो हमें बुलाने आया था। डिपो में पहुँचकर हम बिच्छू काटे स्वयंसेवक को उसी तरह झाड़-फूंक करने लगे, जैसे मंत्र-वादी करते हैं। हमने कई बार बिच्छू का जहर उतारते मंत्र-वादियों को देखा था। हमें आये आधा मिनट न हुआ था कि एक मंत्रवादी आ पहुँचे। जैसे ही लोगों ने उनके आने की खबर

दी, हमने छुट्टी ली। वह काम उस मंत्रवादी के सिपुर्द कर दिया। जब हम जाने लगे, तो वे बोले, 'आप ठीक कर रहे थे, मेरी क्या जरूरत थी?' हम हैरान हुए, क्योंकि हम मंत्र जानते न थे। हमने झाड़-फूंक का काम उनके सिपुर्द किया और स्वयं खड़े-खड़े देखने लगे। थोड़ी देर में जहर उतर गया। हम उस मंत्रवादी के साथ-साथ बाहर आये और बोले, 'हम मंत्र नहीं जानते, आपने कैसे कहा ठीक कर रहे थे?' वे भले आदमी थे। बोले, 'मंत्र कुछ नहीं होता; बात यह है कि जब बिच्छू डंक मारता है, तब उसके जहर चढ़ने को, कोई दवा भले रोक सके, मंत्र हरगिज नहीं रोक सकता, न मंत्र जहर उतार सकता है। जहर को पूरी तरह चढ़ने देना ही होगा। मंत्रवादी अपनी इस कमजोरी से बचने के लिए किसी-न-किसी तरह इतनी देर जरूर कर देते हैं कि वह उस वक्त पहुँचें जब जहर पूरा चढ़ चुका हो। उनके लिए उतारने का काम रह जाता है। उतारने के लिए यह करना पड़ता है कि पहले उस आदमी का ध्यान अपनी तरफ करना होता है, जिसे बिच्छू ने काटा हो। फिर अपने मन में कुछ गुनगुनाकर उससे कहना होता है, जिस जगह काटा है। उसे दिल के खिलाफ झटका दो, जिससे दिल का खून जोर मारकर नीचे की तरफ़ जाने की जल्दी करे। उस झटके का नतीजा होता है कि तकलीफ या जहर नीचे उतरना शुरू हो जाता है। दस-पाँच बार इस तरह करने से तकलीफ उस जगह तक आ जाती है, जहाँ बिच्छू ने डंक मारा होता है। उस तकलीफ को मिटाने के लिए मंत्रवादी गरम नमक

से सेंकने की सलाह दे देता है। 'वताइये मंत्र क्या रहा?' मंत्रवादी जहर न उतारता, तो जहर अपने-आप नीचे उतरता। हाँ, थोड़ी देर लगती। प्रकृति ने हर प्राणी में दिल के खिलाफ हाथ-पाँव झटकने का प्रवंध कर रखा है। आप देख सकते हैं, जैसे ही वच्चे के हाथ में कोई वर्र डंक मार दे, वैसे ही वह वच्चा एकदम हाथ झटकना शुरू कर देता है। यही है वच्चे का अपना इलाज आप करना।

मंत्रवादी पैसे कमाने की खातिर लोगों में मन्त्र-श्रद्धा जगाते रहते हैं, उसकी वैज्ञानिकता को छिपाये रखते हैं। यह वात छिपी नहीं कि हर मन्त्रवादी जव किसीको मन्त्र सिखाता है, तव उसकी शर्त होती है कि वह उस मन्त्र को किसीको न वताये। इसी सिलसिले में एक और सुन लीजिये।

फीरोजावाद में एक आदमी था। वह हम पर वड़ी श्रद्धा रखता था, हमें गुरु मानता था। एक दिन हम मन्त्रों के खिलाफ वोल रहे थे। वह आदमी मौजूद था। जव हम अपनी कह चुके और सव चले गये, वह वड़ी श्रद्धा के साथ वोला, 'महाराज, आपकी वात मैंने सुन ली, पर मैं खुद मंत्र जानता हूँ, उसका चमत्कार मैं आपको दिखा सकता हूँ।' हमने कहा, 'दिखाओ, उसने मन्त्र पढ़ना शुरू किया और अपनी जाँघ में एक जगह सुई चुभा दी।' वोला, 'देखिये, यह है कि नहीं मन्त्र का चमत्कार, मेरे खून नहीं निकला।' हम वोले, 'क्या तुम हमारे कहने से मन्त्र पढ़े विना सुई चुभा सकते हो?' वह वोला 'जरूर।' हमने कहा, 'चुभाओ'। उसने वैसा ही किया और खून नहीं निकला। यह तमाशा देखकर वह एकदम

भक्ति में आकर हमारे पाँव पर गिर पड़ा, बोला, 'ठीक है, मन्त्र कुछ नहीं होते' और पूछ बैठा, 'फिर यह मामला क्या है ? खून क्यों नहीं निकलता ?' हमने उसे बताया, 'जब तुम अपने हाथ से खाल को खींच लेते हो, तो खून की नसें नीचे रह जाती हैं और सुई उस जगह जाती है जहाँ नसें नहीं हैं, फिर खून कहाँ से निकलेगा ?'

यह बात हमने इसलिए लिख दी कि रीति-रिवाज और मन्त्र के पीछे श्रद्धा के घटाटोप में विज्ञान का अंश छिप जाता है और इससे बहुत नुकसान होता है। इससे बचना हरएक का काम है।

विवाह की रस्में इसी तरह की हैं। किसी रस्म में कोई जरूरत छिपी है, किसीमें कोई वैज्ञानिकता और कुछ ऐसी रस्में हैं, जिनमें दोनों में से एक नहीं। ऐसी रस्में लोगों ने पैसा कमाने के लिए गढ़ ली हैं। आदमी के विश्वास की कमजोरी से आदमी खूब फायदा उठा रहा है।

'आरते' की रस्म जरूरत के लिए

विवाह में 'आरते' की रस्म को ले लीजिये। यह रस्म मंदिरों में खूब चलती है। इसमें होता यह है कि थाली में चीजों के साथ-साथ एक जलता दीपक रहता है। उसको थाली समेत दो तीन बार उस आदमी के दायें-बायें करते हैं, जिसका आरता करना होता है। इस रस्म की तह में जरूरत छिपी है। अब यह रस्म बिलकुल बेकार है। जरूरत यह है कि जितने पुराने मंदिर हैं, उनकी वेदियाँ ऐसी जगह बनी हैं, जहाँ करीब-करीब चौबीसों

घंटे अँधेरा रहता है। पुजारी दिये की रोशनी में मूर्ति का शृंगार करता है। उसे कभी-कभी अपने शृंगार को जाँचने के लिए दीपक को आँख के सामने से हटाकर दायें-बायें करना होता है। ऐसा किये वगैर वह मूर्ति के दोनों तरफ के शृंगार की पूरी जाँच नहीं कर सकता। विवाह-शादियों में आम तौर से रस्में रात को होती हैं और दूल्हे-दुलहन को सजाने का काम भी उसी वक्त होता है। आरते की रस्म हमेशा सजाने के वाद की जाती है। जब यह रस्म चली थी, तव वह रस्म न थी, कलाकार की जरूरत थी। अब वह रस्म है और सिवा नुकसान के उससे कोई फायदा नहीं। अव दिन में खुले मैदान में आरता किया जाता है और उसी तरह दिया जलाकर किया जाता है, जिस तरह अँधेरे में या रात में।

रस्मों के सिलसिले का सिलसिला ऐसा है कि उसके लिए एक अलग किताव की जरूरत है, पर दो-एक रस्मों का जिक्र करके हम पढ़नेवालों में ऐसी भावना जगा देना चाहते हैं कि वे अपने-आप ही रस्मों की परख कर सकें।

'घूरा पूजने' का रिवाज

विवाह के अवसर पर कूड़ी यानी घूरा पूजने का रिवाज है। वह भी एक जरूरत है। गाँव में शायद आज भी उसकी जरूरत हो। शहरों में वह विलकुल वेकार चीज है। कूड़ी या घूरा उस जगह का नाम है, जहाँ मुहल्लेभर का कूड़ा जमा रहता है। उसे पूजने का रिवाज है। पूजा के और काम छोड़कर असली काम यह होता है कि वहाँ एक जलता दिया रखा जाता है। यह दिया ही असली जरूरत है। यह इसलिए होता है कि रात

के वक्त बाहर से आये बराती यह जान लें कि यहाँ कूड़ा पड़ा है और भूल से अपने पाँव उस पर न रखें। दिन में दिये की जरूरत नहीं। पर अगर घूरे की पूजा दिन में हुई, तब भी दिया रखा जायगा। दिया रखना कभी जरूरी और अक्लमंदी का काम था, आज गैरजरूरी और बेवकूफी का काम है।

विवाह में शृङ्गार की रस्म

यों तो शृंगार रोज ही सब करते हैं, पर विवाह के अवसर पर वह रस्म के तौर पर किया जाता है। आजकल वह इतना भद्दा मालूम होता है कि शहर में रहनेवालों की आँखें उसे देखना पसन्द नहीं करतीं। जिस तरह मेंहदी रचाना, काजल लगाना, रोली से चेहरे को रँगना, हाथ में कलावा बाँधना आदि कुछ रस्में जरूरत से हैं, कुछ में वैज्ञानिकता छिपी है, कुछ लोभ की ईजाद हैं, कुछ में यह तीनों मौजूद हैं। काजल को ले लीजिये। उसमें वैज्ञानिकता तो यह है कि वह दवा है, आँखों को रोशनी देता है। उसके लगाने की बात वैद्यक के हर ग्रन्थ में मिल सकती है। जरूरत यह है कि वह शृंगार का अंग बन गया है और काली आँखें खूबसूरती को और बढ़ा देती हैं। यह दूसरी बात है कि काजल बेवकूफी से लगाकर खूबसूरती को बढ़ाने की जगह घटा दिया जाय। काजल के बजाय सुरमा ज्यादा ठीक रहेगा, क्योंकि वह सलाई से लगाया जाता है। वह उतना ही लगता है, जितना जरूरी होता है। लोभ की ईजाद यों है कि काजल लगानेवाली को कुछ पैसे मिलते हैं। इसलिए वह दिन में लगाया जाने लगा। जरूरत के लिए दवा के तौर पर काजल रात को लगाया जाता

है। काजल लगाकर सो जाना जरूरी है, तभी वह फायदा करता है। पर रस्म से और फायदे से क्या लेना-देना ? रस्म के माने हैं ऐसे काम, जहाँ अक्ल को दखल न हो। अब रह गया इस रस्म का धोखा। काली आँखें तन्दुरुस्ती की पहचान हैं। पूरे तन्दुरुस्त आदमी की आँखें कम काली होंगी। बीमार आदमी की आँखें अपना कालापन एकदम खो बैठती हैं। काजल इसलिए भी लगाया जाता है कि लोगों को धोखा दिया जा सके और बीमार आँखों को तन्दुरुस्त आँखों का रूप दिया जा सके। इस सिलसिले में पढ़नेवालों के मन में कुछ और सवाल उठ सकते हैं। पर अगर वे जरा कोशिश करें, तो अपने सवाल का जवाब खुद सोच सकते हैं। उदाहरण के लिए कुछ आँखें नीली होती हैं, कुछ पीली। पर हिन्दुस्तान में वैसी आँखें बहुत कम मिलती हैं। उन आँखों के पलक काले होते हैं। वह भी काली अच्छी लगती हैं। हिन्दुस्तानी आँखों को वैसी आदत है, इसलिए उन आँखों को काजल सुन्दर बना देता है।

समझदारों पर नासमझों का शासन

रीति-रिवाजों ने हमारी अक्ल को एकदम पीछे डाल दिया है। कुछ नासमझ आदमियों के हाथों में ऐसी सत्ता दे दी गयी है कि वे समझदारों पर शासन करने लगते हैं। रीति-रिवाज के मामले में बिरादरी के अपढ़ और मूर्ख लोग, रस्मों की याददाश्त के बल पर किसी पर रोब जमा बैठते हैं। कभी-कभी इन रस्मों को लेकर तरह-तरह के झगड़े खड़े हो जाते हैं। कई रस्में ऐसी हैं, जो

घर-घर में अलग-अलग तरह मनायी जाती हैं। उस वक्त तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, जब किसी विवाह में एक ही रस्म लड़केवाले के यहाँ एक तरह मनायी जाती हो और लड़कीवाले के यहाँ दूसरी तरह। दोनों में जो जोरदार होता है, उसीकी रस्म चलती है। अगर दोनों बराबर के हुए, तो या तो दोनों रस्में होती हैं या दोनों की कोई खिचड़ी तैयार कर ली जाती है।

रस्में हम पर हावी न हों

विवाह की अनगिनत रस्में हैं। उन सब पर यहाँ लिखा नहीं जा सकता। इतना ही याद रखना काफी है कि रस्में हमारे ऊपर अधिकार न जमा पायें, उन पर हमारा अधिकार रहे। वे जरूरत के लिहाज से बदलती रहें। इसमें शक नहीं कि रस्में बदलती रहती हैं, बदलती रही हैं और बदलती रहेंगी। पर क्या ही अच्छा हो, अगर उन रस्मों को हम सोच-समझकर बदलें। सोच-समझकर बदलने से रस्में हमारे काम की चीज बन सकेंगी, अपने-आप बदली रस्में हमारे काम में अड़चन बनी रहेंगी।

दाह-क्रिया की रस्में

सन् १९०३ का जिक्र है। हमारे एक दोस्त के बूढ़े बाप की मौत हुई। उसका बाप इतना बूढ़ा था कि शोक मनाने की जरूरत न थी। उधर हमारा दोस्त रस्मों के मामले में इतना उदार था कि किसी भी रस्म को अपनाने के लिए तैयार। ये दो बातें मिलकर एक अजब रूप ले बैठीं। मुर्दे की रथी बनाने से जलाने तक कदम-कदम पर रस्मों का सवाल उठा। हमारे दोस्त के बाप की रथी ले जाने में जितने आदमी शामिल थे, उनमें एक भी

ऐसा न था, जिसकी उमर ३०-३५ से ऊपर हो। हमारे दोस्त के घर में कोई बुढ़िया न थी। कोई ऐसा न था, जो किसी खास रस्म पर जोर देता। नतीजा यह हुआ कि जो रस्म जिसने बतायी, हमारे दोस्त ने की और करीब-करीब सब निभ गयी। अब मुर्दे को चिता पर रखने की घड़ी आयी। यहाँ मुश्किल पड़ी। हमने कहा, 'हमारे यहाँ मुर्दे को चिता पर पट लिटाया जाता है यानी पेट के बल।' कुछ लोग बोले, 'नहीं, चित लिटाने की रस्म है।' यह सुनकर हमारा दोस्त हँस पड़ा और बोला, 'भाई, अब मेरे बाप तुम सबके बाप, तुम जैसा चाहो करो।' रस्म पर चल पड़ी बहस। हमारी दलील थी कि पेट के बल लिटाने में बुद्धिमानी है, सूझ-बूझ है, वैज्ञानिकता है और है शिष्टता; चित लिटाने में हमें कोई ऐसी बात नजर नहीं आती। पेट के बल लिटाने में सूझ-बूझ यह है कि पेट की तरफ का हिस्सा मुलायम है, जल्दी आग पकड़ेगा और आदमी का चेहरा, जो आग में जलने से बुरा रूप लेगा, लोगों की नजरों में न आ सकेगा। शिष्टता यह है कि वह अंग सब नीचे रहते हैं, जिन्हें आम तौर से छिपाये रखने का रिवाज है। वैज्ञानिकता यह है कि मुर्दा आग लगने पर जो ऊपर की तरफ उठता है, अब नीचे की तरफ जायगा; और चिता के बिगड़ने का डर न रहेगा और टाँगों का घुटनों से नीचे का भाग ऊपर को न उठेगा और वह अपने-आप आग में जा पड़ेगा। इसलिए यह रस्म ठीक है, पर इस रस्म-वाले हम अकेले थे और बाकी सब थे चित लिटाने की रस्म-वाले। हम हार गये। आखिर यह तय हुआ कि पहले पट लिटाया जाय और फिर चित। वैसा ही किया गया।

मुर्दों के उपयोग की बात

मुर्दे की मिट्टी को ठिकाने लगाने की रस्में अनगिनत हैं। नयी-नयी रस्में भी चल पड़ी हैं। कलकत्ता में मुर्दे को इंजन में जलाने की रस्म है। कहीं-कहीं बिजली से जलाने की रस्म है, पर अभी तक मुर्दे से इतना मोह नहीं छूटा कि उसका कुछ उपयोग कर लिया जाय, जिस तरह गाय-भैंसों का। इस मामले में सुधार होने में सैकड़ों बरस लगेंगे। जो सुधार अब तक हुए हैं, उन सबमें जरूरत के लिहाज से लोग काफी आगे बढ़े हैं, पर मोह के लिहाज से वहीं-के-वहीं हैं। सुना था, लड़ाई के मौके पर किसी डॉक्टर को मुर्दों के उपयोग की बात सूझी थी, पर उसे वैसा करने से रोक दिया गया। उसे यह डर दिखाया गया कि अगर ऐसा किया गया, तो इस उपयोग के खातिर आदमी ऐसे ही मारे जाने लगेंगे, जैसे पशु-पक्षी। मुर्दों का उपयोग न हो सका।

कपाल-क्रिया की रस्म वैज्ञानिक

इसी सिलसिले में 'कपाल-क्रिया' नामक रस्म का थोड़ा जिक्र कर देना ठीक होगा। इस रस्म में यह होता है कि जब मुर्दा काफी जल चुका होता है, तब बाँस से उसकी खोपड़ी फोड़ देते हैं। इसकी तह में सूझ-बूझ है, जरूरत भी है। उस वक्त इसकी बहुत ज्यादा जरूरत है, जब चिता के आसपास औरतें या बच्चे हों। गर्भवती औरत को जलाने का रिवाज नहीं है। वजह यह है कि कभी-कभी गर्मी पाकर पेट से बच्चा निकलकर चिता से दूर जा पड़ता है। उससे लोगों के घबरा जाने का डर रहता है। ठीक इसी तरह आदमी की खोपड़ी के

अंदर का भेजा कभी-कभी इतना गर्म हो जाता है कि वह खोपड़ी को आवाज के साथ तोड़ता है और उसके टुकड़ों को दूर तक फेंकता है, इसलिए खोपड़ी को जान-बूझकर तोड़ दिया जाता है, ताकि भाप निकलने के लिए रास्ता बन जाय और खोपड़ी के इधर-उधर छिटकने का डर न रहे। इसीका नाम 'कपाल-क्रिया' है।

रीति-रिवाज अंध-विश्वास न बनें

रस्म-रिवाजों को अपनी सीमा से बाहर नहीं जाने देना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि समय-समय पर रस्म-रिवाजों की जाँच-पड़ताल होती रहे, उनमें कमी-बेशी होती रहे। वे कभी ऐसे न बन पायें, जो हमारे मन पर अन्ध-विश्वास बनकर जमे रहें।

• • •

: १६ :

अनुभव, सत्य, ईश्वर सब एक

सभ्यता और संस्कृति परिस्थितियों की देन

बहुत दिन की बात नहीं, जब एक पत्र में पढ़ा था, दो लड़कियाँ भेड़ियों के झुण्ड से पायी गयीं। उनका रहन-सहन भेड़ियों जैसा था। वे मादरजाद नंगा रहना पसन्द करती थीं। लड़की होते हुए दस-दस आदमी उन्हें काबू में न ला सकते थे। आदमी की सूरत से भागती थीं। कुत्तों के साथ खेलना पसन्द करती थीं। बरसों में, बड़ी मेहनत से उन्हें आदमी की तरह बैठना, हाँ-ना कहना सिखाया गया था। वे बीस-बीस बरस की होकर मर गयीं।

इन लड़कियों के जीवन से बहुत बड़ा सबक लिया जा सकता है। जो लोग यह शोर मचाते हैं कि आदमी के अन्दर अलग कोई ऐसी ताकत है, जो उसे बुराई से रोकती है, उनके पास इन लड़कियों के बारे में कहने के लिए क्या है? इन लड़कियों को क्यों नहीं उस ताकत ने बुराई से बचाया? क्यों वे आदमियों की तरह आदमी की हर आदत से अलग रहीं? क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि आदमी की सारी सभ्यता और संस्कृति परिस्थितियों की देन है।

सवाल का यह जवाब देकर जवाब से बचना है कि 'ईश्वर

ने उनके बारे में ऐसा ही चाहा था, या कि उन्होंने पहले जन्म में कर्म ही ऐसे किये थे।' इस जवाब से बिलकुल अपढ़ लोगों की तसल्ली हो सकती है, पढ़े-लिखे और समझदारों की नहीं।

कोशिश करने पर भी हम यह नहीं समझ पाये कि पढ़े-लिखे समझदार आदमी इस जवाब से कि "ईश्वर ने ऐसा चाहा" या "भाग्य में ऐसा लिखा था" किस तरह अपना मन समझा लेते हैं। जहाँ बुद्धि की पहुँच न हो, वहाँ ऐसा मान लिया जाय, तो बुरी बात नहीं। पर जहाँ बुद्धि की राह खुली है, वहाँ ऐसा मान बैठना ठीक नहीं।

आदमी ही अपना बनाने-बिगाड़नेवाला

गौर से देखने पर फौरन पता चल सकता है कि आदमी बुराई से किस तरह बचता है और क्यों भलाई की तरफ दौड़ता है। हमारा मामूली अनुभव बतायेगा कि बुराई-भलाई में भेद करने के लिए आदमी को किसी दूसरे की जरूरत नहीं। यह ठीक है कि दूसरों से उसे फायदा पहुँचता है, पर वह भी उसके अपने अनुभव के बल पर। यह किसने नहीं देखा कि दुनिया में नेकी के लिए मशहूर आदमी किसी-किसीको नेक बनाने की जगह बुरा बना देते हैं। क्या यह इस बात का सबूत नहीं कि आदमी अपना बनानेवाला और अपना बिगाड़नेवाला आप ही है? आदमी असल में पैदाइश से किन्हीं बातों में बहुत कमजोर है और यह कमजोरी भी प्रकृति से उसे भले के लिए मिली है।

कमजोरी आगे बढ़ने के लिए

वीज का अंकुर वहुत मुलायम होता है। हम आँखवाले जल्दवाजी में उस अंकुर को भले ही कमज़ोर कह डालें; लेकिन जमीन में दवा पड़ा वीज अपने वढ़ने की कोशिश उस कमजोर अंकुर के विना नहीं कर सकता। जहाँ वीज मौजूद है, वहाँ वल लगाने की जरूरत नहीं। वहाँ रास्ता निकालने की जरूरत है। आदमी कमजोरी को वुरा कहता है, पर उससे खूव फायदा उठाता है। सैकड़ों आदमियों के वीच से अपने वाहुवल से निकल जानेवाला डाकू जेलखाने में इतना सीधा-सादा वन जाता है, मानो उसमें वल ही न हो। जव वह जेलखाने से भागने की सोचता है, तव तो इतना कमजोर दिखाई देने लगता है, मानो वह उठ-वैठ नहीं सकता। वही न उठ-वैठ सकनेवाला डाकू जेल का ताला तोड़ दीवार पर इस तरह कूदकर जा वैठता है कि वंदर देखे, तो दाँतों तले उँगली दवा ले।

किसे नहीं मालूम, जव वच्चा पैदा होता है तव उसकी खोपड़ी के वीच में हड्डी नहीं होती। यह कमजोरी नहीं, यह है प्रकृति का खोपड़ी के लिए वढ़ने का प्रवन्ध। आँख खोलकर देखने पर जीवन से अनेक उदाहरण खोजकर निकाले जा सकते हैं, जो सावित कर देंगे कि जिसको जो कमजोरी मिली है, वह आगे वढ़ने के लिए है। आम तौर से आदमी की ताकत की एक हद है, पर वे दो लड़कियाँ भेड़ियों के साथ रहकर इतनी ताकतवर वन गयी थीं, जितना गामा पहलवान डेढ़ सौ रुपये रोज का खाना खाकर भी न वन पाया। क्या प्रकृति का यह इन्तजाम इस

बात का सबूत नहीं कि आदमी अपने में हर तरह पूरा है। उसका अनुभव वह अपना ईश्वर भी है और भाग्य भी है। उसका अनुभव उसका अन्तरात्मा है।

एक अनुभव से अनेक अनुभव

बालक आग में उँगली जलाकर समझ जाता है कि आग में उँगली देना बुरा है, उससे बचना भला। आग से उँगली जला-कर वह अपने ज्ञान की एक खिड़की खोल लेता है, जिसमें एक-साथ अनेक अनुभव चले आते हैं। उँगली जलाकर वह इतना ही नहीं समझ लेता कि आग में उँगली देना बुरा है, यह भी समझ लेता है कि माँ ठीक कहती थी कि आग में डालने से उँगली जलेगी और तकलीफ होगी। इसलिए उसे माँ पर श्रद्धा हो जाती है और माँ की बतायी सारी बातों पर पूरा विश्वास हो जाता है। यही हाल अपने भाई के बारे में होता है। अब सोचिये, अकेले एक अनुभव से कितने अनुभव संग में मिल गये। अगर ऐसा न होता, तो आदमी का बच्चा जानवरों के बच्चे से इतनी जल्दी समझदार न बन पाता।

अनुभव आदमी का जीवन-साथी

अनुभव आदमी का ऐसा साथी है, जो उमरभर उसका साथ नहीं छोड़ता। उस अनुभव को ईश्वर या भाग्य नाम दे दिया जाय, तो वह औरों के लिए भले ही ज्यादा काम का साबित न हो, उसके अपने लिए वह सचमुच, हर तरह सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् साबित होगा। उसका अपना अनुभव एक ऐसी शक्ति है, जिससे वह हूबहू बातें कर सकता है और जो अनुभव उसने

औरों से सुने हैं या किताबों से जाने हैं, उन्हें अपने अनुभव की कसौटी पर कसकर अपना सकता है या बिलगा सकता है। दूसरों के अनुभव को वह उधार की पूँजी समझता है। उस उधार को वह तभी चुका समझता है, जब वैसे अनुभव खुद कर लेता है।

'संवर' ज्ञान की विशेषता का फल

हम ऊपर कह आये हैं कि एक अनुभव के साथ-साथ बच्चे को अनेक अनुभव संग में मिलते हैं। इसका यह मतलब हुआ कि आदमी के पास ज्ञान की अपनी पूँजी कम और परायी पूँजी बहुत है। परायी पूँजी चुका देने का नाम ही मुक्ति है। परायी पूँजी को अपनी पूँजी समझना ही बन्ध है। परायी पूँजी से अपने मन का भाव कम करते रहना, 'निर्जरा' यानी छुटकारा है। पर पूँजी, जो बिना माँगे अपने-आप चली आती है, उसीका नाम 'आस्रव' है। कभी-कभी दूसरे के अनुभवों को स्वीकार नहीं करना, फिर वह चाहे कितने ऊँचे दर्जे का क्यों न हो, यही 'संवर' है यानी परायी पूँजी को न लेने की कोशिश। यह काम जरा मुश्किल है। छोटे बच्चे से लेकर बड़ी उम्र के आदमी तक 'संवर' नहीं करते। 'आस्रव' में बेहद आनन्द आता है, इसलिए 'संवर' को जी नहीं चाहता। 'संवर' संयम का दूसरा नाम है और संयम ज्ञान की विशेषता का परिणाम है।

सारे गुण अनुभवों की देन

आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा यह ऐसी क्रियाएँ हैं, जो बड़ी व्याख्या चाहती हैं। इन पर किताबें लिखी जा सकती हैं। पर

यही इस बात का सबूत है कि आदमी स्वयं अपना मालिक है। जैसे-जैसे वह अनुभवी होता जाता है, वैसे-वैसे उसमें वे सब गुण आ जाते हैं, जिनके बारे में लोगों ने यह समझ रखा है कि वे ईश्वर या ईश्वर की भक्ति से मिलते हैं, भाग्य या पुण्य के प्रताप से मिलते हैं, तप या काया को क्लेश देने से मिलते हैं। सारे गुण अनुभव की देन हैं। बच्चा खाते-खाते अपना खाना अपनी माँ के मुँह में दे देता है। परोपकार का यह गुण उसने अपने अनुभव नामी ईश्वर से पाया है। अगर कोई सच नहीं बोलता या हिंसा करता है या और कोई इन्सानी व्रत तोड़ता है, तो यही समझना चाहिए कि उसका अनुभव अभी अधूरा है। अगर सच बोलना सिखाना ईश्वर के हाथ होता, तो सब आदमियों को पलक मारते सच बोलना आ जाता, आदमी जानदार न रह-कर काठ की पुतली बन जाता। समझ में नहीं आता, कुछ लोगों को क्यों यह डर है कि ईश्वर के हाथ डाले बिना दुनिया का न कोई काम हो सकता है, न आदमी किसी तरह की भलाई सोच सकता है।

अनुभव आदमी के पास ऐसी चीज है, जो उसे एक क्षण ठाली न बैठने देगा, न नीचे गिरने देगी। सवाल हो सकता है, अगर यह बात है, तो दुनिया में बुरे आदमी क्यों मिलते हैं?

किसीको सोच-समझकर बुरा कहना इतना आसान नहीं, जितना बिना सोचे-समझे कह बैठना। हर आदमी की उन्नति की कसौटी अलग है। उदाहरण के लिए एक आदमी इसीमें अपनी उन्नति समझता है कि वह बिजली के बल्ब की तरह

चमके। दूसरा अपनी उन्नति इसमें मानता है कि वह बैटरी की तरह कोने में बैठा-बैठा बल्ब को चमकाता रहे। उस माँ को लीजिये, जिसने ऐसा पुत्र जन्मा, जो दुनिया में मशहूर हो गया। ऐसी संगिनी को लीजिये, जिसने अपने पति को दुनिया में चमका दिया। ऐसे गुरु को लीजिये, जिसने अपने शिष्य को सारे मनुष्य-समाज से पुजवा दिया। अब यह समझना मुश्किल है कि कौन किसको उन्नत समझता है। वह सोना उत्तम कहा जाय, जो कलश बनकर मन्दिर की चोटी पर से चमकता है, लाखों आदमियों से पूजा पाता है और उनकी आँखों को सुख देता है, या वह सोना उन्नत समझा जाय जो भस्म होकर मरते हुए क्षय के रोगी में प्राण फूँकता है? किसीको बुरा कह बैठना और बात है और ध्यान से यह देखना कि वह अपने अनुभव के आधार पर किस तरह आगे बढ़ रहा है, दूसरी बात है।

वाल्मीकि डाकू था। दुनिया की नजर उसके डाके डालने पर थी। वह हर डाके से क्या अनुभव ले रहा था और किस तरह आगे बढ़ रहा था, इसका किसीको पता न था। अगर वह लूट-मार और हिंसा के जरिये उदारता और अहिंसा का पाठ न सीख रहा होता, तो क्या एक सच्चे अनुभवी के मामूली उपदेश से वाल्मीकि साधु बन गया होता?

अनुभव आगे बढ़ाता है

अनुभव आगे बढ़ाता है। अनुभव का यह काम नहीं कि वह प्राणी को गलत या टेढ़े रास्ते चलने से रोके या सीधे रास्ते पर चलने की प्रेरणा करे। वह एक ही काम जानता है, आगे

बढ़ाना। मान लीजिये, एक आदमी किसी गाँव जाना चाहता है। उस गाँव का एक रास्ता है। कुछ दूर चलकर वह रास्ता फटकर दो हो जाता है। बायीं तरफ के रास्ते पर उसे पेड़ लगे मिलते हैं, दायीं ओर के रास्ते पर ऐसा कोई आराम नहीं। वह पेड़वाले रास्ते पर हो लेता है। आगे चलकर वह रास्ता बन्द मिलता है। अब अनुभव उसकी मदद करता है, निराश होने से रोकता है, लौटाता है। उसे फिर आगे को ढकेलता है। दुराहे तक लाकर उसे गाँव की तरफ ले जाता है और गाँव पहुँचा देता है। दूसरी बार जब वह आदमी गाँव की तरफ चलता है, तो अनुभव वैसी भूल नहीं होने देता।

बुराई की दवा भी अनुभव

किसी बुराई से बचने के लिए ईश्वर की प्रार्थना की जरूरत नहीं। ईश्वर की प्रार्थना ने कभी किसीको बुराई से नहीं बचाया। चोरी एक बुराई है। हम जेल में रहे। हमने सैकड़ों चोरों को देखा है और चोर ईश्वर-प्रार्थना के जितने पक्के मिले, उतने और नहीं। अफरीदी पठान, जो आदमी की जान लेना खेल समझते हैं, नमाज पढ़ने में कभी नहीं चूकते। फिर यह कैसे मान लिया गया कि चोरी की लत ईश्वर या प्रार्थना से छूट जाती है? यह ठीक है, बहुत आदमी अपने अनुभव या अपने सुने अनुभव के बल पर यह कहेंगे, हमारी चोरी की लत ईश्वर-प्रार्थना से छूट गयी, कई दूसरे आदमियों ने सुना कि उनकी लत ईश्वर-प्रार्थना से छूट गयी, तब हम यह कहेंगे कि वे अपने चोरी-जीवन के इतिहास पर एक नजर डाल जायँ। उनको पता चलेगा

कि यह ईश्वर की प्रार्थना नहीं है, जिसने उनको चोरी छुड़ाई, वल्कि वे अनुभव हैं, जो चोरी करते-करते हुए। कहाँ कोई ऐसी चोरी हुई हो, जिससे उनमें समझ जागी हो और उससे करुणा उत्पन्न हुई हो और उन्होंने चोरी छोड़ दी हो। जिस तरह यह कहने का रिवाज है कि आपकी कृपा से यह काम हो गया, वैसे ही यह कहने का रिवाज है कि ईश्वर की प्रार्थना या कृपा से यह काम हो गया। कार्य के गलत कारण वताने का रिवाज़ मुद्दत से चला आ रहा है। एक विद्वान् ने एक कुत्ते की कहानी के जरिये समझाया था कि किस तरह कुत्ता गाड़ी के नीचे चलकर यह समझ रहा था कि वह गाड़ी खींच रहा है।

आदमी को ईमानदार समझना काफी

विश्वास से विश्वास और अविश्वास से अविश्वास पैदा होता है, यह वात हमने अनुभव से सीखी है। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा हो, जो इसे ठीक न समझता हो, पर व्यवहार में इसका अमल वहुत कम है। मालिक मजदूर पर विश्वास नहीं करता, उसका काम देखने के लिए एक मेट रखता है। ग्राहक दूकानदार पर विश्वास नहीं करता, उसकी तौली चीज को फिर तौलता है। यह अविश्वास यहाँ तक फैल गया है कि परीक्षा देनेवालों को यह अधिकार मिल गया है कि वह कुछ फीस देकर अपनी उत्तर-पुस्तिका की फिर से जाँच करवा सकते हैं। कई विद्यार्थी दुवारा जाँच में पास होते मिले हैं। जव शिक्षा जैसी पवित्र संस्था का विश्वास के वारे में यह हाल है, तव औरों का क्या कहना!

इस अविश्वास ने जिस तरह मजदूरों पर ओवरसीयर रखने का रिवाज डाला और परीक्षा देनेवालों पर निगरानी रखनेवाले तैनात किये, वैसे ही आदमी के चरित्र की देख-भाल के लिए देवताओं का पहरा बठाया, ईश्वर को तैनात किया। हम नहीं मानते कि ऐसा करके आदमी ने अपनी आबरू बढ़ायी है। कहानियों के जरिये जो ऊँचे दरजे का साहित्य दिया जाता है, उनमें हमें पढ़ने को मिलेगा कि किसी पादरी के यहाँ चोर आता है, उसके चाँदी के बर्तन चुरा ले जाता है। पुलिस जब उसे पकड़ती है, तो चाँदी के बर्तन उसके पास निकलते हैं। वे बर्तन पहचाने जाते हैं। चोर पादरी के पास लाया जाता है और पादरी उसको चोर न बताकर भला आदमी बताता है और कहता है कि ये बर्तन उसने उस आदमी को दिये थे, उसने चोरी नहीं की। फिर उसी कहानी में हमें बताया जाता है कि उस चोर ने चोरी करना छोड़ दिया। ऐसी बातें कहानी में ही पढ़ने को नहीं मिलतीं, व्यवहार में भी देखने को मिलती हैं। तब क्या इसके आधार पर यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि आदमी को भला बनने के लिए उसे ईश्वर से डराना या नरक का डर दिखाना इतना जरूरी नहीं, जितना उसे ईमानदार समझना और उस पर विश्वास करना ?

दुनिया के कई मुल्कों की सरकारें अपने जेलखानों में चोर-डाकुओं को धर्म की तालीम के जरिये नरक का डर दिखा-दिखाकर और ईश्वर-प्रार्थना का पाठ दे-देकर कभी चोरी न छुड़ा सकीं। अपनी असफलता से पाठ लेकर उन्होंने अपना ढंग बदला। अब

वे चोर-डाकुओं को काम सिखाती हैं, उनकी दिक्कतों को समझने की कोशिश करती हैं, उन्हें नौकरी दिलवाने का प्रयत्न करती हैं, पुलिस-निगरानी की शर्तें ढीली करती हैं या बिलकुल बंद कर देती हैं। उन पर विश्वास करती हैं। जनता को उन पर विश्वास करने की सलाह देती हैं। इस सबका कुछ अच्छा नतीजा हुआ है, आगे और अच्छा होगा।

नरक-स्वर्ग, देवी-देवताओं और ईश्वर की मान्यता ने, हो सकता है, मनुष्य-जीवन के बाल्य-काल में कोई भला किया हो, पर आज इससे बहुत बड़ा नुकसान हो रहा है, आगे की बढ़वारी रुकी हुई है। ऐसा मालूम होता है कि सारी दुनिया एक ऐसे ज्वालामुखी पर जा पहुँची है, जो बहुत जल्द भड़क उठने को है और जिससे सारी दुनिया भस्म हो जायगी।

सवाल उठ सकता है, देवी-देवताओं पर विश्वास न करने-वालों की तादाद पश्चिम के कई मुल्कों में तेजी के साथ बढ़ रही है, फिर वहाँ इस तरह की बुराइयाँ क्यों मौजूद हैं?

इस सवाल का जवाब यह है कि वहाँ इस तरह के कुछ लोग पैदा हो गये हैं, जो सचमुच देवी-देवताओं को छोड़ अपने पर विश्वास करने लगे हैं, पर वे तादाद में इतने थोड़े हैं कि उँगलियों पर गिनने लायक हैं। एक तरफ उनकी गिनती इतनी कम है, दूसरी तरफ सख्त मुकाबला, फिर भी उन मुल्कों में पूर्व के मुल्कों से कम तादाद में भले आदमी नहीं, भले आदमियों की गिनती वहाँ कुछ ज्यादा ही है।

पर हम इस काम के लिए पूरब-पश्चिम के झगड़े में क्यों

पढ़ें ? अपने धर्म-ग्रन्थों पर ही नजर क्यों न डालें ? उन धर्म-ग्रन्थों के आधार पर जिन कथाओं की रचना की गयी, उनमें जब भी कोई आदमी बुरे रास्ते से भलाई के रास्ते पर लाया गया है, तब विश्वास के बल पर ही लाया गया है। विश्वास से मतलब यहाँ ईश्वर और देवता के विश्वास से नहीं, उस विश्वास से है, जिसका नाम आत्म-विश्वास है। ईश्वर और देवता के विश्वास की असफलता तो हम जेल के कैदियों पर दिखा चुके। यहाँ हम आदमी पर आदमी के विश्वास की बात कह रहे हैं और इसी बात का जिक्र कर रहे हैं। पुराणों में ईश्वर है, यह ठीक है। पुराणों में पुराण के विश्वास की भी बात है, पर उस तरह का विश्वास लिखनेवालों में था। उसे वे छोड़ कैसे सकते थे। अगर ईश्वर-विश्वास सब कुछ होता, तो कथा लिखने की जरूरत न थी। कथाओं की रचना सिर्फ इसलिए हुई कि आदमी आदमी पर विश्वास करना सीखे। और जब-जब, जहाँ-जहाँ, आदमी का विश्वास किया गया है, सफलता मिली। पुराणों में जो सफलता दिखाई गयी है, वह आदमी पर आदमी के विश्वास की है।

अनुभव से आत्मा परमात्मा के रूप में

आदमी के अनुभवों का भंडार गहरा है, इसकी थाह नहीं ली जा सकती। यह भंडार जबरदस्त शक्ति है। वह शक्ति कागजों में छिपी नहीं, लोगों के दिल में बैठी है। जो भलाई आज दुनिया में हो रही है, वह सब उसी अनुभव की देन है। वह अनुभव अपने-आपमें न चेतन है, न जानदार। पर चेतन के साथ मिलकर वह चेतन को ईश्वर में बदल देता है। आत्मा को

परमात्मा बनाने की योग्यता उसी अनुभव में है। अनुभव में अपने-आप न कोई बुद्धि है, न शक्ति; न इच्छा है, न उसका कोई लक्ष्य। वह तो आत्मा के साथ मिलकर या आदमी के दिमाग में बैठकर बहुत बड़ा रूप ले लेता है। वही सब-कुछ है, वह बुरे-से-बुरे आदमी में किसी मौके पर भलाई करने के लिए जोर की इच्छा पैदा कर देता है। इसी ईश्वर को हमें जगाना है। पर इस ईश्वर के जगाने की बात आदमी से न कोई कहता है, न सुझाता है। जिस ईश्वर के दर्शनों की बात उससे कही जाती है या जिसकी प्रार्थना करने को उसे उकसाया जाता है, वह ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने पर भी वीतराग बताया जाता है। भला उस वीतरागी को क्या पड़ी, जो आदमी से राग करे और उसके भले बनने की बात सोचे ? उस सर्वशक्तिमान् को इस बात की क्या जरूरत कि वह एक मामूली आदमी की प्रार्थना सुने, जब कि वह अपनी आँखों यह देख रहा हो कि जिस वक्त एक आदमी उससे प्रार्थना कर रहा है, उस वक्त अनगिनत दुनिया प्रलय का मुकाबला कर रही है। ठीक यही होगा कि आदमी को उसके अपने अनुभवों पर छोड़ा जाय और पुराने अनुभवों की मदद से वह अपने नये अनुभवों की जाँच करे और भलाई में लगे।

सद्बुद्धि ईश्वर से नहीं, अनुभवों से

भलाई इसीमें है कि कुछ दिनों के लिए यह भुला दिया जाय कि कोई ईश्वर हममें कभी सद्बुद्धि जगाये। जो सद्बुद्धि हममें आयेगी, वह हमारे अनुभवों की दी हुई होगी, वही हमारे साथ

रह सकेगी। दान में मिली सद्बुद्धि का क्या भरोसा ? रहे रहे, न रहे। जिन्होंने अपने ऊपर भरोसा करना सीखा, वे कभी टोटे में नहीं रहे। जिन्होंने ईश्वर पर भरोसा करना सीखा, वे हमेशा टोटे में रहे। जिन सन्तों और महन्तों का नाम लेकर दुनिया को ईश्वर पर भरोसा करना सिखाया जाता है, वे ईश्वर पर भले ही भरोसा करते हों, पर दुनियादारी के किसी काम में उन्होंने कभी ईश्वर पर भरोसा नहीं किया। उन्हें इस दुनिया में जो सफलता हासिल हुई, वह अपनी मेहनत और अपने अनुभवों से। यही कारण है कि दो महापुरुषों के ग्रंथ कभी एक-से न मिलेंगे। जिन बातों में एक-से मिलेंगे, वे बातें ऐसी हैं, जिनके लिए धर्मग्रन्थों के देखने की जरूरत नहीं। जैसे सच बोलना, किसी को न सताना, पवित्र रहना आदि। पर जिन बातों के लिए धर्मग्रन्थ देखने की जरूरत पड़ती है—जैसे चोटी रखना, दाढ़ी रखना, धोती पहनना, पाजामा पहनना—उनमें, अलग-अलग मिलेंगी। यही सबूत है कि वे महापुरुष ईश्वर के नहीं, अपने भरोसे पर रहे। ईश्वर तो उनके साथ ऐसे ही नत्थी था, जैसे हमारी आँत के साथ छोटी आँत, जो हमें कोई फायदा नहीं देती, पर कभी-कभी बीमार जरूर पटक देती है। इसलिए डॉक्टर आदमी का पेट चीरकर आँत निकालकर उस छोटी आँत को काट देते हैं और आदमी को हमेशा के लिए उस बीमारी से आजाद कर देते हैं, जिसे 'अपेंडिसाइटिस' कहते हैं और उस छोटी आँत का नाम है अपेंडिक्स। ईश्वर अपेंडिक्स की तरह हम सबके साथ है। वैसे ही महापुरुषों के साथ था।

अपना अनुभव ही ईश्वर

कबीर ईश्वर-भक्त थे। पर क्या कभी उन्होंने कपड़ा बुनना छोड़ा? कभी ईश्वर से राजा बनाने की प्रार्थना की? कभी ईश्वर से यह चाहा कि वह देवता के रूप में आकर उनका बुना थान ले जाया करे? या आगे कभी बीमार हों, तो वह किसी रूप में आकर उनकी गाड़ पर बैठ उनका थान बुन दिया करे? अब यदि कबीर को भी ईश्वर पर भरोसा करनेवाला मान लिया जाय, तो यही कहना होगा कि हम अपनी अक्ल का दिवाला पीट बैठे हैं। कबीर जैसे सन्तों का ही कहना है कि ईश्वर उनकी मदद करता है, जो अपनी मदद अपने-आप करते हैं। वह ईश्वर अपने अनुभव के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। कौन अपनी आँखों नहीं देखता कि उसका अनुभव हमेशा उसकी मदद करता है। छोटे बच्चे का यह अनुभव कि आग जलाती है, चट मदद के लिए आ कूदता है। जब बच्चे की तरफ उसकी तीन-चार बरस की बहन आग की जलती लकड़ी लाती है, वह फौरन बड़ी तेजी और फुर्ती के साथ बचने की कोशिश करता है। यह उससे ईश्वर नहीं कराता। अगर वह कराता होता, तो इससे पहले उसने आग में हाथ न दिया होता और अपनी उँगली न जलायी होती। अगर वह ऐसा न करता, तो उसे अनुभवनामी ईश्वर न मिलता। सब सन्त-महन्त और सारे महापुरुष अपने पर भरोसा करनेवाले और अपने अनुभवों की कदर करते रहे हैं।

सत्य हमारे अनुभवों का भंडार है। गांधीजी सत्य को ईश्वर कहते थे। पता नहीं, कब ईश्वर की प्रार्थना करते थे, पर

कहा करते थे कि वे करते हैं। करते होंगे। सैकड़ों-हजारों को ईश्वर-प्रार्थना सिखा जरूर गये और उन सीखनेवालों में कुछ ही बचे, जो सुस्त न बन गये हों और दुनियाभर की बुराइयों में न लग गये हों, जब कि गांधीजी खुद उसी ईश्वर के नाम पर बुराइयों से बचते रहे। उनसे जब भी पूछा गया, ईश्वर क्या है, तो उन्होंने कहा, ईश्वर सत्य है और अब हम यह कहते हैं कि सत्य अनुभवों का भंडार है। गांधीजी का मांस खाना ईश्वर ने नहीं छुड़ाया, गांधीजी की चोरी ईश्वर ने नहीं छुड़ायी, गांधीजी का विषय-भोग ईश्वर ने कम न किया, उसे छुड़ाया उस सत्य ने या उस अनुभव के भंडार ने, जो उनके पास मौजूद था। मांस खाकर वे पछताये, उन्हें अपनी माँ की याद आयी। वे उस माँ को धोखा देना नहीं चाहते थे, जिसने अपनी जान जोखम में डालकर उन्हें जन्म दिया और मुनियों जैसी तपस्या कर उन्हें पाला-पोसा था। यही था वह अनुभव, जो ईश्वर बन-कर आया और उसने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि मांस खाकर तुम पतित हो रहे हो, क्योंकि अपनी माँ के विश्वास को लतिया रहे हो। यही हाल उनका चोरी छोड़ने में हुआ और यही विषय-भोगों पर काबू पाने का। अगर वे ईश्वर पर भरोसा करते होते, तो सचमुच अरविंद घोष की तरह कोई नयी पांडिचेरी ढूँढ़ लेते या तपस्वियों की तरह कहीं हिमालय की गुफा में बैठ-कर निर्वाण प्राप्त करते। पर उन्होंने तो चरखा काता, अपने हाथ से रोटियाँ बनायीं, झाड़ू लगायी, टट्टी उठायी और इस तरह अपने अनुभवरूपी ईश्वर के लिए हमेशा खुराक जुटाते

रहे। वस, उनका ईश्वर या तो अनुभव था और अनुभव नहीं, कुछ और था, तो वह अपेंडिक्स बना हुआ रहा होगा।

सर्वव्यापी क्या और कैसे करेगा ?

सिद्धांतवादी और दार्शनिक ईश्वर पर जितना जोर देते हैं, उतना शायद दूसरे नहीं। उनका कहना है, ईश्वर कभी पैदा नहीं हुआ, न कभी मरता है। हमेशा से है, हमेशा तक रहेगा। यह सब बात तो अनुभव के लिए भी कही जा सकती है। पर जब वे यह कहते हैं कि वह अपनी अलग कोई सत्ता लिये है और दुनिया को बनाता है, दुनिया की सुध लेता है—यहाँ तक कि हरएक आदमी को अलग-अलग खाना खिलाता है, जब वे पैदा होते हैं, उनकी खोपड़ी की पट्टी पर इस तरह हाल लिख देता है, जिस तरह जेलखाने में कैदी की छाती पर लटकनेवाली पट्टी पर यह लिखा रहता है कि वह क्या जुर्म करके जेलखाने आया है—ये सब ऐसी बातें हैं, जिन्हें सुनकर हर आदमी का अनुभव काँप उठता है।

सिद्धान्ती और दार्शनिक ईश्वर को सर्व-शक्तिमान् और कुछ लोग सर्वव्यापी भी मानते हैं। तब तो और भी मुश्किल हो जाती है कि ऐसे सर्वव्यापी और सर्व-शक्तिमान् से क्या मदद माँगी जाय, किस तरह माँगी जाय, उसे कैसे खुश किया जाय, उसे किस चीज की जरूरत है, उसे भेंट में क्या दिया जाय ? फिर क्या वह सचमुच हमारी मदद कर सकता है ? अगर करेगा, तो कैसे करेगा ? जब वह सर्वव्यापी है, तो हिल-डुल न सकेगा।

आखिर वह क्या और कैसे करेगा ? इस सोच में पड़कर ये सिद्धान्ती और दार्शनिक किस तरह अपनी तसल्ली करते होंगे ?

ईश्वर को मानना अपने को धोखे में डालना

ईश्वर को लेकर आदमी ने अपने-आपको धोखे में डाल दिया है। धतूरा आदमी खुद ही खाता है। धतूरे का दूसरा नाम है 'कनक'। कनक याने सोना। आदमी धतूरा खाकर सब जगह सोना देखने लगता है। खूब हँसता है और उस सोने को, जिसे वह देखता है, उठाता है और उठाये जाता है। वहाँ लेना-देना क्या है? काल्पनिक सोना और काल्पनिक उठाना। उसका अन्त भी कैसे आ सकता है? ठीक इसी तरह आदमी ने ईश्वर के मामले में अपने को बहुत धोखे में डाल रखा है। रही प्रकृति ! वह एक शीशा है। उस पर आदमी नजर डालेगा, तो उसे वहाँ आदमी ही मिलेगा और वह वैसा ही मिलेगा, जैसा देखनेवाला होगा। यही हाल ईश्वर का है। जैसा आदमी प्रकृति के शीशे में ईश्वर को देखने के लिए दौड़ता है, उसी ढंग का ईश्वर उसे वहाँ मिल जाता है। वह बिलकुल उसकी छाया है। पर जिस तरह छोटा बच्चा अपनी छाया को छाया न पहचानकर दूसरा बालक समझता है और घर के रिवाज के अनुसार उसे नमस्कार करता, पुचकारता या खिलौने देता है, वैसे ही आदमी प्रकृति के दर्पण में अपनी छाया को ईश्वर समझकर अपने धर्म के रिवाजों के अनुसार दंडवत करता है, मिठाई चढ़ाता है, प्रार्थना बोलता है और न जाने क्या-क्या करता है। इस परछाई को सिद्धान्तवादी

और दार्शनिकों ने अपने ग्रन्थों के वल पर अटल वना दिया है—अचल वना दिया है।

अव रहे उसके गुण और रूप। ये हरएक के अलग-अलग होंगे, क्योंकि हरएक की बुद्धि अलग-अलग, हरएक की कल्पना-शक्ति अलग-अलग। जैसा जिसके मन में आया, उसने वैसा रूप गढ़ दिया। यह न सोचा कि अगर उसे अनंत कह दिया जायगा, तो फिर उससे काम कैसे लिया जायगा? पर उन्हें यह कहना था कि वह कभी पैदा नहीं हुआ। इसलिए अनादि कहना ही उनके लिए ठीक था। पर मुश्किल यह आ पड़ी कि जव वह पैदा नहीं हुआ, तो उसे किसी चीज की जरूरत नहीं और कोई उसे नुकसान नहीं पहुँचा सकता और न कोई उसका भला कर सकता है और हमारे खयाल में न वह किसीका भला-बुरा कर सकता है। अव वह क्या रह जाता है, यह जानें दार्शनिक और सिद्धान्तशास्त्री! या वेद जानें, जो इस कोशिश में लगे हैं कि उस अनादि-अनंत को कुछ गीत गाकर खुश कर लेंगे। मानो वह पूजा-प्रतिष्ठा का भूखा है और खुश होकर उन्हें कुछ दे देगा।

यह पूजा-प्रतिष्ठा का आदमी, जो कल्पना का धतूरा खाये है, इसके सिवा और सोच भी क्या सकता था? हम नहीं समझते कि इस नशे की आदत डालकर दुनिया का आज क्या भला हो रहा है। वड़े-बड़े समझदार आदमी शराव के वारे में कह वैठते हैं कि उसे पीकर चित्त एकाग्र हो जाता है और वड़ा अच्छा लिखा जा सकता है। पर वे यह नहीं सोचते कि जो ऊँचे दर्जे के ग्रन्थ और ऊँचे दर्जे का साहित्य आज अमर वना है और

आदमी में इज्जत पा रहा है, उसमें से कितना शराबियों का लिखा है। शराबियों का लिखा या तो फुलझड़ी की तरह अपनी चमक दिखाकर खतम हो जाता है या शराब-पसन्दों की तसल्ली करता रहता है या उम्र पाकर नष्ट हो जाता है। पर जो शराब न पीकर लिखा गया है, वह क्या काम कर रहा है, उस पर उनकी नजर नहीं जाती। यही हाल दार्शनिकों और सिद्धान्त-शास्त्रियों का है। उनका कहना है, ईश्वर का ध्यान करके चित्त एकाग्र हो जाता है। यह बताना जरा मुश्किल काम है। ईश्वर की भक्ति में लिखा हुआ साहित्य सब धर्मों का, सब-का-सब इकट्ठा कर लिया जाय, तो उसका निचोड़ हमारे खयाल में मुश्किल से एक फार्म की पुस्तक बन सकेगा और उसे भी अगर छोटा किया जाय, तो वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्व-व्यापकता में समा जायगा। सर्वशक्तिमान् को कुछ भी कहे जाइये, उस पर सब लागू हो सकता है। इसमें सोचने-समझने की जरूरत कहाँ? धतूरा खाया आदमी क्या उस सोने को कभी उठा पायेगा, जिसे वह देख रहा है? इसी तरह कल्पना के धतूरे के नशे में चूर को कभी ईश्वर मिल पायेगा?

आदमी को अब यही चाहिए कि वह ईश्वर को खुश करने की बात छोड़ अपने पर विश्वास करे। अपने अनुभवों से फायदा उठाकर दूसरों की भलाई में इसलिए लगे कि दूसरों की भलाई में उसकी भलाई है।

० ० ०

: १७ :

सत्य क्या कहता है ?

सत्य आदमी का गुण है। हमेशा से उसके साथ है, हमेशा तक बना रहेगा।

सत्य आदमी से अलग होकर कुछ भी नहीं। उसके साथ रहकर सब-कुछ है। गुण के गुणी से अलग होने की कल्पना की जा सकती है, अलग किया नहीं जा सकता।

हमेशा साथ रहनेवाले की खोज क्यों ?

सत्य जब हमेशा से साथ है, तब उसकी खोज क्यों ? और इतना भी पता क्यों नहीं कि वह क्या है ?

आदमी अपनी आँख नहीं देख सकता। वह जन्म से साथ है, मरने तक साथ रहेगी। उसे देखने के लिए दर्पण की जरूरत पड़ती है।

सत्य हमेशा से साथ है, मगर दिखाई नहीं देता, तो घबराने की बात नहीं। उसकी सुनो, उसे देखने की धुन में न लगो। वह तुम्हें दिखाई देने के लिए इतना ही उत्सुक है, जितने तुम उसे देखने के लिए।

सत्य गुण है, गुण में समझ और जान नहीं होती। गुण अपने-आप कुछ नहीं कर सकता। सत्य गुण की हैसियत से कुछ नहीं चाह सकता। सत्य तुम्हारे साथ एकमेक होने से

तुम्हारी भलाई ऐसे ही चाहने लगता है, जैसे तुम अपना भला चाहते हो।

सत्य तुम्हारा साथी बनकर तुम्हारी भलाई के लिए ऐसे ही तड़पता है, जैसे तुम तड़पते हो। उसके लिए मुश्किल यही है कि वह यह चाहता है कि तुम्हें दिखाई दे जाय, पर इस विषय में वह कुछ नहीं कर सकता। उसके और तुम्हारे बीच जो पर्दा है, उसे तुम ही तोड़ोगे, कोई दूसरा नहीं। लोहे के अन्दर की चमक जिस तरह तुम्हारे माँझने से तुम्हें दिखाई देती है, उसी तरह सत्य को माँझने से सत्य की चमक दिखाई देगी।

सत्य यही चाहता है कि तुम अपनी आँख खुली रखो। दोनों कान खड़े रखो, और अपनी सारी इन्द्रियों को सचेत बनाये रखो।

तुम कहोगे, हम तो अपने आँख-कान हमेशा खुले रखते हैं, अब और किस तरह खोलें ?

सवाल ठीक है, पर इसका जवाब तुम्हारे पास है। देखो, जब तुम छोटे थे, तब भी तुम्हारी आँखें खुली थीं, कान चौकन्ने थे। पर उन दिनों इन खुली आँखों और इन चौकन्ने कानों से जो देखते-सुनते थे, क्या आज भी उसी तरह देखते-सुनते हो ?

तुम जब छोटे थे, फूल को देखते थे, खुश होते थे। उसे तोड़ते थे। उसे मुँह में रख लेते थे। जरा बड़े हुए, उसे मसलकर फेंकने लगे। जरा और बड़े हुए, पेड़ के सारे फूलों को लकड़ी मार-मारकर गिराने लगे। यह भी देखना देखना था।

अब तुम बड़े हो। अब भी फूलों को देखते हो, अब भी

खुश होते हो। अगर तुम बहुत समझदार हो, तो उसे नहीं तोड़ते, क्योंकि उसकी खुशबू तुम्हारी नाक तक और फिर तुम तक अपने-आप पहुँच जाती है। अगर तुम इतने समझदार नहीं और अपने मन पर काबू नहीं, तो तुम पेड़ पर से एक-दो फूल तोड़ लेते हो। उसे न मसलते हो, न मुँह में रखते हो, न फेंकते हो, रूमाल में रखकर सूँघते हो। यह भी एक देखना है।

दोनों देखने में अन्तर है। पहले देखने से दूसरे देखने तक पहुँचने में तुमने सत्य के ऊपर से कई पर्दों को रगड़ डाला है और यह देखकर तुम्हारे अन्दर का सत्य बहुत खुश हो रहा है। सत्य यही चाहता है कि और आँखें खोलो, और भी कानों को चौकन्ना करो, और भी सारी इन्द्रियों में चेतना लाओ और मन पर धीरे-धीरे काबू पाते जाओ।

दुनिया में सत्य से बढ़कर तुम्हें चाहनेवाला कोई दूसरा नहीं है। माँ-बाप भी नहीं। अगर अलग कोई ईश्वर है, तो वह भी नहीं। जैसा ईश्वर लोगों ने मान रखा है, वह तुम्हें कभी इतना प्यार नहीं कर सकता, जितना सत्य। इसका कारण है।

सत्य तुम्हें कितना प्यार करता है, इस बात को समझाने के लिए सत्यभक्तों ने बड़ी-बड़ी कहानियाँ लिख डाली हैं और सीता-राम की कथा, ऐसी ही एक है।

जैसे सीता वनवास में साथ रहने के लिए मचल उठी, वैसे ही सत्य एक क्षण के लिए अलग नहीं रहना चाहता।

सीता की जो लगन कवियों ने राम के लिए दिखाई है, अगर उसे हम एक बूंद पा लें, तो सत्य की लगन तुम्हारे साथ रहने

और तुम्हारे देखने की सागर जितनी समझी जायगी। अब तुम अन्दाजा लगाओ कि सत्य का प्रेम तुम्हारे लिए कितना है। ऐसा क्यों है ?

जो ईश्वर, जो राम तुम्हारे अन्दर है, वही तो सत्य है। अब अगर तुम चोर हो, तो वह चोर है। अगर तुम हिंसक हो, तो वह हिंसक है। तुम जो हो, वही वह है।

राम राजकुमार थे, सीता राजकुमारी थी। राम वनवासी थे, सीता वनवासिनी थी। सीता महल में सोलह शृंगार करके भी रहती, तो वनवासिनी तो कहलाती ही, उससे भी ज्यादा कहलाती, वियोगिनी। वियोगिनी न बनकर उसने वनवासिनी बनना ठीक समझा। राम विजयी हुए, वह अपने-आप विजयन्ती कहलाने लगी। राम राजा हुए, वह रानी बन गयी।

सत्य एक शक्ति है और शक्ति के नाते वह सीता है। सत्य को पहचाने हुए तुम शक्तिधारी हो। शक्तिधारी के नाते तुम राम हो।

तुम्हारी बढ़वारी में सत्य की बढ़वारी है। राम के राजा होने में सीता के रानी बनने की बात छिपी है। फिर कौन हो सकता है, जो सत्य से ज्यादा तुम्हें प्यार करेगा।

सीता की यह इच्छा कि राम विजयी हों, अयोध्या के राजा बनें, यदि एक आना मानी जाय, तो सत्य की यह इच्छा कि तुम भगवान् बनो, लाख और करोड़ रुपयों से भी कहीं ज्यादा कही जायगी।

सत्य के सामने आना ही भगवान् बनना

सत्य से रूबरू होना यानी सत्य के आमने-सामने आना ही तो भगवान् बनना है। इससे आप सत्य की तड़प का अन्दाजा लगा सकते हैं।

सत्य न अपने-आप को माँझ सकता है, न माँझता है। वह तो तड़पनाभर जानता है और चौबीसों घंटे तड़पता रहता है। तुम उस तड़पन का अनुभव नहीं करते। जब तुम अनुभव करने लगोगे, तो अपने सारे अनुभवों से मदद लेना सीख लोगे। और दूसरों के अनुभवों की रेगमाल बनाकर उस मैल को माँझ डालोगे, जो सत्य पर मुद्दतों से चढ़ा है और आये दिन चढ़ता रहता है।

दाँत रोज माँझने पड़ते हैं। मुँह रोज धोना पड़ता है। आँखों में सुर्मा रोज आँजना पड़ता है। तब कहीं दाँत, मुँह और आँखें साफ रहती हैं। यही हाल सत्य का है। उसके ऊपर रोज धूल चढ़ती रहती है, उसे तो रोज साफ करते रहना ही चाहिए और पुराने मैल को माँझने के लिए भी कुछ वक्त निकालना चाहिए।

बालकपन की आँख से जवानी की आँख कम देखती है, पर ज्यादा ठीक देखती है। जवानी की आँख से बुढ़ापे की आँख और भी कम देखती है, पर बहुत ज्यादा ठीक देखती है। और अनुभवों से हुई अंधी आँख बिलकुल न देखकर बहुत ज्यादा देखती है। यही हाल मनुष्य-समाज की बचपन की आँख का और आज की आँख का है। मनुष्य-समाज बचपन में बहुत

देखता था, पर कुछ-का-कुछ देखता था। आज वह कम देखता है, पर पहले से ठीक देखता है।

सत्य की सीख

सत्य यह चाहता है कि तुम बाहर किसी ताकत को ढूंढ़कर टोटे में रहोगे। तुम्हारा नफा इसीमें है कि मेरे ऊपर लगी काई माँझ डालो, मेरे ऊपर एक मिनट भी धूल न रहने दो। पर तुम हो कि उसकी न सुनकर ताकत के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भागे फिरते हो। तुम्हारी यह हालत देखकर सत्य घबरा उठता है।

सत्य यह चाहता है कि जो कुछ आँख देखती है या जो कान सुनते हैं, वह वही नहीं होता जो दिखाई या सुनाई देता है। आँख को वही दिखाई देता है, जो मन ने सोच रखा होता है। आदमी देखते समय यह कहता है कि मैं किताब का पन्ना देख रहा हूँ, लेकिन उसका मन न जाने क्या देख रहा होता है। यही कारण है कि पन्ने पर लिखे किसी खास शब्द को देखने के लिए कितनी ही बार निगाह डालनी पड़ती है। तब पन्ना देखने की बात कैसे ठीक मानी जा सकती है ?

सत्य यह चाहता है कि तुम आँख, नाक की न सुनकर मन की सुनो, पर वहीं न रुक जाओ।

सत्य यह चाहता है कि मन की सोची बातों को ज्यों-का-त्यों न मान लो। उसे अनुभव की कसौटी पर कसो। अगर वह कसौटी पर ठीक न उतरे, तो उसे ऐसी ही रद्दी समझ लो, जैसे आँख का देखा और कान का सुना।

सत्य चाहता है कि कार्य-कारण के मामले में सतर्क रहो।

किसी कार्य का ऐसा कारण न मानो, जिस कारण से उस तरह का कार्य तुम खुद न कर सको।

अगर तुम उस कारण से वैसा कार्य नहीं कर सकते, तो यह देखो कि उस कारण से वैसा कार्य कोई कर सकता है या नहीं।

अगर ऐसा भी न हो, तो यह देखो कि क्या तुम्हारे अनुभवों का भंडार इस बात में कुछ भी मदद देता है कि उस कारण से इस तरह का कार्य हो सकता है।

अगर ऐसा भी न हो और तुम्हारा अनुभव-भंडार इसमें जरा भी मदद न करे, तब दूसरों के उन अनुभवों से मदद लो, जिनको तुमने अपने अनुभवों की कसौटी पर कसकर ठीक मान लिया है। अगर उन अनुभवों की मदद से यह बात समझ में आ जाय कि हाँ, उस कारण से वैसा कार्य हो सकता है, तब मान लो। अगर न हो सकता हो, तो न मानो।

दूसरों के अनुभवों के आधार पर माना हुआ कार्य-कारण ऐसा नहीं है, जो यों ही पड़ा रहने दिया जाय। हाँ, यह ठीक है कि जैसे और खोटी बातें सत्य पर धूल छा जाने का काम करती हैं, वैसे यह बात धूल तो नहीं फैलायेगी, पर माँझने में सहायक नहीं हो सकती, किसी काम नहीं आ सकती।

सत्य यह चाहता है कि कोई कार्य-कारण जिसे तुमने खुद नहीं किया और तुम्हारे पास पड़ा है, कभी भी बीच के पर्दे को न तोड़ सकेगा और कभी मुझमें और तुममें मेल न होने देगा।

सत्य यह चाहता है कि जब तुम यह देखो कि कोई आदमी या औरत यह शोर मचा रही है कि कोई मुझे मार रहा है, जब कि वहाँ कोई आदमी नहीं है, तब एकदम कोई बात तय न कर बैठो और न किसीकी तय की हुई बात को मान बैठो। अपने अनुभवों का भंडार टटोलो और देखो, किन-किन हालतों में आदमी ऐसी बेतुकी बातें बकने लगता है। ऐसा करने पर तुम्हारे अनुभव उस घटना के कई कारण बता सकते हैं। फिर देखो कि उनमें से कौनसा ठीक बैठता है। जो ठीक बैठे, उसीके अनुसार उस आदमी को समझाओ या उसका उपचार करो।

सत्य यह कहता है कि जब-जब तुम अपने अनुभवों के बल पर किसी अगले अनुभव के लिए जान दे देते हो, तब-तब तुम मुझे अपने बहुत करीब पाते हो। यही कारण है कि तुम्हें जल्दी सफलता मिलती है और अगर मौत भी हो जाती है, तो अपने साथियों के लिए ऐसी चीज छोड़ जाते हो, जिसके कारण वह तुम्हें मरने नहीं देते।

लेकिन, अगर तुम दूसरों के अनुभव पर अपनी जान खतरे में डालते हो, तो मैं तुमसे बहुत दूर जा पड़ता हूँ। ऐसे वक्त तुम्हारी मौत हो जाय, तो तुम कोई चीज अपने पीछे नहीं छोड़ सकते। अगर कोई चीज छोड़ ही गये, तो वह ऐसी नहीं होगी, जिससे कोई फायदा उठा सके। क्योंकि वह वही चीज हो सकती है, जो जानवरों में ज्यादा मिलती है और आदमियों में कम।

सत्य यह नहीं चाहता कि कोई आदमी दूसरों के अनुभवों

की खातिर शेर जैसी वहादुरी दिखाकर अपनी जान दे दे। क्योंकि इससे उसका कोई भला न होगा, उसके अन्दर रहनेवाले सत्य को कोई फायदा न पहुँच सकेगा।

सत्य यह नहीं चाहता कि कोई आदमी दूसरों के अनुभव के लिए हद से ज्यादा उदार वन जाय। क्योंकि उस उदारता से उसके अन्दर रहनेवाले सत्य को कोई लाभ न पहुँचेगा।

कार्य-कारण भाव पर जोर

सत्य यह चाहता है कि तुम किसीकी वात को सिर्फ इस वजह से न मान लो कि वह आदमी वहुत वड़ा विद्वान् है।

किसीकी वात को इस वजह से न मान लो कि वह वहुत वड़ा त्यागी है।

इस वजह से न मान लो कि वह किसी पुराने शास्त्र में लिखी है।

किसी वात को किसी ऐसी वजह से न मानो, जो उसका कारण न हो।

जो वात मानो, वह कारण की वजह से मानो। वात वात की खातिर मानी गयी हो। वात की योग्यता वात के अन्दर हो, न कि किसी दूसरे के अन्दर, न कि उसके पुराने या नयेपन में।

जो वात सौ वार परीक्षा करने पर निन्यानवे वार ठीक निकले, उसको भी मत मानो। उसकी फिर परीक्षा करो। जव तक वह सौ-में-सौ वार ठीक न निकले, तव तक वह सत्य नहीं मानी जा सकती।

परीक्षा की जरूरत

सत्य यह चाहता है कि जब तक तुम्हारा अपना अनुभव किसी बात को ठीक-ठीक न बता दे, तब तक उसे अपने अन्दर एक ऐसे खाने में डाल रखो, जो तुम्हारे और मेरे बीच आड़े न आने पाये। तुम्हारी सारी जानकारी मेरे ऊपर धूल का काम करती है—अगर वह तुम्हारे अनुभवों पर ठीक नहीं उतरती। फिर भी तुम उसे ठीक समझे हुए हो।

इसीका नाम अन्ध-विश्वास है। इसीका नाम मिथ्या-विश्वास है। यही वह जबर्दस्त पर्दा है, जिसे दूर करने के लिए सत्य तड़प-तड़पकर मौन रहते इशारा करता है।

सत्य यह चाहता है कि तुम अपने भीतरी जीवन की पूरी-पूरी पहचान करो, जिसके बल पर तुम उन सचाइयों का प्रकाश कर सको, जो तुमने प्राप्त की हैं।

उसका कहना है कि तुम्हें प्रकृति से एक ही औजार मिला है, जिससे तुम चीजों की परीक्षा कर सकते हो और उसका नाम है 'बुद्धि'।

बुद्धि ऐसा औजार है कि सिवा सत्य के और किसी पर नहीं घिसा जा सकता। औरों पर घिसने से वह कुन्द हो जाता है और मिथ्या-बुद्धि नाम से पुकारा जाता है। मिथ्या-बुद्धि कभी-कभी अन्तरात्मा बनकर तुम्हारे सामने खड़ी होगी, पर अगर तुमने भीतरी जीवन को अच्छी तरह समझ लिया, तो फिर तुम्हारे सामने बुद्धि जब भी आयेगी, तब मिथ्यात्व का जामा उतारकर आयेगी।

उसका कहना है कि कभी ऐसी भूल न करना कि धर्म-ग्रन्थों पर अपनी बुद्धि कसने लगो। धर्म-ग्रन्थ तो बुद्धि पर कसे जाते हैं।

उसका कहना है कि धर्म-ग्रन्थ बुद्धि की देन हैं और वह बुद्धि सद्बुद्धि भी हो सकती है और मिथ्या-बुद्धि भी। तव उन्हें हर वक्त बुद्धि की कसौटी पर कसे जाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

स्वार्थियों के कारण बुद्धि का महत्त्व कम नहीं

गणित एक ऐसी सचाई है, जिसमें रत्तीभर भूल नहीं होती। लेकिन अगर कोई किसान किसी साहूकार के वारे में यह कहने लगे कि "देख लिया जी गणित, वह तो विलकुल झूठी विद्या है, क्योंकि हमारे साहूकार ने हिसाव लगाकर जितना सूद हमारे नाम निकाला था, वह अदालत में झूठा सावित हुआ।" गणित के वारे में ऐसी राय उसी किसान की हो सकती है, जो गणित को नहीं जानता, या जिसे किसी साहूकार ने धोखे का गणित तैयार करके लूट लिया हो। सत्य का कहना है कि ठीक इसी तरह जो बुद्धि की खिल्ली उड़ाते हैं, वे वही लोग हैं जो बुद्धिमान् नहीं और जिन्होंने किसी बुद्धिमान् से धोखा खाया है। बुद्धिमानों ने धर्म-ग्रन्थों के अपने मतलब के लिए कुछ के कुछ अर्थ लगाकर बुद्धि की कदर उठा दी है। पर जिस तरह मूर्खों की नजर में गणित की वेकदरी हो जाने से गणित ने अपनी सचाई नहीं खोयी, वैसे ही कुछ स्वार्थियों की नजरों में बुद्धि की हँसी उड़ जाने से बुद्धि का महत्त्व नहीं जा सकता।

सत्य का कहना है, यह कैसे हो सकता है कि जिस बुद्धि से हम

दुनिया के सब कामों की जाँच करते हैं, फिर वे काम चाहे घर के हों, कुटुम्ब के हों, व्यापार के हों, राजनीति के हों, विज्ञान के हों, कला के हों या किसी किस्म के हों, पर नहीं कर सकते, तो धर्म की जाँच भी नहीं कर सकते। अब सिवा इसके क्या कहा जा सकता है कि धर्म मूर्खता की देन है, इसलिए बुद्धि पर नहीं कसा जा सकता और अगर वह बुद्धि की देन है, तो सिवा बुद्धि के उसे कौन परखेगा ?

सत्य, अन्तरात्मा, बुद्धि; तीनों एक

सत्य का कहना है कि अन्तरात्मा और बुद्धि दो चीजें नहीं हैं, इनमें गुण-गुणी सम्बन्ध है। अगर अन्तरात्मा बुद्धि-रहित है, तो वह अच्छी-बुरी कैसी भी सलाह नहीं दे सकता। अगर सलाह देता है, तो वह समझदार और बुद्धिमान् है।

सत्य कहता है, लोगों का यह कहना गलत है कि ईश्वर बुद्धि से समझ में नहीं आ सकता, लेकिन अन्तरात्मा से समझ में आ सकता है। अन्तरात्मा और बुद्धि एक चीज है। अगर कुछ मूर्खों की नजर में वे दो चीजें हैं, तो वह हैं तो एक की ही। जो बात हमारा अन्तरात्मा जानेगा, वह बुद्धि तक पहुँचे बिना कैसे रहेगी ? इसलिए ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अन्तरात्मा और बुद्धि दो चीज हों।

सत्य का कहना है, मैं आत्मा से अलग होकर कोई चीज नहीं हूँ। मैं आत्मा से अलग हो ही नहीं सकता। मैं और आत्मा एकमेक हैं। कहने और समझने के लिए हम दो हो सकते हैं।

वैसे ही अन्तरात्मा, बुद्धि, समझ, विश्वास, ज्ञान, आत्मा, सत्य यह सब एक ही चीज हैं, नाम के लिए अलग-अलग हैं।

प्रकाश का जो रंग है, वह है। पर वह हरे शीशे में हरा, लाल शीशे में लाल और नीले शीशे में नीला दिखाई देता है। ठीक इसी तरह 'मैं' यानी सत्य अपना प्रकाश लिये है। मेरे ऊपर धूल जमी है। उस धूल में होकर मेरा प्रकाश जो बाहर निकलता है और जिस प्रकाश से आदमी सारा काम चलाता है, इसीका नाम बुद्धि है। बुद्धि एक चन्द्रमा है, जिसे मुझ सत्य-सूरज से चमक मिलती है। उसकी चमक और मेरी चमक में अन्तर होगा ही। जैसे-जैसे अन्ध-विश्वास पर से मिथ्या-विश्वास के बादल हटते जायँगे, वैसे-वैसे बुद्धि की चमक बढ़ती जायगी। एक दिन ऐसा हो सकता है कि 'बुद्धि' और 'मैं' सत्य एक बन जाऊँ। आदमी का जन्म इसी बात की कोशिश करने के लिए हुआ है।

सत्य का कहना है, बुद्धि मेरी है, उसकी मेरी तरह से कद्र करो, इस विषय में कभी धोखा न खाओ। अगर तुम इस धोखे से बचे रहे, तो बहुत जल्दी अपने अंदर की सचाइयाँ जान लोगे और मेरे दर्शन पा सकोगे। मैं तुम्हें समझ लूँगा, तुम मुझे समझ लोगे।

छोटा बड़े से ज्यादा बुद्धिमान्

सत्य का कहना है, यह बात बिलकुल गलत है कि छोटा बच्चा बुद्धिमान् नहीं होता। बड़े-बड़े ज्ञानियों में और बालक में कोई अन्तर नहीं। चींटी और हाथी में कोई अन्तर नहीं। देह के छोटे-बड़े का अंतर है। ध्यान से देखा जाय, तो चींटी जितना

बोझ उठाकर ले जाती है, हाथी उसी अनुपात से नहीं ले जा सकता। यही हाल दूध-पीते बच्चे का है। जितनी छोटी उसे देह मिली है, जितने छोटे काम उसके सिपुर्द हैं, उन सबसे काम लेने के लिए जितनी बुद्धि उसके पास है, वह कहीं ज्यादा है उन ज्ञानियों की बुद्धि से, जिन्हें बहुत बड़ी देह और बहुत बड़ा काम मिला है।

सत्य का कहना है, दूध-पीते बालक को न धोखा देकर हिन्दू हिन्दू बना सकते हैं, न मुसलमान मुसलमान, न ईसाई ईसाई। बड़ा आदमी बहकाया जा सकता है, दूध-पीते बालक को बहकाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। धर्मवाले दुनिया को बहका सकते हैं कि आग में सीतादेवी बैठकर नहीं जलीं, आग ठंढी हो गयी थी; पर दूध-पीते बालक को नहीं बहका सकते, जिसने अपनी उँगली आग में डालकर बुद्धि के बल से यह पहचान लिया है कि आग गरम होती है और वह आदमी की देह को जला देती है।

सत्य का कहना है, यह कहकर कि जो सच्चा होता है उसे आग नहीं जलाती, सीतादेवी को धोखा दिया जा सकता है। वे धोखे में आकर आग में घुस सकती हैं, पर किसी बच्चे को यह कहकर धोखा नहीं दिया जा सकता कि जो सच्चा होता है, वह आग में नहीं जलता। बालक को अच्छी तरह मालूम है कि वह बिलकुल सच्चा है और उसने सच्चे बालक की हैसियत से ही अपनी उँगली आग में दी थी और वह जलने लगी थी। उस बालक का ज्ञान सब धर्मशास्त्रियों से कहीं सच्चा ज्ञान है, क्योंकि उसका

अनुभव है कि सच्चे आदमी की उँगली को भी आग जला देती है। फिर उसकी देह क्यों नहीं जला देगी ?

सत्य का कहना है, आग का काम जलाना है। पर हाँ, आग जैसी चमकती चीजें और भी हो सकती हैं, जो ठण्ढी होकर भी आग जैसी समझी जायँ। उनमें बैठकर सच्चे और झूठे, दोनों ही जलने से बच सकते हैं। आज भी यह तमाशा किसने नहीं देखा कि दहकते कोयलों पर झूठे और सच्चे, सभी नंगे पाँव निकल जाते हैं। यह भी किसने नहीं सुना कि दूध का जला छाछ फूँक-फूँककर पीता है। छाछ को गरम दूध समझकर अगर कोई अपनी उँगली डाल दे, तो वह जलेगी नहीं। लोग भले ही यह समझें और यह कहा करें कि उस आदमी ने गरम दूध में उँगली डाली थी और वह जली नहीं, क्योंकि वह सच्चा आदमी था।

बुद्धि आड़े समय की साथिन

सत्य का कहना है कि बुद्धि के सिवा और कौन है, जो हर वक्त तुम्हारे साथ रह सकता है और आड़े वक्त तुम्हारे काम आ सकता है।

जो तुम्हें बुद्धि से काम न लेने की बात कहते हैं, वे खुद बुद्धि से काम ले रहे हैं। फिर वे कैसे हकदार हो सकते हैं कि यह कहें कि तुम बुद्धि से काम नहीं ले सकते।

सत्य का कहना है कि मुझे पहचानने के लिए या मेरे ऊपर से धूल को हटाने के लिए जितनी बुद्धि की जरूरत है, उतनी सबको मिली हुई है—फिर चाहे बच्चा हो या बड़ा, पढ़ा-लिखा हो या बेपढ़ा, जंगली हो या शहरी। हाँ, झूठ बोलने के लिए और

सत्य को असत्य का रूप देने के लिए, लोगों को लूटने और लोगों का विनाश करने के लिए, आविष्कारों को सोचने के लिए खास बुद्धि की जरूरत होती है। यह किसीसे छिपा नहीं है कि छोटे-छोटे वच्चे अपनी माँ के सामने जब किसी झगड़े का फैसला कराने के लिए पहुँचते हैं, तो वकीलों की जरूरत नहीं होती। लेकिन जव एक डाकू यह सावित करना चाहता है कि उसने डाका डालकर भी डाका नहीं डाला, तव होशियार से होशियार वकील को अपने साथ लेकर अदालत के सामने पहुँचता है।

सत्य का कहना है, झूठ वोलने में बुद्धि पर जितना जोर पड़ता है, उतना सत्य वोलने में नहीं। झूठ वोलने में वोलनेवाले को डर लगता है। दुःख होता है। सच वोलने में आदमी निर्भीक रहता है और आनन्द मानता है।

सत्य का कहना है कि जैसे ही आदमी बुद्धि के इशारों से वेपर्वाह हुआ कि वह ऐसी चीजों को मान वैठता है, जिसमें कार्य-कारण का कोई मेल नहीं होता। उसीको सत्य मान वैठता है और फिर उसके ऊपर ऐसी इमारत खड़ी कर लेता है, जो वेतुकी और वेमेल होती है। अव उसे मजवूर होकर झूठ को सत्य कहने के लिए वड़ी-वड़ी कोशिश करनी पड़ती है, फिर भी उसमें एक नहीं, अनेक भूलें रह जाती हैं। यह किसीसे छिपा नहीं है कि झूठ को सच सावित करने के लिए हर वकील को रातों जागना पड़ता है। अगर वह सत्य को पहचानने में इतना वक्त लगाता, तो कहीं-का-कहीं पहुँच जाता, पर पैसों की खातिर वह इस काम में लगता है और बुद्धि का उपयोग करता है।

सत्य का कहना है, यह किसे मालूम नहीं कि आदमी की परछाईं कई कारणों से कभी-कभी आदमी से कई गुना लंबी हो जाती है, कई गुना मोटी हो जाती है। आदमी नहीं काँपता, पर परछाईं काँपने लग जाती है, आदमी टेढ़ा नहीं होता, परछाईं टेढ़ी हो जाती है। ठीक इसी तरह बुद्धि मुझ-सत्य की परछाईं है, पर धर्मशास्त्री वकीलों की तरह मिथ्या-विश्वासों को सिद्ध करने के लिए उसको मुझसे लंबी, चौड़ी, भारी, मोटी, सावित बना देता है। सचाई को समझने के लिए परछाईं जितनी है, उतनी काफी है। हाँ, वह कानूनों को नहीं समझती, सिद्धान्तों को नहीं समझ सकती, इलहामों को नहीं समझ सकती और ईश्वर और सर्वज्ञ के नाम से कही हुई बातों को नहीं समझ सकती। उनके समझने के लिए मिथ्या-बुद्धि की जरूरत होती है।

सत्य का कहना है, मिथ्या-विश्वास के साथ मिथ्या-बुद्धि ही रह सकती है और मिथ्या-बुद्धि के जो काम होंगे, वे मिथ्या काम ही हो सकते हैं।

जीवन का उद्देश्य अपने को पहचानना

सत्य का कहना है, आदमी के जीवन का उद्देश्य आदमी के साथ आया है। उसे बाहर ढूंढने की कहाँ जरूरत है? उसके जीवन का उद्देश्य इसके सिवा क्या हो सकता है कि वह अपने को पहचाने! अपने को पहचानना उसके लिए मुश्किल नहीं हो सकता, न होना चाहिए और न है। आदमी को किसी ऐसे काम के लिए पैदा होने का कोई मतलब नहीं, जिसे वह आसानी से अपने जीवन में न कर सके। अगर आदमी से कोई काम नहीं

हो पाता, तो वह उसके लिए पैदा ही नहीं हुआ। आदमी खुद जो मशीन तैयार करता है, वह उस काम को आसानी से कर लेती है, जिसके लिए बनी हैं। अगर किसी काम के करने में मुश्किल हो, तो यही समझना चाहिए कि मशीन को वह काम दिया गया है, जिसके लिए वह नहीं बनी है। प्रकृति का बना आदमी कभी ऐसा नहीं हो सकता कि वह अपने को आसानी से पहचान सके। क्योंकि वह इसी काम के लिए पैदा हुआ है।

अब वह अगर आसानी से नहीं पहचानता, तो वह सिर्फ इस वजह से कि पैदा होने के दिन से उसके दिमाग में यह ठूँस दिया जाता है कि उसके जीवन का उद्देश्य और भी कुछ है, सिर्फ अपने को पहचानना नहीं है। बड़े होते-होते वह बिलकुल यह विश्वास करने लगता है कि 'मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, मगर अपने को नहीं पहचान सकता। अपने को पहचानने के लिए जितनी बुद्धि की जरूरत है, उतनी मुझे नहीं मिली। उतनी बुद्धि हासिल करने के लिए वह उमर काफी नहीं, जो मुझे मिली है।' उसकी यह समझ मिथ्या-विश्वास कहलाती है।

सत्य का कहना है कि यह बुद्धि का रोना रोनेवाले मिथ्या-विश्वासी उन लोगों पर क्यों नहीं नजर डालते, जिन्होंने दुनिया की कोई विद्या नहीं पढ़ी थी, पर ऐसी-ऐसी सचाइयाँ कह गये जिन्हें आज वे नहीं समझ सकते, जो अपने-आपको बुद्धिमान् कहते हैं। फिर वे कम बुद्धि का रोना क्यों रोते हैं ? यहाँ वे यह धोखा न खायें कि जिसे बड़े-बड़े बुद्धिमान् नहीं समझ सकते, जिसे वह कम बुद्धिमान् कैसे समझ सकते हैं ? बात यह है कि ये बड़े-बड़े

बुद्धिमान् मिथ्या-बुद्धि लिये हैं। ये उस सचाई में वह ढूंढना चाहते हैं, जिसे इन्होंने अपने मस्तक में भर लिया है। यानी यह कि ईश्वर कान में आकर कह जाता है या अन्तरात्मा अपने-आप बोलने लगता है या इसी तरह की और दूसरी बातें। इन सचाइयों में से उन्हें यह चीज कैसे हाथ लग सकती है? इस चीज के लिए तो वही बुद्धि चाहिए, जो सचाई की इच्छुक हो—फिर वह चाहे कितनी कम क्यों न हो। रेत में पड़े मिश्री के कण को उठाने के लिए जितनी बुद्धि चाहिए, वह चींटी के पास मिल सकती है, हाथी के पास नहीं। बुद्धि हाथी जितनी बढ़कर रेत में पड़े मिश्री के कण को उठाने में असमर्थ ही रहेगी। पर चींटी बनी बुद्धि को कुछ भी मुश्किल न होगी। ऊँची-से-ऊँची दीवार पर चढ़ जाना चींटी के लिए खेल है, पर हाथी के लिए असंभव। चींटी बनी बुद्धि सत्य की ऊँचाइयों को पहुँच सकती है, पर हाथी बनी बुद्धि खड़ी-खड़ी टापती रहेगी। बुद्धि की तारीफ में 'कुशाग्र' लफ्ज काम में आता है। वह साफ बता रहा है कि बुद्धि पैनी और छोटी ही अच्छी, क्योंकि 'कुश' यानी घास का अगला हिस्सा बहुत ही बारीक और छोटा होता है।

सत्य का कहना है, कम बुद्धिवालों को बिलकुल नहीं घबराना चाहिए। सत्य उन्हींकी समझ में आयेगा। पर एक शर्त है कि उन्हें अपनी बुद्धि पर से मिथ्या-विश्वास और अन्ध-विश्वास की चर्बी निकाल फेंकनी होगी।

●

	रु०न०पैसे		रु०न०पैसे
सर्वोदय का इतिहास	०--२५	आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१-- ०
सर्वोदय-संयोजन	१-- ०	भूदान का लेखा (आँकड़ों में)	०--२५
गांधी : राजनैतिक अध्ययन	०--५०	सत्याग्रही शक्ति	०--३१
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	०--३१	सर्वोदय-भजनावलि	०--२५
गाँव का गोकुल	०--२५	क्रान्ति की पुकार	०--१६
व्याज-बट्टा	०--२५	सामूहिक पद-यात्रा	०--२५
भूदान-दीपिका	०--१३	साम्ययोग का रेखाचित्र	०--१३
पूर्व-बुनियादी	०--५०	राज्यव्यवस्था : सर्वोदय-दृष्टि से	१--५०
राजनीति से लोकनीति की ओर	०--५०	भूमि-क्रान्ति की महानदी	०--७५
नवभारत	४-- ०	मजदूरों से	०--१३
सत्संग	०--५०	सामूहिक प्रार्थना	०--१३
क्रान्ति की राह पर	१-- ०	सन्त विनोबा की आनन्द-यात्रा	१--५०
ताई की कहानियाँ	०--२५	ग्राम-स्वावलम्बन की ओर	०--२५
आज का धर्म	०--५०	जीवन परिवर्तन	०--२५
क्रान्ति की ओर	१-- ०	पावन प्रकाश	०--२५
सर्वोदय पद-यात्रा	१-- ०		

[ENGILISH PUBLICATIONS]

	Rs.N.P.		Rs.N.P.
The Economics of Peace	10--0	(J.C.KUMARAPPA)	
Swaraj-Shastra	1-- 0	Why the Village Movement?	3--50
Progress of a Pilgrimage	3--50	Non-Violent Economy and World Peace	1-- 0
Bhoodan as seen by the West	0--38	Economy of Permanence	3-- 0
Bhoodan to Gramdan	0--38	Gandhian Economy and Other Essays	2-- 0
Bhoodan-Yajna (Navajivan)	1--50	Overall Plan for Rural Development	
M. K. Gandhi	2-- 0	Swaraj for the Masse[illegible]	
Planning for Sarvodaya	1-- 0	The Cow in our Econo[illegible]	
The Ideology of Charkha	1-- 0		